SAMKALEEN HINDI AUR MARATHI UPANYASON MEIN CHITRIT AADIVASI JEEVAN KA TULNATMAK ADHYAYAN

(CHUNE HUAI UPANYASON KE SANDARBHA MEIN)

Thesis submitted in Partial Fulfillment of the Requirement for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in Hindi

Submitted By

TONDAKUR LAXMAN POTANNA

11HHPH06

Under the guidanceof

Dr. Bhim Singh

Under theco- guidanceof

Prof. M. Shyam Rao

Head of Department

Prof. Sachidanand Chaturvedi

Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
P.O. Central University, Gachibowli,
Hyderabad-500046
Telangana State, India

2020

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक-अध्ययन

(चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

जून-2020

शोधार्थी

तोंडाकुर लक्ष्मण पोतन्ना

11HHPH06

शोध-निर्देशक | **सह- शोध निर्देशक**

डॉ. भीमसिंह | **प्रो. एम श्यामराव**

विभागाध्यक्ष

प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

2020

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“Samkaleen Hindi Aur Marathi Upanyason Mein Chitrit Aadivasi Jeevan KaTulnatmak Adhyayan” (CHUNE HUAI UPANYASON KE SANDARBHA MEIN) “समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक-अध्ययन” (चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)** submitted by **TONDAKUR LAXMAN POTANNA** bearing Regd. No. 11HHPH06 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signatureof Supervisor

Signature of Co- Supervisor

Head of the Department

Dean of the school of Humanities

DECLARATION

I, **TONDAKUR LAXMAN POTANNA** hereby declare that the thesis entitled **"Samkaleen Hindi Aur Marathi Upanyason Mein Chitrit Aadivasi Jeevan Ka Tulnatmak Adhyayan" (CHUNE HUAI UPANYASON KE SANDARBHA MEIN)** **"समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक-अध्ययन" (चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)** submitted by me under the guidance and supervision of Dr.Bhim Singh and Co-Supervisor Prof. M.ShyamRao is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga/INFLIBNET.

Date : / /2020

Signature of the student

TONDAKUR LAXMAN POTANNA

Regd. No. 11HHPH06

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Samkaleen Hindi Aur Marathi Upanyason Mein Chitrit Aadivasi Jeevan Ka Tulnatmak Adhyayan" (CHUNE HUAI UPANYASON KE SANDARBHA MEIN)"समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक-अध्ययन" (चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)** submitted by **TONDAKUR LAXMAN POTANNA** bearing Regd. No. 11HHPH06 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published in the following publications:

1. Hindi Tatha Marathi Upanyason Mein Aadivasiyon Ki Samasyaye, Review of Research, Vol-8, issue-4, Jan-2019, ISSN 2249-894X.
2. Hindi UpanyasAurLokgeet, Power of Knowledge, vol-II, issue-XI, July- Sep,2015, ISSN 2320-4494.

B. Presented in the following conference:

1. Ekkisvi sadi ke Upanyason Mein Aadivasiyon ki Sthiti Evam Sambhavnaye, 18-19 Feb 2012, Devgiri College, Aurangabad (MH) (National)
2. Hindi Upanyas: Bhumandalikaran Banam Aadivasi Sankat, 29 Aug 2014 (Kannur University, Kerla) (National)

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D. was exempted from doing coursework (recommended by Doctoral committee) on the basis of the following courses passed during his M.Phil. Program and the M.Phil.Degree was awarded.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1.HH701	Research Methodology	4	Pass
2.HH702	Modern Thought	4	Pass
3. HH703	Sociology of Literature	4	Pass
4. HH705	Social Context of Hindi Language and Registers	4	Pass
5. HH750	Dissertation	16	Pass

Supervisor	Head of Department	Dean of School
Dept. of Hindsi	Dept. of Hindi	School of Humanities

प्रस्तावना

साहित्य मनुष्य के चित्त और चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है । साहित्य को हम समाज द्वारा प्राप्त व्यक्ति की अनुभव प्रकीर्णताओं का फूल भी कह सकते हैं । साहित्यकार अपनी चित्त-चेतनावृत्ति को किसी साहित्य विधा द्वारा अभिव्यक्त करता है । साहित्य-सृजन की यह अविरल धारा मानव जीवन के आरंभ से प्रवाहित है । मनुष्य जीवन चेतना और उसकी अभिव्यक्ति नितांत रूप से एक-दूसरे के साथ प्रवाहित रहे हैं शायद इसलिए साहित्य को 'संचित चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब' या 'जनसमूह के ह्रदय का विकास' कहा गया है । मानव जीवन विविधांगी दृष्टिकोणों से पूरीत है । अतः वह चेतना साहित्य में भी विविधायामी दृष्टिकोणों से अभिव्यक्त हुई है । साहित्य चेतना-चित्तवृत्ति के संवाहक के रूप से प्रवाहित होकर अपने युगीन युग-बोध का संवाहक भी बनी । अतः किसी राष्ट्र-समाज के जनमानस की 'चित्तवृत्ति' दशा एवं संवेदनाओं के विविध स्वरूपों का संचित रूप उस साहित्य में सन्निहित होता है । यह अध्ययन से ज्ञात होता है । हर युग में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच चिंतनशील प्राणी अपने अंतर्मन से उनका विश्लेषण करता है और उस चिंतन से ही युगीन-बोध की चेतना पल्लवित होकर व्यापकता प्राप्त करती है । जिससे युग-परिवर्तन की दिशा को गति प्राप्त होती है । वह युग-बोध ही विमर्शों को जन्म देता है । युगीन-विमर्शों से मनुष्य की चिंतन-चेतना परंपरा का विकास होता है ।

मानव की चित्त-चेतना की अभिव्यक्ति मानव जीवन के समान ही व्यापक एवं विविधायामी है तथा इस अभिव्यक्ति के विविध भाषाई माध्यम है । मनुष्य की भाषा साहित्य का रूप ग्रहण कर अभिव्यक्त होती है । मनुष्य की विविध चेतना का परिचय प्राप्त करने के लिए उसकी भाषाई अभिव्यक्ति को समझना आवश्यक है । मनुष्य की अभिव्यक्ति में विचार एवं भाव

महत्त्वपूर्ण है । अतः इन तत्त्वों को हम परस्पर तुलना के रूप में ही सहज रूप से समझ सकते हैं । इसलिए तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । तुलनात्मक अध्ययन एक भाषा में लिखित साहित्य अथवा एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन आकलन है जिसका मुख्य अंग 'तुलना' है । विशेषतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि भारत बहुभाषी देश है । हमारी बहुभाषिकता ने विस्तृत बहुभाषी साहित्य प्रदान किया है । इस पद्धति से एक भाषा की साहित्यिक परंपराओं से दूसरी अन्य भाषा की परंपराओं का बोध होता है । विभिन्न भाषाओं के साहित्य की प्रवृत्तियों, चित्त-चेतनाओं की अभिव्यक्ति को पहचानने तथा परखने में तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है तथा समन्वय की विराट चेतना का निर्माण कर समाज की चिंतन परंपरा को गति प्रदान करता है । इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने अपने अध्ययन के लिए 'समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक अध्ययन' इस विषय का चयन किया है ।

'आदिवासी' शब्द में ही निहित है किसी भू-भाग, राष्ट्र का प्रथम निवासी । जिसे मूलनिवासी भी कहा जाता है ।किंतु भारत एक संक्रमणकारी संस्कृति की व्यापक भूमि रही है और इस भूमि पर अनेक वंशों, संस्कृतियों के लोगों ने राज किया और इस राज-संघर्ष में आदिवासी, मूलनिवासी पीछे छूट गए तथा राजसत्ता ने इन पर अपनी संस्कृति को आरोपित करना प्रारंभ किया किंतु अपनी मूल संस्कृति को बचाने के लिए इन्हें वन में वास करना पड़ा जिसके आधार पर इन्हें वनवासी भी कहा जाता है । आधुनिक भारत के समाज सुधारकों ने संपूर्ण समाज का उद्धार कर सभी को समान अवसर देकर विकास किया और स्वतंत्रता के उपरांत संवैधानिक रूप से 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में विशेष सहयोग देकर शिक्षा-दीक्षा का अवसर प्रदान किया जिसके आधार पर आधुनिक पीढ़ी शिक्षित होकर अपने चित्त और चेतना

की अभिव्यक्ति करने लगी जिससे साहित्य में आदिवासी साहित्यधारा के रूप में अभिहित किया गया । संपूर्ण भारतवर्ष का आदिवासी साहित्य अपनी संस्कृति एवं वर्तमान संघर्ष को अभिव्यक्त करता है । इसी संदर्भीय आशय के साथ मेरी परिचित भाषाएँ हिंदी और मराठी में लिखित उपन्यासों में आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक अध्ययन शोध-विषय का चयन किया गया है ।

प्रस्तुत अध्ययन को मैंने अध्ययन की सुविधा के लिए छः अध्यायों में विभाजित किया है । प्रथम अध्यायः 'समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासः एक परिदृश्य' में आधुनिकता और समकालीनता, उपन्यास के स्वरूप और परिभाषा पर विवेचन के साथ ही समकालीन हिंदी-मराठी उपन्यासों का विवेचन किया गया है ।

द्वितीय अध्यायः 'समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण' में 'आदिवासी' शब्द का अर्थ, आदिवासी-जनजीवन, आदिवासी-सांस्कृतिक जीवन, आदिवासी आर्थिक-जीवन, आदिवासी समाज की प्रकृति एवं आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियों का विश्लेषणात्मक वर्णन-विवेचन किया गया है ।

तृतीय अध्यायः 'समकालीन मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण' में मराठी उपन्यास: स्वरूप एवं विकास के साथ आदिवासी-जनजीवन, आदिवासी-सांस्कृतिक जीवन, आदिवासी आर्थिक-जीवन, आदिवासी समाज की प्रकृति एवं आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियाँ आदि का विश्लेषणात्मक वर्णन विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्यायः 'समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन की समस्याएँ' जिसमें समस्याओं और औपन्यासिक तत्त्वों के आधार पर चयनित उपन्यासों का वर्णन-विवेचन विविध अनुसंधान पद्धतियों द्वारा किया गया है ।

पंचम अध्यायः 'समकालीन हिंदी और मराठी आदिवासी उपन्यासों की कथावस्तु एवं पात्रः तुलनात्मक अध्ययन' इस अध्याय में विवेच्च उपन्यासों की कथावस्तु तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार पर वर्णन विवेचन किया गया है ।

षष्ठम अध्यायः 'समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों की भाषा एवं औपन्यासिक-कला' में चयनित उपन्यासों का शिल्पगत अध्ययन किया गया है । जिसमें अंतर्वस्तु, रूप, अंतर्वस्तु और रूप का द्वंद्व, भाषा-शैली, आदिवासी बोली-भाषा के शब्दों का प्रयोग, यूरोपीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग, उर्दू, अरबी,फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग, प्रतीक एवं बिंब, लोकोक्ति एवं मुहावरें आदि का तुलनात्मक बिंदु के आधार पर विवेचन किया गया है ।

संपूर्ण शोध-प्रबंध का निष्कर्ष सारांश रूप में उपसंहार शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है । परिशिष्ट के अंतर्गत आलोच्य संदर्भीत ग्रंथ तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची जोड़ दी गयी है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के आरंभ से अंत तक मेरे शोध-निर्देशक श्रद्धेय डॉ. भीमसिंह जी तथा श्रद्धेय प्रो. एम. श्यामराव जी का अमूल्य योगदान रहा है । मेरी अध्ययन विषयक रूचि का परिष्कार करते हुए दोनों गुरूओं ने सुयोग मार्गदर्शन किया और प्रोत्साहित किया इसे शब्दों में बांधना मेरे लिए कठिन है, अतः उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापन न करते हुए आशा करता हूँ कि उनका इसी प्रकार का मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद मुझे भविष्य में भी प्राप्त होगा । मैं आभारी हूँ

हैदराबाद विश्वविद्यालय के वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी तथा अन्य गुरूजनों का जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित किया ।

ऋणी हूँ अपनी करूणामयी और दृढ़निश्चयी, माता श्रीमती राजमणी और पिता पोतन्ना का जिन्हें अक्षर ज्ञान न होते हुए भी मुझे पढ़ने योग्य बनाया । आभारी हूँ मेरी धर्मपत्नी सपना का जिन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियों को अपने कंधों पर लेकर मुझे शोधकार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया । सुपुत्र अद्विक तथा सुपुत्री अमृता (भावी) का भी तहे दिल से आभारी हूँ जो बालमन को नियंत्रित करते हुए, अपने खेलने की इच्छाओं को दबाते हुए, मेरे इस शोध-कार्य में सहयोग देते रहे । जिनकी दृढ़ता मेरा संबल बनी वो मेरे छोटे भाई सुरेश, भौजाई उमा, भतीजी अर्पिता, बहन लक्ष्मी, भांजी नम्रता, भांजा रोहित, मामा पोतन्ना लखमावाड, दादा गंगाधर इरलोड (CEO), स्वरूपाराणी, डॉ. अभिजीत, डॉ. विद्या दी, निशा एवं दिगांबर लखमावाड का ।

अपनी कर्मभूमि माऊली विद्यापीठ, केज के संस्थाध्यक्ष मा. अशोक दादा पाटील, मा. सौ. रजनीताई पाटील, मा. आदित्य दादा पाटील, प्रशासकीय अधिकारी मा. लक्ष्मण डोईफोडे, मा. प्रताप मोरे तथा मा. पशुपतीनाथ दांगट आदि का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे हमेशा शोध-कार्य करने के लिए प्रेरित किया । सरस्वती महाविद्यालय, केज के प्रधानाचार्य डॉ. दादासाहेब मोटे, डॉ. अलका डांगे, डॉ. कल्याण वरळे, डॉ.किरणकुमार धिमधिमे,डॉ. सुर्यकांत आरडले, डॉ. वैशाली आहेर, डॉ. सीता केंद्रे, डॉ. बलभीम पाटील, डॉ. सारिका बुरगे, डॉ. दत्ता रामरूले, डॉ. मधुकर चाटे, डॉ. कराळे एन.बी., डॉ. विक्रम इनकर, डॉ. हरिदास शिंदे, डॉ. अशोक घोडके, डॉ. ज्योति गायकवाड, डॉ. जालू जाधव लक्ष्मीकांत शेळके, लता भांडवलकर मँडम, अभिमन्यू इटकर एवं महिला कला महाविद्यालय, बीड के प्रधानाचार्या डॉ. सविता शेटे एवं सहयोगी डॉ. संतोष मस्के, डॉ. रमेश माने, डॉ. कांतराव कलाणे, डॉ. श्रीराम धस, डॉ. संध्या आयस्कर, डॉ.

सुनंदा आहेर, डॉ. अर्चना वाघमारे, डॉ. वर्षा कुलकर्णी, श्रीरंग निबांळकर आबा का आभार प्रकट करता हूँ जिनका स्नेह मुझे समय-समय पर मिलता रहा ।

आदरणीय डॉ. मनोहर पाटील (लातूर), डॉ. संदिप रणभिरकर (RCU,Rajastan), रामकृष्ण रेड्डी (NIRD, Hyd), डॉ.प्रकाश खुळे, इंजीनियर प्रसाद राऊत, मित्र डॉ. बसवेश्वर बेंद्र, साईनाथ कोंडलवाडे, प्रकाश चिलवंत, योगिराज लिंगालोड,साईनाथ लखमावाड (मुंबई), प्रा. घनश्याम ताडेवाड, डॉ.नागोराव झपाटे (JNU), डॉ. साईनाथ उमाटे, डॉ. माधव मुंडकर (इचलकरंजी), लक्ष्मण लखमावाड, शंकर दासरवाड, विजय कामिनवार (मुंबई), अनुज व्यंकट धारासुरे, चिरंजीव दलालवाड (PSI), पिराजी सोनकांबळे, कैलास घाटे, किरण डाके, अंकुश उल्लेवाड, रमेश कनकापुरे का आभारी हूँ जिनका सहयोग लगातार मुझे मिलता रहा ।

साथ ही मैं नहीं भूल सकता मेरे सहयोगी मित्र डॉ. अंकुश काळे का जिनके प्रोत्साहन, सहयोग एवं सुझाव के बगैर यह काम संभव नहीं था ।

इस कार्य के लिए अनुपलब्ध सामग्री को समय-समय पर उपलब्ध करवाने के लिए तथा तत्संबंधी आवश्यक जानकारी देने के लिए हिंदी तथा मराठी लेखकों का इस आशा के साथ धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि अपने लेखन से पाठकों को सदा उपकृत करते रहेंगे ।

अंत में उन सभी विद्वानों, रचनाकारों, सुधीजनों तथा हिंदी एवं मराठी विभाग के तमाम प्राध्यापकों, जिनके लेखन के कारण ही मुझे कार्य करने का प्रस्थानबिंदु एवं इतिश्री करने की प्रेरणा मिली ।

तोंडाकुर लक्ष्मण पोतन्ना

अनुक्रमणिका

	पृ.सं.
प्रस्तावना	I-VI
प्रथम-अध्याय	1-50

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासः एक परिदृश्य

1. आधुनिकता और समकालीनता
   1.1. आधुनिकता
   1.2. समकालीनता
      1.2.1.समकालीन शब्द का कोशगत अर्थ
   1.3. उपन्यास: स्वरूप एवं परिभाषा
   1.4. समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासः एक परिदृश्य
      1.4.1.समकालीन हिंदी उपन्यास
         1.4.1.1. गाथा भोगनपुरी
            1.4.1.1. जहाँ बाँस फूलते हैं
            1.4.1.2. जंगल जहाँ शुरू होता है
            1.4.1.3. अल्मा कबूतरी
            1.4.1.4. काला पादरी
            1.4.1.5. जो इतिहास में नहीं है
            1.4.1.6. धूणी तपे तीर
            1.4.1.7. ग्लोबल गाँव के देवता
      1.4.2. समकालीन मराठी उपन्यास
            1.4.2.1. झेलझपाट
            1.4.2.2. हाकुमी
            1.4.2.3. एका नक्षलवाद्याचा जन्म
            1.4.2.4. पारधी

1.4.2.5. टाहो
1.4.2.6. तंट्या
1.4.2.7. कोळवाडा
1.4.2.8. ब्र

द्वितीय-अध्याय 51-100

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण

2.1. 'आदिवासी' शब्द से आशय

2.1.1. 'आदिवासी' शब्द का कोशगत अर्थ

2.2. आदिवासी जन-जीवन

2.3. आदिवासी सांस्कृतिक-जीवन

2.3.1. लोक-कथाएँ

2.3.2. लोक-गीत

2.4. आदिवासी आर्थिक-जीवन

2.5. आदिवासी-समाज की प्रकृति

2.6. आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियाँ

तृतीय-अध्याय 101-146

समकालीन मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण

3.1. मराठी उपन्यास: स्वरूप एवं विकास

3.2. आदिवासी जन-जीवन

3.2.1. व्यसनाधिनता

3.2.2. अंधश्रद्धा

3.3. आदिवासी सांस्कृतिक-जीवन

3.3.1. लोक-कथाएँ

3.3.2. लोक-गीत

3.4. आदिवासी आर्थिक-जीवन

3.5. आदिवासी-समाज की प्रकृति

3.6. आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियाँ

चतुर्थ-अध्याय **147-182**

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन की समस्याएँ

4.1. समस्याओं की प्रकृति

4.1.1. सामाजिक-समस्या

4.1.2. भूखमरी की समस्या

4.1.3. अंधश्रद्धा की समस्या

4.1.4. व्यसनाधिनता

4.1.5. स्त्रियों पर अत्याचार

4.1.6. शोषण की समस्या

4.2. संवाद

4.2.1. संक्षिप्त-संवाद

4.2.2. पल्लेदार (लंबे) संवाद

4.2.3. भाव प्रधान संवाद

4.2.4. नाटकीय-संवाद

4.3. देश, काल और वातावरण

पंचम-अध्याय **183-287**

समकालीन हिंदी और मराठी आदिवासी उपन्यासों की कथावस्तु और पात्रः तुलनात्मक अध्ययन

5.1.कथावस्तु या कथानक

5.2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण

5.2.1. समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र

5.2.2. विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र
5.2.3. संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में स्त्री-पात्र
5.2.4. अन्याय-अत्याचार करनेवाले पात्र
5.2.5. आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सोच रखनेवाले पात्र
5.2.6. प्रमुख-पात्र
5.2.7. गौण-पात्र

षष्ठम-अध्याय 288-327
समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों की भाषा एवं औपन्यासिक-कला
6.1. अंतर्वस्तु
6.2. रूप
6.3. अंतर्वस्तु और रूप का द्वंद्व
6.4. भाषा-शैली
6.4.1. आदिवासी बोली-भाषा के शब्दों का प्रयोग
6.4.2. यूरोपीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग
6.4.3. उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग
6.4. प्रतिक एवं बिंब
6.5. लोकोक्ति एवं मुहावरे
6.6. देशज भाषा के शब्दों का प्रयोग

उपसंहार 328-335

संदर्भ ग्रंथ सूची 336-345

प्रथम अध्याय

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासः एक परिदृश्य

विषय-प्रवेश

प्रस्तुत शोध-विषय के केंद्र में समकालीन हिंदी एवं मराठी (आदिवासी-जीवन पर केंद्रित) के उन उपन्यासों को रखा जा रहा है जो काल, विषय, पात्र, समस्या, विचार, विस्तार तथा आकार आदि में किसी एक या अनेक दृष्टियों से आदिवासी-जीवन को प्रस्तुत कर रहे हों। इसमें दोनों भिन्न भाषा-भाषी उपन्यासकारों के चुने हुए उपन्यासों में आदिवासी-जीवन किस तरह चित्रित किया गया है इसी के आधार पर तुलना की जाएगी।

1. आधुनिकता और समकालीनता

वर्तमान समय में ‘आधुनिकता’ तथा ‘समकालीनता’ शब्दों का प्रचलन अधिक हो रहा है। कभी-कभी हम इसका प्रयोग पर्यायवाची के रूप में भी करते हैं। इसलिए सबसे पहले यह जान लेना जरूरी है कि क्या यह दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं या दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं ? समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों को देखने से पहले हमें आधुनिकता तथा समकालीनता की परिस्थिति, समय तथा विशेषताओं पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

1.1. आधुनिकता

हिंदी का ‘आधुनिक’ शब्द अंग्रेजी के ‘मॉडर्न’(Modern) शब्द के पर्याय के रूप में गढ़ा गया है। ‘मॉडर्न’ शब्द के अर्थ अंग्रेजी शब्द कोश में अनेक दिए गए हैं। परंतु साहित्य के संदर्भ में यह शब्द प्राचीन प्रवृत्तियों से अलग करता दिखाई पड़ता है। इस अर्थ में हम ‘मॉडर्न’ से

'आधुनिक' शब्द का आशय ग्रहण करते हैं । 'आधुनिकता' (Modernity)शब्द का प्रयोग हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के संदर्भ में सन् 1960 के बाद होने लगा था । आधुनिकता का प्रयोग रीतिकाल तक के भाव-बोध से भिन्न भाव-बोध को व्यंजित करने के लिए किया जाता रहा है । रामचंद्र शुक्ल ने जब 19 वीं शती के मध्यभाग के बाद के हिंदी साहित्य को 'आधुनिक काल' काल का नाम दिया तो उनके सामने इस नामकरण के औचित्य को सिद्ध करने वाले दो कारण थे । एक कारण था साहित्य में नई 'संवेदनशीलता' (Sensibility) या 'भाव-बोध' की अभिव्यक्ति का था । अगर ऐसा न होता तो वे 'आधुनिक काल' या 'गद्यकाल' शीर्षक से इस काल को रेखांकित करने की बात ही न करते ।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, टेक्नोलॉजी, नगरीकरण, नयी आर्थिक परिस्थितियों और नये भाव-बोध का विकास हुआ । आज का व्यक्ति निरंतर चिंताओं में डूबा हुआ है । वह एकांत निर्वासित प्राणी बनता जा रहा है । अपने चारों ओर सब कुछ होते हुए भी वह स्वयं को अकेला और टूटा हुआ महसूस करता है । उन्हें ऐसा लगा कि आधुनिक मनुष्य के संपर्क सूत्र समाज से बिखर कर अलग हो गए हैं । यह स्थिति मूलतः पश्चिमी देशों में पहले उभरकर सामने आई है । परंतु इसका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव विश्व के अन्य देशों की भांति भारतवर्ष पर भी पड़ा है । अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की तरह हिंदी साहित्य में भी इस नये चिंतन को रेखांकित करते हुए 'आधुनिकता' के प्रभाव को स्वीकार किया गया है ।

मराठी साहित्य में 'आधुनिकता' और 'समकालीनता' को स्पष्ट करते हुए डॉ. राजन जयस्वाल लिखतें हैं—"विशेषतः मराठी साहित्य के संदर्भ में सन् 1990 से सन् 2000 यह शतक 'आधुनिक' साहित्य का शतक माना जाता है । 'नया' विशेषण सन् 1945 के पश्चात महायुद्धोत्तर

मराठी साहित्य के विशिष्ट प्रवाह के साथ जोड़ा गया है । उसी साहित्य के एक भाग को 'नव' या 'नया' साहित्य दर्शाया जाता है । सन् 1945 से सन् 1960 इस छोटे से कालखंड में जो साहित्य है, उस साहित्य को नव साहित्य या नया साहित्य कहा गया है । 'समकालीनता' इस शब्द के विशिष्ट प्रवृत्तियाँ या प्रवाह न बताते हुए, केवल अपने काल के प्रति सचेत रहाना ही बताया है । समकालीनता में काल-सापेक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।"[1]

1.2. समकालीनता

'समकालीन' तथा 'समकालीनता' को लेकर विद्वानों में विभिन्न मतभेद हैं । हिंदी साहित्य में हो या मराठी साहित्य में । जब हम समकालीनता पर विचार करते हैं तो हम इसे साहित्य की विशेषता बताने के लिए प्रयोग करने वाले पक्ष पर विचार करते हैं कि साहित्य के पूर्व समकालीनता शब्द लगाने पर उसका क्या अर्थ हो जाता है ।

1.2.1.समकालीन शब्द का कोशगत अर्थ

समकालीन शब्द के विभिन्न कोशों में अनेक अर्थ प्रस्तुत किए है जो निम्नलिखित हैं—

1. ज्ञान शब्दकोश—"एक समय में रहने या होने वाले (कन्टेंपोरेरी), समसामयिक ।"[2]
2. नालंदा विशाल शब्द सागर—"जो एक ही समय में हुए हों ।"[3]
3. हिंदी शब्द सागर—"जो (दो या कई) एक ही समय में हों । एक ही समय में होने वाले जैसे.... तुलसीदास जहाँगीर के समकालीन थे ।"[4]

---

[1]समकालीन मराठी रंगभूमी, पृ.सं. 07.

[2]ज्ञान शब्दकोश, पृ.सं. 815.

[3]नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ.सं. 1404.

4. मानक हिंदी शब्दकोश—“जो उसी काल में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हैं। एक ही समय में रहने वाले। जैसे— महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे। जो उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हों (कन्टेंपोरेरी।)”[5]

समकालीन संकल्पना का कोशगत अर्थ देखने के उपरांत भी यह स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन संकल्पना उतनी सुनिश्चित नहीं है क्योंकि इसका आशय विषय के संदर्भ में विशिष्ट अर्थ का वाहक बनाने के लिए उसके प्रयोग के मूल में निहित संदर्भ को देखना आवश्यक होता है। किसी वस्तु, व्यक्ति या कृति के समकालीन को निश्चित करने के लिए तत्कालीन समय को देखना आवश्यक होता है। तत्पश्चात उसका समकालीन निश्चित करना आसान होता है इसमें कोई संदेह नहीं। डॉ. रवींद्र भ्रमर ने इस संबंध में अपनी टिप्पणी इस प्रकार दी है—“हिंदी में ‘समकालीन’ अंग्रेजी के ‘काण्टेम्परेरी’ शब्द के पर्याय के रूप में प्रचलित है। ‘काण्टेम्परेरी’ का अभिप्राय तीन अर्थों में समाहित है। 1. काल विशेष से संबंध 2. व्यक्ति विशेष के काल मापन से संबंध 3. साहित्य अथवा प्रवृत्ति विशेष से संश्लिष्ट कालखंड। समकालीनता को आँकने के लिए ‘आधुनिक’ शब्द महत्त्वपूर्ण है। ‘आधुनिक’ और ‘अत्याधुनिक’ को अपने आप में समाहित किए हुए आधुनिक की पीठ पर स्थिति कालखंड हैं।”[6]

समकालीनता के संदर्भ में पुष्पपाल सिंह कहते हैं—“सन् 1985 या उसके आस-पास के समय से हिंदी उपन्यास का जो सृजन परिदृश्य है, उसे ‘समकालीन हिंदी उपन्यास’ के रूप में

---

[4]हिंदी शब्द सागर, पृ.सं. 959.

[5]मानक हिंदी शब्दकोश, पृ.सं. 278.

[6]नई कविताः पूनर्मूल्यांकन, पृ.सं. 44.

देखा परखा जा सकता है । यह बात अपनी जगह पर सही है कि 15-20 वर्ष पश्चात 'समकालीन' की परिभाषा कि अवधारणा निश्चित रूप से कुछ और होगी, कुछ और आगे की होगी । मोटे रूप से हम वर्तमान से पंद्रह-बीस या अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष पीछे के समय को 'समकालीन' की परिसीमा में रखकर उस कालखंड की विधा विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण-मूल्यांकन में प्रवृत्त हो सकते हैं ।"[7]

'समकालीन' शब्द हिंदी साहित्य में जितना प्रचलित है मराठी साहित्य में उतना नहीं है । हिंदी साहित्य में कुछ विद्वानों ने समकालीनता की समय-सीमा तो निर्धारित की है लेकिन मराठी साहित्य के विद्वानों ने समकालीनता को किसी समय-सीमा में नहीं बांधा । वे समकालीनता पर उतना जोर नहीं देते जितना हिंदी साहित्य के विद्वानों ने दिया है । वे मानते हैं कि— युग, समय, काल, समानताएँ, एक ही युग के भिन्न भाषा-भाषी अपना-अपना समकालीन होता है । जैसे— चंदबरदाई और नरपति नाल्ह एक ही काल के हैं अर्थात आदिकाल के हैं । विनोबा और जयप्रकाश नारायण एक ही समय के रहे हैं । छत्रपति शिवाजी और औरंगजेब एक ही काल के रहे हैं अर्थात मुग़ल काल के रहे हैं । प्रेमचंद और प्रसाद एक ही काल के रहे हैं । गाँधी और नेहरू एक ही समय के रहे हैं । भूषण और राजा छत्रसाल एक ही समय और एक ही प्रवृत्ति के कवि थे । तिलक और गोखले एक ही समय एवं एक ही प्रवृत्ति के समाजसुधारक थे । सोपान, निवृत्ति, मुक्ताबाई और ज्ञानदेव या तुलसीदास, सूरदास, जायसी और कबीर एक ही समय में स्थित होने के कारण समकालीन है । हिंदी के कबीर तथा कन्नड के बसवेश्वर, मराठी के नामदेव और तुकाराम आदि एक ही युग से भिन्न भाषा और प्रदेश के हैं । लेकिन समान प्रवृत्ति के होने के कारण समकालीन हैं । मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव एक जैसे हैं और एक युग में होने के कारण समकालीन हैं । भगतसिंह, सुखदेव और

[7]भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृ.सं. 79.

राजगुरू एक जैसे हैं और एक ही युग में होने के कारण समकालीन हैं । इसीलिए मराठी साहित्यकारों ने समकालीन शब्द की व्याख्या करने का प्रयास नहीं किया । वे 'समकालीन' के जगह 'नव' या 'नवता' शब्द का साहित्य के संदर्भ में विचार करते हैं । समकालीन को वे 'काल सापेक्ष' मानते हैं । मराठी में भी कुछ विद्वानों ने इस 'नवता' या 'नव' साहित्य के माध्यम से ही 'समकालीनता' को परिभाषित करने का प्रयास किया है । समकालीन साहित्य की व्याख्या प्रो. वसंत आबाजी डहाके ने निम्न रूप में की है—"समकालीन साहित्य से तात्पर्य है कि जो साहित्य अपने काल के साथ है, जिस काल में वह निर्माण हो रहा है, उस काल के प्रतिबिंब, उस काल के विचार, पहचान आदि जिस साहित्य में व्यक्त होती है उसी साहित्य को समकालीन साहित्य कहा जाता है ।"[8]

मराठी साहित्य के विद्वान डॉ. मदन कुलकर्णी 'समकालीनता' इस संकल्पना को स्पष्ट करना कठिन कार्य है ऐसा कहते हुए लिखते हैं कि—"हम और हमारे बदलते कालखंड के व्यक्ति, घटना, प्रसंग, जीवनानुभव, विचारप्रणाली, भावानुभूति इनका चित्रण अपने युग को ध्यान में रखकर जो साहित्य निर्माण होता है उस साहित्य को समकालीन साहित्य कहा जाता है ।"[9]

'समकालीनता' का सामान्य अर्थ वर्तमान समय में वर्तमान समय के साथ होना है । केवल वर्तमान में विद्यमान होना ही काफी नहीं है बल्कि वर्तमानता का सबूत भी देना अपेक्षित है । रचना को गहराई से परखने पर समय के किसी भी कालखंड की, परिस्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण तथा पहचान साहित्य की समकालीनता कही जाएगी । इससे

[8]नवसाहित्य व नवसाहित्येत्तर साहित्य, पृ.सं. 02.

[9]मराठी वाङ्मयातील नवीन प्रवाह, पृ.सं. 87.

भी आगे बढ़कर हम कह सकते हैं कि उस कालखंड की परिस्थितियों और समस्याओं को सही ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल तक पहुँचना और उनके संदर्भ में सही निर्णय ले सकने की क्षमता अर्जित करना ही समकालीनता है।

समकालीनता के संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह का कहना है कि—"आज 1960 ई. के बाद के साहित्य के लिए 'समकालीन' संज्ञा प्रचलन में आ चुकी है, केवल आंदोलनबद्ध दृष्टि उसे स्वीकार नहीं कर रही है । आधुनिक नवलेखन के संदर्भ में इन शब्दों को 'आधुनिक' के समानधर्मी रूप में स्थापित करने की चेष्टा हुई है। किंतु इसमें वह अर्थविस्तृति नहीं आ पाई जो 'समकालीन' को कालपरक मानते हुए 1962 ई. के पश्चात समस्त साहित्य-सृजन के लिए उसका प्रयोग कर सकते हैं ।"[10] डॉ. पुष्पपाल सिंह की मान्यता को एकांगी बताते हुए डॉ. अर्जुन चव्हाण लिखते हैं—"समकालीन के काल तो महत्त्व रखता ही है लेकिन उसके अलावा 'सम', 'समान' या 'एक जैसे' का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि काल या समय का है।"[11]

समकालीनता केवल एक परिदृश्य-संबंधी कथन भर नहीं है, बल्कि इसके लिए यह परिदृश्य किन-किन ऐतिहासिक परिस्थितियों में से उभरता हुआ बनता है । इसे देखना, समझना और परखना जरूरी है। समकालीनता के लिए जरूरी है कि सामाजिक संदर्भों से गहरे रूप से जुड़कर समसामयिक स्थितियों को पहचानते हुए, समकालीन सच्चाई के जटिल, सघन और गहरे स्तरों को सामने लाया जाय। इसके लिए रचनाकार और बुद्धिजीवी को संवेदनशील एवं सचेत दोनों ही होना चाहिए। इस संदर्भ में डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं—"इस प्रकार स्वचेतना और संवेदनशीलता समकालीनता की अनिवार्य शर्तें हैं। जड़ व्यक्ति अपने काल,

---

[10]समकालीन कहानी युग बोध का संदर्भ, पृ.सं. 84.

[11]समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, पृ.सं. 95-96.

अपने समय, व्यक्ति और प्रवृत्तियों की परवाह नहीं करता । वह गतिहीन मूर्च्छा में जीता है, रहता है । सचेतन समकालीन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध, व्यक्ति और समूहबोध, एकीकृत (Integrated) बोध होता है । अतएव समकालीनता का ज्ञान काल की निरंतरता या प्रवाह और परिणतियों की संभावनाओं का ज्ञान है ।"[12]

अतः अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों को स्वीकार कर उनसे निरंतर जूझना-टकराना समकालीनता है । समस्याएँ अपने विभिन्न रूपों में हर देश और काल में उपस्थित रहती हैं, लेकिन समकालीनता के संदर्भ में उन समस्याओं को समझना सबसे जरूरी है जो प्रासंगिकता में केंद्रीय महत्त्व रखती हों । इतिहास पर दुबारा नज़र डालें तो पता चलता है कि हमारे दुखः, निराशा, संकट आदि का कारण बाहरी उतना नहीं, जितना भीतरी है । कारणों को भीतरी रहस्य तक जाने के पश्चात् पता चलता है कि मुख्य कठिनाइयों के पीछे हमारी आर्थिक तथा राजनैतिक समाज व्यवस्था क्या रही है ? इस समाज व्यवस्था का विकास चक्कदार सीढ़ी की तरह रहा है । हमारे समाज की संरचना वैषम्यमूलक रही है । जिसमें धनी वर्ग निरंतर सुविधा का भोग लेता रहा है । इसमें निम्नवर्ग को सम्मान का स्थान नहीं के बराबर रहा है । इस संदर्भ में विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं कि—"यह सामाजिक, राजनीतिक जनतंत्र बड़े लोगों के लिए एक सुखद संस्था है । व्यवहार में जनतंत्र का अर्थ अल्पतंत्र है । इस संरचना तथा ढाँचे को तोड़ने वाला साहित्य समकालीन साहित्य है । जिस रचना से इस ढाँचे पर चोट नहीं होती वह अप्रासंगिक साहित्य है । उसका ऐतिहासिक या क्लासिक मूल्य हो सकता है लेकिन उसका समकालीन मूल्य नहीं होगा ।"[13]

---

[12]समकालीन साहित्य और सिद्धांत, पृ.सं. 13

[13]वही, पृ.सं. 17.

सन् 1970-80 के बाद तथा आज के उपन्यासों में से उभरते हुए रचनात्मक आंदोलनों की समकालीनता से सिद्ध होता है कि ये उपन्यास वर्तमान व्यवस्था का विरोधी है । ये उपन्यास नैतिकता, जनद्रोही नीतियों तथा राजनैतिक प्रपंचों के षड्यंत्रों तथा उनके साधनों या उनकी सोच को एक्सपोज करते हैं । स्थितियों, व्यक्तियों तथा शक्तियों के दो टूक विश्लेषण में ही समकालीनता निहित है । “असत्य, दंभ, षड्यंत्र, सनक और भोगविलास के ऊपर जो लोग और तबके शांति, जनतंत्र, परिष्कृति, प्रयोग, आधुनिकता अथवा अन्य मुखौटे लगाते हैं । उन्हें कठोर, कचाटेक स्वरों में, आम आदमी की बोली में नोच फेंकना ही समकालीनता है ताकि सही स्थिति सामने आ जाए और परिवर्तन के सही पक्षधरों को कोई भ्रम न रहे कि कौन अपना है, कौन जड़ बातों की तरफ है ।”[14]

समकालीनता असल में अपने काल की समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करने का ही दूसरा नाम है । समकालीनता के घेरे में आने वाला रचनाकार उन समस्याओं पर अपनी दृष्टि केंद्रित करता है जो समस्याएँ केंद्रीय महत्त्व की होती हैं । इन्हीं समस्याओं की परख सूझ-बूझ समकालीनता का भ्रूण हुआ करती हैं । जो साहित्य इस गलत सामाजिक ढाँचे को तोड़ता है, वही सही‘समकालीन साहित्य’ है ।

1.3. उपन्यासः स्वरूप एवं परिभाषा

हिंदी साहित्य जगत में उपन्यास साहित्य नवीनतम विधाओं में से एक है । जिसका प्रारंभ 19 वीं शताब्दी से माना जाता है । इससे पहले उपन्यास विधा का सर्वथा अभाव देखने को मिलता था । जब से हिंदी गद्य साहित्य की शुरूआत हुई तब से ही उपन्यास साहित्य की भी शुरूआत हुई ।

---

[14]समकालीन साहित्य और सिद्धांत, पृ.सं. 17.

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति को जानने के लिए सबसे पहले उससे संबंधित कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भों को जानना अति आवश्यक है ।

मूलतः 'उपन्यास' शब्द संस्कृत की 'अस्' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है- रखना या असुक्षेपण । 'उप' और 'नि' पूर्वक 'अस्' धातु में 'धञ' प्रत्यय जोड़ने से (उप+नि+अस्+धञ) 'उपन्यास' शब्द बनता है । जिसमें 'उप' का अर्थ है- समीप या निकट और 'न्यास' का अर्थ थाती या धरोहर होता है । इस प्रकार इसका सामान्य अर्थ होता है- मनुष्य के निकट या समीप रखी हुई कोई वस्तु । लेकिन यह तो इसका केवल एक सीमित अर्थ ही है । आज इसका अर्थ विस्तार हो गया है ।

हिंदी में जिसे 'उपन्यास' कहते हैं उसके लिए अंग्रेजी में नॉवेल शब्द प्रचलित है । गुजराती में उसे 'नवलकथा', मराठी में 'कादंबरी' तथा बंगला में उसे 'उपन्यास' ही कहते हैं । अंग्रेजी का 'नॉवेल' शब्द लैटिन के 'नोवस' से बना है, जिसका अर्थ नवीन होता है । अंग्रेजी में 'नॉवेल' शब्द कुछ दिनों तक 'नवीन' और 'लघु कथा' दोनों अर्थ को द्योतित करता था, किंतु अठारहवीं शताब्दी के पश्चात साहित्य विधा के रूप में यह प्रतिष्ठित हो गया और आज जिस अर्थ में उसका प्रयोग होता है, वह अर्थ भी निश्चित हो गया । इतावली भाषा में 'नॉवेला'शब्द लघुकथा के लिए प्रयुक्त होते हैं । अंग्रेजी का 'नॉवेल' शब्द प्रत्यक्षतः 'Novus' से उत्पन्न हुआ है । इतावली शब्द 'नॉवेला' का अर्थ पारंपारिक से प्रतिकूल मौलिक कहानी ही नहीं होता, वरन् वह कहानी होता है जो वर्तमान में घटित हो अथवा जिसे घटित हुए अधिक समय न हुआ हो । इससे यह बात स्पष्ट हो जाति है कि नॉवेल नवीनता का द्योतन तो करता ही है, साथ ही वह इस तथ्य का भी द्योतन करता है कि उसका संबंध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वर्तमान जीवन से है ।

उपन्यास का फलक इतना विस्तृत है कि उसे किसी एक निश्चित परिभाषा में बांधना कठिन कार्य है, लेकिन फिर भी बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार उसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ देने का प्रयत्न अवश्य किया है जो निम्न प्रकार से हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार—"वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।... लोक या किसी जनसमाज के बीच काल की गति के अनुसार जो मूढ़ और चिंत्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम है।"[15]

डॉ. श्यामसुंदर दास ने उपन्यास के बारे में कहा है—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[16]

डॉ. गुलाबराय के मतानुसार—"उपन्यास कार्य-करण-श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"[17]

---

[15]हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 513.

[16]साहित्यालोचना, पृ.सं. 180.

[17]काव्य के रूप, पृ.सं. 15.

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार—"उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है । इसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है । वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है ।"[18]

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार—"उपन्यास यथार्थ मानव अनुभवों एवं सत्य का आंकलन है, वह जीवन की एकता में अनेकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करने का प्रयत्न करता है ।"[19]

एवेल चेवेल के मतानुसार—"उपन्यास निश्चित आकार वाला गद्य रूप आख्यान है ।"[20]

राल्फ फॉक्स के अनुसार—"उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है, यह मानव-जीवन का गद्य है, यह प्रथम कला है जिसने मानव को संपूर्णता में लेने और उसे अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है ।"[21]

इस प्रकार उपन्यास साहित्य न केवल एक व्यक्ति के बल्कि अपने साथ एक समाज तथा समस्त युग के चरित्र को भी प्रस्तुत कर देता है । इसलिए वर्तमान समय में जितना तेजी से उपन्यास ने विकास किया है, उतना शायद अन्य किसी विधा ने नहीं किया होगा । आज संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक रचनाएँ उपन्यास की ही दिखाई देती हैं । अब तो यह भी कहा जाने लगा है कि इक्कीसवीं सदी तो उपन्यासों की ही होगी । जितने नये-नये प्रयोग उपन्यास विधा में हुए

---

[18]आधुनिक साहित्य, पृ.सं. 173.

[19]हिंदी उपन्यासः उपलब्धियाँ, पृ.सं. 11.

[20]हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ.सं. 03.

[21]The Novel and the People, Page. No. 52.

हैं, उतने अन्य किसी विधा में नहीं हुए, और इन्हीं सब कारणों की वजह से उपन्यास साहित्य मानव जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है।

1.4. समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासः एक परिदृश्य

सन् 1980 या उसके आस-पास के समय से हिंदी और मराठी उपन्यासों का जो सृजन-परिदृश्य है, उसे 'समकालीन उपन्यास'के रूप में देखा परखा जा सकता है।

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में अनेक अंगों तथा अर्थों से भिन्न हैं। यह उपन्यास-साहित्य वैविध्यपूर्ण विचारों का वाहक था, इसमें मनोरंजनात्मकता मुख्य थी और वैचारिकता गौण।

समकालीन समय में जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं उन उपन्यासों में 'गहन शोध-परखता' विद्यमान है। इन उपन्यासों की भाषा-शैली, अभिव्यक्ति, मूलतत्त्व भी पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न नज़र आती है। हम जब प्रेमचंद के उपन्यासों को पढ़ते हैं तो वहाँ प्रमुख पात्र नायक दिखाई पड़ता है। नायक पात्र है तो वह नई चेतना का विकास करता है। उसी तरह 'शेखर एकः जीवनी' में शेखर भी करता है। लेकिन बाद में 'राग दरबारी' जैसे उपन्यास आते हैं। वे नायक प्रधान उपन्यास नहीं है। वहाँ मोहभंग की स्थिति को दर्शाया गया है। तो उपन्यास समकालीनता और आधुनिकता के बीच की स्थिति को उपस्थित करता है। इसी तरह आदिवासी उपन्यासकारों ने इतिहास-बोध को उपस्थित किया है। एक तरफ हम उत्तर-आधुनिकता में कहते हैं कि इतिहास का अंत हो गया है। किंतु जिन समाजों, समुदायों, तबकों का इतिहास नहीं लिखा गया, वो गहन इतिहास-बोध के साथ उपस्थित होते हैं। जैसे—दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, स्त्री आदि कहते हैं कि—जो परंपरागत इतिहास लिखा गया है उसे हम अस्वीकार करते हैं। हम अपना इतिहास अपनी इतिहास-दृष्टि से और विवेक के आधार पर लिखेंगे। इसके

लिए हम मौखिक, गीत, लोकगीत, लोक-कथा या लोकतत्त्व का सहारा लेंगे । जिस समाज के पास अपना इतिहास नहीं होता वह समाज अपना न इतिहास लिख पाता है, न अपनी संस्कृति बचा पाता है, न कोई प्रबल प्रतिरोध का स्वर उभारकर सकता है । इसलिए तो दलित साहित्यकार भी सवाल करते हैं कि हमारे पास 'वीरांगना झलकारी बाई' थी, 'मातादीन भंगी' था, आदिवासियों में भी सिदो, कानो, शाबू, लालचन दा, रूमझुम, मराठी में तंट्या, भागोजी नाईक, भीम्या, केरू आदि हैं, लेकिन आपने इतिहास में इन्हें दर्ज़ क्यों नहीं किया ? दूसरी बात यह है कि, आदिवासी-समाज की भाषा, संस्कृति, कौम को मिटाने के लिए सत्ताधारी एवं तथाकथित समाज जी जान से लगे रहे हैं । आज विश्व की अधिकांश आदिवासी भाषाएँ मृतप्रायः हैं । इस संदर्भ में उत्तर-औपनिवेशिकवाद के न्याय चिंतक न्यगीवा त्वांगों ने कहा है— 'किसी की कौम (वंश) को खत्म करना है तो सबसे पहले उसकी भाषा पर अतिक्रमण करो ।' भाषा पर आक्रमण करोगे तो उसकी संस्कृति ख़त्म हो जाएगी, इतिहास भी ख़त्म हो जाएगा । इसी तरह आदिवासी भाषाओं का ब्यौरा देते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक एवं उपन्यासकार हरिराम मीणा लिखते हैं—"आदिवासियों की अधिकांश भाषाएँ अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं । अनेक भाषाएँ नष्ट हो चुकी । सन् 1960 की जनगणना में भारत में करीब साढ़े छः सौ भाषाएँ चिन्हित की गई थी । इनमें से सन् 2001 की जनगणना में करीब 40 प्रतिशत भाषाएँ विलुप्त पाई गईं । इसकी प्रमुख वजह विकास के साथ मौलिक भाषाओं के स्थान पर वर्चस्व रखने वाली तथाकथित मुख्य समाज की भाषाओं के प्रति आकर्षण रहा ।"[22]

प्रस्तुत शोध-विषय के मुख्यतः दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैः

1. हिंदी के समकालीन उपन्यास

---

[22]आदिवासी दुनिया, पृ.सं. 74.

2. मराठी के समकालीन उपन्यास

उपर्युक्त दोनों पक्ष शोध-विषय रूपी सिक्के के दो पहलू हैं । दोनों का महत्त्व समान है । विवेच्य विषय के अध्ययन में सन् 1980 से आगे के उपन्यासों को अध्ययन के लिए चुना गया । हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन को रेखांकित करने के तथा उसमें समानताएँ एवं असमानताओं को दिखाने के लिए इन उपन्यासों को चुना गया है । विवेच्य उपन्यासों का लेखन क्रम अपनी अलग अहमियत रखता है । यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि हिंदी तथा मराठी के उपन्यासों में कुछ ऐसे विषय उपन्यास के केंद्रीय विषय बने हैं कि जो दोनों भाषाओं में समान रूप से सन्निहित हैं । इस दृष्टि से भी उपन्यासों के प्रकाशन क्रम को रेखांकित करना आवश्यक हो जाता है ।

1.4.1.समकालीन हिंदी उपन्यास

लेखक का नाम	कृति का नाम	प्रकाशन वर्ष
1. किशोर कुम्हार सिन्हा	गाथा भोगनपुरी	1986
2. श्री प्रकाश मिश्र	जहाँ बाँस फूलते हैं	1997
3. संजीव	जंगल जहाँ शुरू होता है	2000
4. मैत्रेय पुष्पा	अल्मा कबूतरी	2000
5. तेंजिदर	काला पादरी	2002
6. राकेश कुमार सिंह	जो इतिहास में नहीं है	2005
7. हरिराम मीणा	धूणी तपे तीर	2008
8. रणेंद्र	ग्लोबल गाँव के देवता	2009

समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करते समय हिंदी तथा मराठी के उपन्यासों का प्रकाशनकाल महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है । क्योंकि इन

उपन्यासों में जिन विषयों की अभिव्यक्ति मिलती है तथा जिन समस्याओं के गहन, गंभीर विमर्श हुए हैं उन्हें परखने में सहायता मिलती है । समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों को विश्लेषित करने से पहले हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में कुछ विद्वानों ने अपनी नाराजगी व्यक्त की है । इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध आधुनिक आलोचक डॉ. श्यामाचरण दुबे कहते हैं—"हिंदी उपन्यास की उल्लेखनीय सफलताओं के बावजूद भारत के सामाजिक यथार्थ के आकलन में उसकी सीमाएँ और न्यूनताएँ चुभनेवाली हैं ।... भूमिहीन खेतिहारों, बंधुआँ मजदूरों और औद्योगिक श्रमिकों पर जो लिखा गया है वह नाकाफी है और संतोष भी नहीं देता । आदिवासियों व दरिद्र समाज का दर्द भी अभिव्यक्ति नहीं पा सका है ।... अधिकांश हिंदी उपन्यास अभी भी नगरों और कस्बों के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं, बहुत कम लेखक ग्रामीण और दलित जन से तादात्म स्थापित कर सके हैं...।"[23]

1.4.1.1. गाथा भोगनपुरी

किशोर कुमार सिन्हा कृत 'गाथा भोगनपुरी' यह इनका पहला उपन्यास है । जिसका प्रकाशन सन् 1986 में वाणी प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है । उपन्यास के केंद्र में उत्तर-प्रदेश के बुंदेलखंड से संबंधित 'कोल' आदिवासी बंधुआ मजदूर की गाथा है । यह उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में काफी प्रशंसित हुआ है ।

उपन्यास की शुरुआत ही 'बँगड़ू' से होती है । और इस उपन्यास का नायक भी बँगड़ू ही है । बँगड़ू अपने पूर्वजों की परंपरा को अपनाते हुए ही दादूसिंह के यहाँ मजदूरी करता है । उसके तीन पीढ़ियों से यही कार्य करते आ रहे थे—"बँगड़ू बचपन से ही दादूसिंह के घर में काम कर रहा था । उसे ये जानने की कभी इच्छा नहीं हुई कि वो दादूसिंह के यहाँ मजदूरी क्यों करता है ।

[23]परंपरा, इतिहास-बोध और संस्कृति, पृ.सं. 58.

उसने अपने बाप को दादूसिंह के यहाँ हमेशा मजदूरी करते देखा था, और उसके बाप ने भी शायद अपने बाप को इसी हालात में देखा था। बँगडू का बाप जब पीले रोग के कारण मरने की हालत में था तो उसने बँगडू को बताया था कि बँगडू के दादा ने दादूसिंह के बाप से बीस रूपये उधार लिये थे और उसे चुकाने से पहले ही वो मर गया था। इसी कर्ज़ की सूद के एवज में बँगडू का बाप दादूसिंह के यहाँ मजदूरी करता था और अब बँगडू को मजदूरी करनी थी।"[24]

उपन्यासकार ने उपन्यास में बंधुआ मजदूरों की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया है। कुछ जगह पर चमार टोली का जिक्र हुआ है, कई जगह आदिवासियों का धर्म-परिवर्तन करने के लिए फादर सिकारो को पेश किया गया है। इस उपन्यास में कुछ ऐसे भी पात्र है जो आदिवासी बंधुआ मजदूरों का पक्ष लेकर अपनी जान जोखिम में डालते हैं। जैसे—प्रशासनिक अधिकारी-जन्ट साहब और ग्राम विकास अधिकारी-रामअधार।

बंधुआ मजदूरों को बंधुआ का अर्थ ही ज्ञात नहीं है तो उनसे विरोध अथवा क्रांति की आशा कैसे की जा सकती है ?"अरे हम लोग का रस्सी बँधे रहते हैं जो बंधुआ हुए ?"[25] ग्राम विकास अधिकारी रामअधार ने इन आदिवासियों को बंधुआ का मतलब समझाने की कोशिश की—"बंधुआ का मतलिब रस्सी से बँधा जिनावर नहीं है, बंधुआ का मतलिब है जिबरदस्ती काम करना, मजूरी कम देना।"[26]

'गाथा भोगनपुरी' को उपन्यास कहा जाए, लंबी कहानी, रिपोर्ताज या विस्तृत रपट यह समस्या इसके समीक्षकों के सामने जरूर खड़ी होगी। कहने को तो यह लेखक का पहला उपन्यास है लेकिन इसकी सामाजिक और राजनीतिक अन्तर्दृष्टियाँ व्यक्तिगत अनुभवों की

---

[24]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 07.

[25]वही, पृ.सं. 62.

[26]वही, पृ.सं.62.

गवाही देती है । यह एक ऐसे युवा प्रशासनिक अधिकारी की कथा है जो अपने आस-पास के मजदूरों और आदिवासियों को अन्याय से पिसते, शोषित होते देखता है और उनका पक्ष लेने की जोखिम-भरी भूल कर बैठता है । उपन्यास जिस चरमोत्कर्ष पर आकर समाप्त होता है उसमें हताशा या कुण्ठा नहीं है बल्कि हमारे समय की सच्चाई का त्रासद एहसास है । इस कृति की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि यह भावुकता, दया या करुणा की बैसाखियों का सहारा नहीं लेती । यह वास्तविकता का बयान बड़ी ठेठ भाषा में करती है । इसे एक अफ़सर के प्रतिवेदन के रूप में भी पढ़ा जा सकता है । 'गाथा भोगनपुरी' हिंदी उपन्यास में एक छोटी लेकिन नई शुरुआत है । पहली बार हमारे समाज और हमारी राजनीति को अंदरूनी निगाह से देखा गया है । प्रस्तुत उपन्यास बंधुआ मजदूरी को हटाने तथा उनके पुनर्वास के संदर्भ में बनाई गयी योजनाओं के असफ़ल होने की 'गाथा' है ।

1.4.1.2. जहाँ बाँस फूलते हैं

श्री प्रकाश मिश्र कृत 'जहाँ बाँस फूलते हैं' एक सशक्त आदिवासी उपन्यास है । इसका प्रकाशन सन् 1997 में पार्श्व प्रकाशन, प्रमुखदाबाद से हुआ है । भारतीय राष्ट्र-राज्य के संदर्भ में केंद्रीय सत्ता के अधिपत्य और परिधि के प्रतिरोध का यह औपन्यासिक-वृत्तांत जिसे मिजो विद्रोह की पृष्ठभूमि पर रचा गया है, यह इस विषय के रूप में हिंदी उपन्यास साहित्य में पहला प्रयास है । उपन्यास में मिजोरम के ईसाई विद्रोहियों की गाथा है, जो शेष भारत से पृथक अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहते हैं ।

ध्यातव्य है कि 'सबाल्टर्न' की अवधारणा में आनेवाला पहला वर्ग आदिवासियों का था तो दूसरा किसानों का था । उपन्यास में मिजो जन-जाति की अस्मिता, स्वतंत्रता व आर्थिक शोषण के प्रश्नों को भारतीय राजनीति व समाजनीति की मुख्यधारा से टकराहट के रूप में

प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास के अध्ययन के संदर्भ में गोल्डमान की सैद्धांतिकी 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' अत्यंत उपयोगी हो सकती है । उपन्यास में चित्रित मिजो संस्कृति, भाषा, भूगोल, जीवनचर्या, खान-पान, प्रकृति, जंगल, पहाड़ एवं पशु-पक्षी का जीवंत और सार्थक अभिव्यक्ति उपन्यासकार के मिजो जीवन के अंतरंग में बैठ और जानकारी को उजागर कर, उपन्यास को मूल्यवान बनाती है ।

पुलिस, प्रशासन और सरकारी व्यवस्था ने आदिवासी-समाज को विद्रोह और संघर्ष के लिए मजबूर किया । फलतः अत्याचार एवं दमनकारी व्यवहार के विरूद्ध आदिवासियों में चेतना जागृत हुई । इसका परिणाम उनके संघर्ष के लिए खड़े होने में हुआ, व्यवस्था के परिवर्तन की प्रबल कामना में हुआ । वर्तमान हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श विषयक चित्रण खूब मिलता है । श्री प्रकाश मिश्र के 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के लालडेङा में आदिवासी-समाज को विद्रोही बनाने की ओर अपने सोये हुए स्वाभिमान को चेताने की दृष्टि लक्षित होती है जो असम रायफल्स में पच्चीस वर्षों तक हवालदार क्लर्क रह चुका था । जब बेवजह डाका डालने का मुकदमा दायर कर पुलिस आदिवासियों की खोज में निकलती है तो लालडेङा कोमुक खोजता है । आदिवासी को जंगली मानकर उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार करनेवाली पुलिस तथा सरकार को जंगली बनकर जूतों की भाषा में ही जवाब देना ज़रूरी समझते हुए लालडेङा कहता है—"निहुरे-निहुरे अपना ह नहीं पाया जा सकता । चाल्हिया की सरकार हमें जंगली समझती है । अपने जूता के नीचे दबाकर रखती है । हमें भी जूता की भाषा में बात करनी होगी और पूरा जंगली बनकर दिखाना होगा ।"[27]

उपन्यास में उत्तर-पूर्व की मिजो-जनजाति के अस्तित्व, स्वतंत्रता एवं अस्मिता व आर्थिक शोषण के सवालों की भारतीय राजनीति और समाज की मुख्यधारा से टकराहट का यह

[27]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 75.

उपन्यास है । उपन्यास मिजो समाज तथा इनके भू-भाग को विस्तार से प्रस्तुत करता है । तिब्बत, बर्मा तथा तत्कालीन पूर्वी बंगाल तक है ।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' मिजोरम के ईसाई विद्रोहियों की गाथा है, जो शेष भारत से पृथक अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहते हैं । जिनका नेता लालडेङा है, इतिहास का यह तथ्य सर्व विदित है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत सरकार की यह नीति रही है कि पूरा देश एक-सूत्र में बंधे । "हम जब ईसाई हुए तो तमाम परंपराओं को छोड़ दिए । फिर इसे निभाने की क्या जरूरत है ? और फिर यह ईसाईयत के खिलाफ है । देयर इज ओनली वन गॉड । एण्ड दैट गॉड एम आई । टेन कामाण्डमेंट्स के अनुसार दूसरा खुदा बनाना 'ब्लासफेमी' है ।"[28]

पूर्वोत्तर भारत की समस्त जनजातियाँ भी राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़े, इसके लिए जहाँ कल्याणकारी योजनाओं को प्रारंभ किया गया । स्थानीय जनता की इच्छाओं, अभिलाषाओं की पूर्ति एवं प्रादेशिक विकास हेतु छोटे-छोटे जिलों का निर्माण किया गया, वही दूसरी ओर सशस्त्र सेना द्वारा पृथकवादी शक्तियों को परास्त करने की मुहिम भी छेड़ी गई । लालडेङा ने विदेश में रह कर विद्रोह का संचालन किया । भारत की क्षेत्रीय अखंडता तोड़ने का षड्यंत्र रचनेवालों की मदद से मिजोरम को आज़ाद करने की लड़ाई काफ़ी लंबी चली ।

आज भी उत्तर-पूर्व भारत में भारतीयता और भारतीय परंपराओं के विरूद्ध प्रचार जारी है । जिसका अनेक मोर्चों पर सामना किया जा रहा है । 'जहाँ बाँस फूसते हैं' के इस मिजो समाज में "भूख का मारा मिजो वर्षों तक इंतजार करता, फिर जंगल को साफ कर धान लगा जाता था । फसल जब तैयार होने को होती थी तब अपना झोंपड़ा बना जाता था । फिर एक दिन रात को इलाके के पुराने जमींदार रामनाथ लश्कर और मुश्ताक खांडकार अपने हाथियों के

[28]वही, पृ.सं. 136.

साथ आ धमकते, इनके घरों को उजाड़ फसल काट कर ले जाते और खेती लायक जमीन दो-चार साल के लिए कब्जा कर लेते थे।"[29]

श्रीप्रकाश मिश्र मिजो जनति के अलगाव व विद्रोह की औपन्यासिक कथा को मात्र राजनीतिक रूप से ही संदर्भित नहीं करते, बल्कि इसके सांस्कृतिक व जनपक्षधर रूप को भी उजागर करते हैं। वे मिजो समाज के बहिरंग पर ही ध्यान न केंद्रित करके इसके अंतरंग को भी अनावृत्त करते हैं। यहाँ शेर, भालू, कुत्ते के शिकार व भोजन से लेकर जिंदा मुर्गों, बिल्ली को खौलते पानी में उबालकर बने पेय, जिंदा भुने कुत्ते के पेट में सुअर की चर्बी के सलाखों की गर्मी से के चावलों का खाद्यान्न है। युवक-युवतियों के बीच ऐसे वर्जनाहीन संबंध हैं कि— कोई त्लंगवाल (युवक) किसी नुला (युवती) को बहन नहीं कहता और—"कंधे पर मर्द का हाथ क्वाँरी लड़की के लिए बड़ा सम्मानजनक माना जाता है।"[30]

डॉ. महेंद्र भटनागर के अनुसार—"उपन्यास में किसी एक परिवार की कथा नियोजित नहीं होती है। वह तो एक संपूर्ण जनजाति की गाथा है। उसमें मिजो विद्रोह का एक क्रमिक विवरण है, जो मिजोरम को शेष भारत से पृथक रखने का षड्यंत्र इस उपन्यास में आकर विस्तार लेता है।"[31]

विद्रोह का रूप इस तरह से है कि मिजोरम में भयंकर अकाल पड़ता है। धर्म की घुट्टी पिये हुए मिजोरम के लोग भारत सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह के लिए संगठित होते हैं। लगता है, मिजोरम की पूरी कौम एक भटकी हुई कौम है, वह शेष भारत से पूरी कटी हुई है। शेष भारत से मिजोरम के आम आदमी का संपर्क नहीं के बराबर है।

[29]वही, पृ.सं. 74.

[30]वही, पृ.सं. 298.

[31]वही, पृ.सं.107.

प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिक न होते हुए भी इतिहास से संबंद्ध है । तमाम घटना चक्र इतिहास सम्मत है । उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं । उपन्यासकार ने'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में मिजो आदिवासियों का जीवन चित्रण कर उनकी समस्याओं को उजागर करने की कोशिश उपन्यासकार श्रीप्रकाश मिश्र ने की है ।

1.4.1.3. जंगल जहाँ शुरू होता है

संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरू होता है' यह उपन्यास सन् 2000 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । उपन्यास की कथाभूमि बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले की है, जिसे 'मिनी चंबल' भी कहा जाता है । यह स्थान डाकुओं का अभ्यारण्य कहा जाता है । लेखक ने एक समय भारत के प्रधान मंत्री द्वारा डाकू उन्मुलन हेतु चलाए गए, 'ऑपरेशन ब्लैक पैंथर' (उपन्यास में लेखक ने इसका नाम ब्लैक पैंथर रखा है ।) के परिप्रेक्ष्य में, उस क्षेत्र के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया हैं ।

संजीव ने जिस थारू जनजाति के जीवन-संघर्ष व दुःख-दर्द को औपन्यासिक बनाता है, वहीं'प्रजातंत्र' व 'विकास' एक प्रहसन का अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं । संजीव बिना कुछ लाग-लपेट के सीधे-सीधे यह प्रश्न अपने उपन्यास की अंतर्वस्तु में विन्यस्त करते हैं कि—"क्या राज्य की कल्याणकारी अवधारणा और वचनबद्धता से बाहर पड़ते हैं जोगी जैसे लोग ?"[32]

उपन्यास का केंद्रीय पात्र पुलिस उप-अधिक्षक कुमार, ऑपरेशन के दौरान थारू जनजाति किस प्रकार प्रभावित होती है, इसे दिखाने के लिए लेखक ने उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थितियों की जानकारी अन्य विभिन्न पात्रों के माध्यम से दी है । उपन्यास में उस विशिष्ट क्षेत्र में

---

[32]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 282.

व्याप्त जंगल-राज की पर्तों को भी उखाड़ने का सफल प्रयास किया गया है । इसी क्रम में उस क्षेत्र के लोगों की आर्थिक बदहाली तथा परिस्थितिवश डाकू बनने की गाथा का भी मार्मिक चित्रण किया गया है । समाज, प्रशासन तथा न्याय व्यवस्था की पोल खोलने में भी लेखक ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है ।

उपन्यास में नारी-शोषण की समस्या भी चित्रित की गई है । लेखक ने बिसराम-बहू और मलारी जैसी स्त्रियों की दयनीय स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । बिसराम बहू के साथ जमींदार, डाकू एवं पुलिस अमानवीय व्यवहार करती है । परशुराम उसे जबरन उठा ले जाता है, तथा पुलिस थाने में उसके साथ बदसलूकी करती है । दूसरी तरफ मलारी की पूरी जिंदगी इस नरकीय स्थिति को भोगने के लिए अभिशप्त हो चुकी है । कुमार जैसा ईमानदार पुलिस अफ़सर भी उसके साथ अनैतिक संबंध स्थापित करता है । वहीं दूसरी ओर डाकुओं का उसके यहाँ आना-जाना लगा रहता है । मलारी का लड़का, सेठ के साथ मजबूरी में अनैतिक संबंध स्थापित करने की निशानी है । स्त्रियों पर समाज के हब्शियों की नज़र हमेशा लगी रहती है । तस्करी, स्मगलिंग, औरतों की खरीद-फरोख़्त के गिरोह एवं तंत्र की ओर भी लेखक ने संकेत किया है । इन धंधों में जोगी, सोखाइन, मलारी, लाखो सिंह आदि पात्र संलिप्त हैं ।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास का सच तो यह है कि डाकू समस्या के बहाने हाशिए के उस जीवन को विश्लेषित किया गया है जिसे अपराध की भूमि व शरणस्थली के रूप में चिन्हित कर सभ्य समाज के अन्य शत्रु छवि में ढाला जाता है । उपन्यास के बिसराम और काली बेतिया इलाके की जिस थारू जनजाति से आते हैं वे कंगाल की जिंदगी जी रहे हैं ।

1.4.1.4. अल्मा कबूतरी

'अल्मा कबूतरी' मैत्रेयी पुष्पा का एक सशक्त उपन्यास है । उपन्यास के केंद्र में बुंदेलखंड की विशिष्ट जनजाति की समस्याओं को लिया गया है । 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास ने ही मैत्रेयी

पुष्पा को संवेदनशील लेखिका के रूप में प्रतिष्ठा दिलवायी है । देखा जाए तो यह उपन्यास 'कबूतरा' जनजाति की जिंदगी का दर्पण है ।

कहानी कदमबाई से शुरू होती है । कबूतरा जनजाति की खूबसूरत लड़की कदमबाई अपने रिवाजों के अनुसार सयानी होते ही उसे जंगलिया से ब्याह दिया जाता है । कबूतरा खानाबदोश जनजाति है जिनके गाँव नहीं होते डेरे होते हैं । खानाबदोशी धीरे-धीरे छूट रही है और ये लोग एक ही जगह रहने के अभ्यस्त होने लगे हैं । इनके नाम मडरोरा खुर्द की वोटर लिस्ट में भी आ गए हैं । इसी लोभ में बस्ती के मंसाराम इन लोगों के बीच आना-जाना शुरू करते हैं । उसकी नज़र इन लोगों के वोट पर है । इनकी बदौलत अपने प्रतिद्वंद्वी लल्लूराजा की प्रधानी चुनाव में हराने का गणित बैठाते हैं । कबूतरा लोग मंसाराम की ही ज़मीन पर बसे हुए हैं उनके रहमोकरम पर, इसलिए उनके बीच इनका अपने तरीके से रौब भी है । कबूतरा लोगों के बीच जाने पर मंसाराम की नज़र कदमबाई पर पड़ती है । खूबसूरत जवान कदमबाई उनके दिल में बैठ जाति है । कबूतरा लोगों का मुख्य काम है— चोरी करना । स्त्रियाँ शराब पिलाती है और धंधा करती है । थाना की पुलिस हर दम इन्हें परेशान किये रहती है । पुरुष प्रायः जंगलों में भागे रहते हैं । चोरी-छिपे ही वे अपने डेरों में आते हैं । मंसाराम षड्यंत्र करता है । कदमबाई अपने पति जंगलिया के लिए फसल भरे खेत में आती है, मंसाराम मदहोशी में उसके साथ संभोग करता है । लगभग इसी समय जंगलिया थाने में मारा जाता है । कदमबाई गर्भधारण करती है । वह मंसाराम से घृणा करते हुए भी अपने गर्भ से खिलवाड़ नहीं करती । माँ बनती है । उसका बेटा होता है । नाम रखती है-राणा । कबूतरा लोगों को विश्वास है कि राणा प्रताप उसकी ही जात-जमात के थे ।

रोहिणी अग्रवाल ने कहा है कि- 'यह जनजाति की तीन पीढ़ियों के संघर्ष का रोमांचक इतिहास है ।' इस उपन्यास में समाज की उस जाति की बात कही गई है, जिन पर बात करना

कोई भी पसंद नहीं करता । 'कबीलों में लोग कीड़ों की तरह जन्म लेते और मर जाते हैं । इन्हें सभ्य समाज अपराधी कहकर अपनी घृणा और तिरस्कार का पात्र बनाता आया है ।' लेखिका ने कबूतरा जाति के पुननिर्माण के लिए राजनीतिक प्रवेश का समाधान दिया है । राजनीति सत्ता का पर्याय है, जिसके पास सत्ता है, उसकी जाति शक्तिशाली समझी जाति है । इस शक्ति के सामने सब नतमस्तक होकर आदरभाव से झुकते हैं ।

कदमबाई कबूतरा समाज की स्त्री है और मंसाराम कज्जा समाज का पुरुष है । इस कथा का ताना-बाना कदमबाई और मंसाराम के रिश्तों को लेकर बुना गया है । संतान राणा के होने पर मंसाराम के कज्जा परिवार और अल्मा कबूतरी परिवार के मध्य रिश्तों की कशमकश शुरू होती है । 'कबूतराओं की जिंदगी की पीड़ा रह-रहकर पन्नों से झाँकती रहती है ।' इस उपन्यास में अल्मा की जिंदगी करवट लेती है । एक भागती हुई त्रासद जिंदगी कबूतरी न बने रहने का जोखिम बयान करती जिंदगी । पुस्तक परिचय (ब्लर्ब) के अनुसार— 'हर स्थिति को सीढ़ी बनाकर दीवारें फांदती कबूतरी', लेखिका ने उपन्यास में औरतों को हिम्मत के साथ प्रतिकूलताओं से संघर्ष करते हुए चित्रित किया है— कदमबाई, लछमन की बहू भनजी और सरमन की औरत खाकी रंग के घाघरे पहनकर गुड, महूआ की उधारी करने पनरी गाँव के तेली के पास जाति है । माल बेचते समय यदि कबूतरा-स्त्री, पुलिस द्वारा पकड़ी जाति है तो वह माल को देने के बदले पुलिस के हाथों मार खाने को तैयार हो जाति है । उन स्त्रियों की यह कैसी विवशता है ? अंततः यही कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने प्रमुख रूप से घुमंतू आदिवासी और खासकर आदिवासी-स्त्री के जीवन को उजागर करने का प्रयास किया है ।

1.4.1.5. काला पादरी

उपन्यासकार तेजिंदर कृत'काला पादरी' सन् 2002 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । यह उपन्यास 'उराँव' आदिवासियों के जीवन पर आधारित हैं । इस उपन्यास में आदिवासियों की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में धर्म के हस्तक्षेप और उनकी सार्थकता को जाँचने का सफल और मानवीय प्रयास है । धर्म जब अपने मापदंडों को बल्कि अपने विश्वासों की खास जीवनशैली को मनुष्य की अस्मिता से ऊपर मान बैठता है, तो विभिन्न धार्मिक विश्वासों के सह-अस्तित्व की अवधारणा ही खतरे में पड़ जाति है । प्रश्न उठता है कि अपने धार्मिक अनुयायियों की संख्या बढ़ाने का औचित्य क्या है ? मौजूदा राजनीति और पार्टियाँ इस खोखले प्रश्न को अनदेखा कर मनुष्य मात्र के कल्याण और हित पर विचार करने के बजाय, इसी कुप्रवृत्ति को वोट हाथिये का कारगर हथियार मान बैठी हैं ।

उपन्यासकार तेजिंदर इन तथ्यों की सत्यता को उपन्यास की यथार्थपरक जमीन पर पटक कर, इन्हीं के कथ्यों और कृत्यों का कठघरा बना देते हैं । इस उपन्यास में तेजिंदर ने मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित होती घटनाओं और जंगलों के पार सांस लेते जीवन का इतना विवरणात्मक, संवेदनशील एवं सूक्ष्म आकलन किया है जो कथा-साहित्य की एक विरल उपलब्धि है ।

उपन्यास के केंद्र में अंबिकापुर का आदिवासी बहुल क्षेत्र है । इस उपन्यास का 'नैरेटर' आदित्य बैंक पोस्टिंग पर अंबिकापुर गया है । आदित्य की पहली मुलाकात जेम्स खाखा यानी 'काला पादरी' से होती है । जो मूल रूप से आदिवासी है । उसके दादा और पिता ने ईसाई धर्म अपना लिया था । उसकी धर्मविश्वासी तथा धर्मभीरू इच्छा और प्रयासों से वह स्थानीय भय में पादरी हो गया है । पूरा उपन्यास जेम्स खाखा के अंतर्द्वंद्वों पर आधारित है । क्षितिज शर्मा के

अनुसार—“जेम्स खाखा भीतरी धर्म को या धर्म के मौजूदा रूप को उसी तरह नहीं ले पाता जैसे उसे प्रसारित या स्थापित किया जा रहा है।”[33]

यहीं से उपन्यास अपने मतंव्य की राह पकड़ लेता है। प्रसंग है बैंक में स्थानीय ‘पैलेस’ के रायसाहब के आने का उनके आगमन से पूरा बैंक हिल गया है। जेम्स खाखा और आदित्य के बीच वार्तालाप चल रहा है। आदित्य बता रहा है—“इन्हें पता होना चाहिए कि बैंक किस तहसिल के किन गाँवों में किन लोगों को ऋण दे रहा है। शहर में जो व्यापारी राय साहब के साथ हैं उनके साथ बैंक का कैसा बर्ताव है और जो साथ नहीं हैं, कहीं बैंक उन पर तो पैसा बर्बाद नहीं कर रहा है, इसके अलावा ईसाईयों को कितना...।”[34]

जेम्स खाखा उस संघर्ष का प्रतीक है। धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी धार्मिक संकीर्णता से ऊपर है। उसकी प्राथमिकता धर्म नहीं, मनुष्य है। बाइबिल उसे ताकत देती है। आंतरिक संकट में उसके उद्देश्य उसे बल देते हैं। उसकी भीतरी पीड़ा को हरते हैं। पर उसे धर्म अनुयायियों तक ही केंद्रीत नहीं होने देते, बड़े फलक पर मनुष्य से जोड़ते हैं। यहीं धर्म की सार्थकता का सवाल खड़ा होता है। वह अपने धर्माधिकारियों से भी बेहतर मानवीय मूल्यों वाली सामाजिकता का आग्रह करता है। “आई कान्फेस टू आलमाईटी गॉड एंड टू यू माई ब्रदर्स एंड सिस्टर्स दैट आई हैव सिनड थ्रू माई आईज, इन माई थॉट्स एंड इन माई वर्डस, इन व्हट आई हैव डन एंड इन व्हट आई हैव फेल्ड टू डू एंड आस्क ब्लेस्ड मैरी, एवर विरजिन, आल द एंजेल्स एंड सेंट्स एंड टू यू, माई ब्रदर्स एंड सिस्टर्स टू प्रे फॉर मी टू द लॉर्ड अवर गॉड।”[35]

---

[33]कथादेश, पृ.सं. 92.

[34]काला पादरी, पृ.सं. 15.

[35]वही, पृ.सं. 49-50.

प्रकारांतर से जेम्स का सवाल है— क्या धर्म मनुष्य की मुक्ति का माध्यम हो सकता है ? उत्तर भी इसी में निहीत है कि व्यवस्थाएँ अपने को बेहतर बताने के और अपने अस्तित्व को बनाये रखने की होड़ में किसी-न-किसी प्रकार अपने अंकुश को ही कसती जाति है। विश्वासियों के स्वतंत्र होने की छूट देने की मनाही कर देती है।

अंततः कहा जा सकता है कि—"प्लासी या बक्सर की लड़ाइयों से कहीं अधिक जटिल और निर्णायक इस युद्ध की परिणतियों को समझने की चेष्टा किसी इतिहासकार ने नहीं, पहली बार हिंदी में तेजिंदर ने की है।"[36] इस उपन्यास में एक तरफ सुख, पद, प्रतिष्ठा और प्रभुपद के समकक्ष दर्जा है, दूसरी तरफ भूखे, असहाय, धार्मिक प्रताड़ना के शिकार लोग हैं। जेम्स का जो कि स्वयं भी धर्मचारी है, उनके पक्ष में खड़ा होना मूल्यवान आदर्शों की स्थापना का प्रस्थान बिंदु है। इसलिए 'काला पादरी' एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

1.4.1.6. जो इतिहास में नहीं है

राकेश कुमार सिंह कृत 'जो इतिहास में नहीं है' यह उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से सन् 2005 में प्रकाशित हुआ है। लेखक ने अपने कथा साहित्य में अपने परिवेश और समय को भिन्न-भिन्न कोणों से रेखांकित किया है। उन्होंने आदिवासी जन-जीवन के गाँव-कस्बे, खेत-खलिहान, जंगल-पठार, दुःख-दैन्य, भूख, शोषण, अज्ञान, बेरोजगारी, अशिक्षा, विपन्नता और समय-समय पर होती क्रांतियों को संघर्ष-अमर्ष को बड़ी ही गहनता व सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण और दमन से त्रस्त झारखंड के आदिवासी संताल बहादुरों की मुक्ति-संग्राम की सशक्त महागाथा है। 'सन् 1857 की क्रांति' जो भारतीय इतिहास में प्रथम जनक्रांति या प्रथम स्वतंत्रता संग्राम होने का दावा करती है।

---

[36]वही, फ्लैफ से

आदिवासी जन-जीवन द्वारा किया गया स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय इतिहास में तत्कालीन सत्ता द्वारा कुचल दिया गया। लेखक ने अपने उपन्यास में कार्ल मार्क्स के 'नोट्स ऑन इंडियन हिस्ट्री' देते हुए लिखा हैं—"संताल आंदोलन 'हूल' कोई विद्रोह मात्र नहीं था वरन् अपनी अस्मिता, स्वायत्तता और संस्कृति के लिए वनपुत्रों का मुक्तिकामी संघर्ष था। संतालों की यह क्रांति अँग्रेजों को भारत से भगाने की प्रथम जनक्रांति थी।"[37]यह स्वतंत्रता संग्राम मात्र अंग्रेजी अत्याचार से मुक्ति पाने को ही नहीं था वरन् महाजन व जमींदारों के विरूद्ध भी यह संग्राम किया गया था। निर्मम व ह्लदयहीन महाजनों की क्रूरता के अंत का भी बीड़ा इस आंदोलन में उठाया था। दीनदयाल राय जैसे क्रूर महाजन के साथ 'हूल' के लड़ाकों ने भी ह्लदयहीन व्यवहार करते हुए उसे दंड दिया था। दीनदयाल महाजन की क्रूरता का शिकार हुआ जगन्नाथ अपनी प्रतिशोध की अग्नि को 'हूल' के लड़ाकों के सहयोग से शांत करता है, जिसे चित्रित करते हुए लेखक कहते हैं—"हाथ काहे को जोड़ता है रे महाजोन....? विषैली आवाज़ में बोला जगन्नाथ सरदार, जैन अँगुरी से तू हमारा सूद जोड़ता था.... तौन अँगुरी दे। जौन हाथ से हमें कोड़ा मारता था आज दे तौन हाथ....।"[38]

सन् 1857 से पूर्व हुए इन आंदोलनों के नायक वे लोग हैं, जिनके जल, जंगल जमीन के नैसर्गिक अधिकारों से उन्हें लगातार बेदखल किया जाता रहा है। अंग्रेजी हुकूमत, जमींदार और साहूकार के त्रिगुट ने वस्तुतः इन वनपुत्रों को उनके जीने के प्राकृतिक अधिकार से वंचित कर रखा था। ऐसे में सिदो-कान्हु जैसे लड़ाकों की अगुआई में संताल क्रांति 'हूल' का नगाड़ा बज उठता है। लेखक उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं—"हारे हुए युद्ध से उबरा योद्धा यदि अपने

---

[37]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 09.

[38]वही, पृ.सं. 239.

भीतर पुनः पुनः युद्धरत होने का साहस बचाये रख पाता है तो यह आंतरिक विजय भी एक उपलब्धि होती है जो भविष्य की लड़ाइयों का पाथेय बन जाति है । झारखंड के आदि निवासियों ने अपने मन को जीता और अपनी संघर्षशील चेतना को संरक्षित रखा, जिसके साक्ष्य ई. सन् 1781 के 'पहाड़िया विद्रोह' से लेकर ई. सन् 1855 के 'संताल हूल' तक ही नहीं, वरन् सन् सत्तावन के राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता संग्राम... और आगे सन् 1900 में बिरसा मुंडा के महाविद्रोह 'उलगुलान' तक मिलते हैं।"[39]

अपने देश के प्रति कुछ कर सकने का आनंद आदिवासी जन-जीवन में देशभक्ति के रूप में दिखाई देने लगा था। विदेशी सत्ता को समूल नष्ट करने का अदम्य साहस उनकी रगों में दिखाई देने लगता है। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास की यह कथा एक विद्रोही संताल युवा मुरमू और उराँव युवती लाली के बेमेल प्रेम के ताने-बाने से बुनी गयी है, जिसमें वहाँ के लोक-जीवन और लोक-रंग की प्रगाढ़ता है और जन-जातिय समाज की धड़कने भी।

1.4.1.7. धूणी तपे तीर

'धूणी तपे तीर' हरिराम मीणा का एक सशक्त उपन्यास है जो सन् 2008 में साहित्य उपक्रम, हरियाणा से प्रकाशित हुआ है । लेखक ने अहिंसावादी और आध्यात्मिक विचारों के माध्यम से आदिवासी-समाज को सुधारने का प्रयास किया है। इसके अलावा वे आदिवासियों के अधिकार और देसी रियासतों द्वारा किये जानेवाले शोषण की भी बात करते हैं। यही वजह है कि आदिवासियों में देसी रियासतों के प्रति अविश्वास का भाव पनपता है और अपने हक व हुकूक के प्रति सजग चेतना उत्पन्न होती है। यह सब गोविंद गुरू की आदिवासी-समाज के बारे में सोच का नतीजा है । भले ही वे उन्हें पहुँचा हुआ भगत मानते हों । उदयपुर, डूंगरपुर,

[39]वही, पृ.सं. 08.

बांसवाडा और कुशलगढ़ में रहनेवाले आदिवासियों के बीच गोविंद गुरू समाज-सुधार के मकसद से 'संप सभा' और 'धूणी स्थल' की स्थापना करते हैं।

'धूणी तपे तीर'राजस्थान की मानगढ़ पहाड़ी पर देसी सियासतों और अंग्रेजों की मिली भगत, आदिवासियों के सामूहिक बर्बता हत्याकांड पर आधारित है यह घटना—"देश का पहला 'जलियांवाला कांड' अमृतसर 1919 से छः वर्ष पूर्ण दक्षिणी राजस्थान के बांसवाड़ा जिला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था जिसमें जालियांवाला से चार गुणा शहादत हुई। अब छः सौ फीट की ऊँचाई के पहाड़ पर 54 फीट ऊँचा शहिद-स्मारक बना दिया गया है। गोविंद गुरू की प्रतिमा भी है, फिर भी उस स्थल पर और ध्यान देना अपेक्षित है।"[40]

आदिवासियों पर शताब्दियों से हो रहे अत्याचार का वर्णन कोई नई बात नहीं है। सबसे बड़ी बात है उन अत्याचारों की विधियों का उद्घाटन करना। रियासत में जब कहीं से भी कोई नया मार्ग निकाला जाता था तब उस मार्ग के आस-पास के गाँवों में रहने वाले आदिवासी बुजुर्गों के सिर पर भी उनके बाल काटकर, दो अंगुल चौड़ा रास्ता बनाया जाता था—"बात यह है हुजूर कि गैल तो जंगल में से होकर निकाली जा रही है, जागीरदारों के आदमी नाई लेकर हमारे घरों पर जाता है और बुजुर्गों के माथे के बालों को ललाट से चोटी तक दो-दो अंगुल की चौड़ाई में उस्तारा लगाकर काटते हैं। पूछने पर कहते हैं कि 'यह राज की गैल है।' अब जब हमारे इलाके से राज की असल गैल निकाली जा रही है तो माथे पर बाल काटकर बनायी जाने वाली राह की क्या जरूरत है और उस पर कोई चल भी नहीं सकता ?"[41]

---

[40]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 20.

[41]वही, पृ.सं. 49-50.

भारत के मूल निवासियों को लेकर इतिहास वेत्ताओं के मध्य बहुत काल से विवाद चला आ रहा है कि भारत का मूल निवासी कौन है ? आर्य या कोई और । लेखक ने 'धूणी तपे तीर' में स्पष्ट रूप से यह बात स्वीकार की है कि भारत के मूल निवासी, भारत के आदिवासी ही हैं—"ये अपने को 'भूमिपुत्र' मानने में संतोष व्यक्त करते हैं जबकि इनके विजेता राजपूत अपनी उत्पत्ति देवताओं से सूर्य या चंद्र से जोड़ते हैं । इन सूर्यवंशी व चंद्र-पुत्रों का भारत में कब आगमन हुआ, यह बात सदैव संदेहास्पद ही बनी रहेगी ।"[42]

1.4.1.8. ग्लोबल गाँव के देवता

युवा कथाकार रणेंद्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' जो सन् 2009 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । इस उपन्यास में भारत के, विशेष रूप से झारखंड के एक आदिवासी समुदाय का अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष और लगातार मिटते जाने की प्रक्रिया का संवेदनशील चित्रण है । वह समुदाय है 'असुर' नाम के आदिवासियों का ।

पिछले कुछ वर्षों से भूमंडलीकरण के साथ जो धारणाएँ भारत में आई हैं, उनमें से एक यह है कि विश्व अब तक एक 'ग्लोबल विलेज' या 'ग्लोबल गाँव' बन गया है । व्यक्ति और समाज के जीवन में हर प्रसंग में देशी-विदेशी का फ़र्क मिट गया है । लोभ और लूट से संचालित पूँजीवाद के भूमंडलीकरण के दौर में भारत की प्रकृति और संपत्ति सबसे अधिक वहीं हैं, जहाँ आदिवासी रहते हैं । इसलिए आदिवासियों की ज़मीन और जिंदगी खतरे में है । इस उपन्यास में इसी शोषण का चित्रण किया गया है ।

---

[42]वही, पृ.सं. 43.

उपन्यासकार इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि, आदिम जन-जातियाँ वनों पर आश्रित रही हैं। आदिकाल से लेकर आज तक वे वन्य जीवन जीती रही हैं किंतु अपने देवता कहने वाले नगर-वासियों (आदिवासियों के 'देवराज इंद्र' से लेकर आधुनिक काल के 'ग्लोबल गाँव' के व्यापारियों) ने उनका लगातार दोहन, शोषण और उत्पीड़न किया है। सभ्यता और विकास के नाम पर प्रकृति को रौंदा है, साथ ही प्राकृतिक जीवन जीनेवाले निरीह प्रकृत मानव-समुदायों के जीवन के साथ हिंसक, बर्बर, अशिष्ट और अश्लिल छेड़छाड़ की है। उनके जीवन-साधनों और संसाधनों को तहस-नहस किया है और उन्हें शरणार्थियों की स्थिति में ला पटका है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' का सूत्रधार एक ऐसा व्यक्ति है जिसे लंबी बेरोजगारी और अपमान की गाढ़ी काली रात के बाद बरवे जिला कोयला बीघा प्रखंड के भौंरापाट नामक जगह के एक आदिवासी स्कूल में मास्टरी का प्रस्ताव मिला है। जन-जातिय स्कूल की कल्पनामात्र से ही उसका दिल बैठ जाता है। सूत्रधार का वहीं का हो जाना उपन्यास की पूरी कथा यात्रा को एक खास तरह की आत्मीयता और स्वानुभूति पीड़ा से टीस भर देता है।

इस उपन्यास में ग्लोबल गाँव के देवताओं का उल्लेख है। पहले है विदेशी वेदांग, ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता, कंपनी है विदेशी पर नाम देशी। दूसरा देवता है, टाटा- जिसने असुरों के लौह-गलाने और औजार बनाने के हुनर का अंत कर दिया है। इसलिए असुर मानते हैं कि टाटा कंपनी ने उसका जो विनाश किया है वह असुर जाति के पूरे इतिहास की सबसे बड़ी हार है। "लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा-कहानी वालों सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया। उपकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खंती सुदूर हाटों तक पहुँच गये। हमारे

गलाये लोहे के औजारों की पूछ ख़त्म हो गयी । लोहा गलाने का हज़ारों-हज़ार साल का हमारा हुनर धीरे-धीरे ख़त्म हो गया ।"[43]

इस उपन्यास में छत्तीसगढ़, मणिपुर, केरल, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के आदिवासियों के संघर्षों में स्त्रियों की नेतृत्त्वकारी भूमिका और बहादुरी के प्रति गहरी सम्मान व्यक्त हुआ है । इन आदिवासियों की लड़ाई अपनी धरती को बचाने की लड़ाई है । इसलिए उपन्यासकार सोचता है कि—"धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी.के. जानू, सुरेखा दलवी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिला, ललिता भी स्त्री । शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है । सीता की तरह धरती की बेटियाँ-धरती में समाने को तैयार ।"[44]

अंततः कहा जा सकता है कि अपने हित साधने में ये देशी-विदेशी कंपनियाँ इस कदर मशगूल है कि इन्हें अपराध और भ्रष्टाचार के लिए भी जगह देने में कोई संकोच नहीं है । राजनीतिज्ञों, अफ़सरशाहों और बाहुबलियों के पुराने त्रिकोण को बाबा वेशधारी धर्म के व्यापारियों ने चौखट-विस्तार दे दिया है । धन की सत्ता के पीछे जब इतना बड़ा तंत्र खड़ा हो तो भला साधनविहीन क्रांति कब तक छाती ठोक कर खड़ा रहेगी ।

1.4.2. समकालीन मराठी उपन्यास

लेखक का नाम	कृति का नाम	प्रकाशन वर्ष
1. मधुकर वाकोडे	झेलझपाट	1988
2. सुरेश द्वादशीवार	हाकुमी	1989
3. विलास मनोहर	एका नक्षलवाद्याचा जन्म	1992

---

[43] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं.83.

[44] वही, पृ.सं. 92.

4. शंकरराव खरात	पारधी	1997
5. बाबाराव मडावी	टाहो	1998
6. बाबा भांड	तंट्या	2001
7. गोपाळ गवारी	कोळवाडा	2004
8. कविता महाजन	ब्र	2005

1.4.2.1. झेलझपाट

डॉ. मधुकर वाकोडे कृत 'झेलझपाट' आदिवासी-जीवन को प्रस्तुत करनेवाला यथार्थवादी उपन्यास है । आदिम जन-जाति के लोगों का जीवन-यथार्थ इसका केंद्रीय विषय है । बाहर से यह केरू तथा फुलय की प्रेमकहानी लगती है लेकिन भीतर से यह व्यवस्था की भयंकरता का क्लोजअप है । भारतीय समाज में आदिम जन-जाति की अपनी प्रणाली है लेकिन हमारे यहाँ स्थापित व्यवस्था की प्रणाली के सामने उसका कोई हश्र नहीं होता । आदिम जन-जाति की जिंदगी 'झेलझपाट' उपन्यास की मूल विषयवस्तु है । केरू उपन्यास का नायक है और फुलय उसकी प्रेमिका है ।

इस उपन्यास में कोरकू जन-जाति के परंपरागत स्त्री-जीवन पद्धति दिखाते हुए पर्व-त्यौहार, देवी-देवता, लोक-कथा, साहूकार-भगत आदि से होनेवाले शोषण को दिखाया है । साथ ही पुलिस प्रशासन, 'प्रोजेक्ट टायगर' नयी कल्पना, रोजगार, मद्यपान, भूख, दरिद्रता, शिक्षा की भाषायी विषमता, ख्रिश्चन धर्म का प्रसार, स्त्री पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार आदि मुद्दों को उपन्यास का प्रमुख विषय बनाया गया है ।

कोरकू नामक आदिवासियों की एक बस्ती में केरू ही एकमात्र ऐसा युवक है जो थोड़ा-सा पढ़ा-लिखा है । उसके इसी गुण से फुलय भी उसके प्रति आकर्षित होती है । धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं । फुलय केरू के साथ अपने शादी के सपने संजोते हुए कहती है— “हमारी शादी के बाद अख्खा कोरकू बस्ती में बताऊँगी की इस बस्ती में सिर्फ़ मेरा ही मरद पेपर पढ़ता है ।”[45]फुलय का बाप मोपा एक शराबी आदमी है । वह दिन-रात नशे में चूर-चूर रहता है । माँ के देहांत के पश्चात फुलय ने ही परिवार का दायित्व सँभाला है । लेकिन उसके बाप को शराब की ऐसी आदत पड़ी है कि शराब तथा गोश्त के लिए उसने अपने घर की हर छोटी-मोटी चीज बेच दी है । इस बहाने नशीली दवाइयाँ बेचनेवाला कासम के साथ उसकी मित्रता बढ़ जाति है । मगर कासम की नज़र फुलय की जवानी पर टिकी है ।

नायक केरू साक्षर होने के कारण कोरकू बस्ती में महाजनों, साहूकारों तथा सरकारी अधिकारियों की ओर से होनेवाले अन्याय को पहचान लेता है । मगर पूरी बस्ती में उसका साथ देनेवाला कोई भी नहीं होता । इसलिए वह अकेला ही संघर्षरत दिखाई देता है । लेकिन धन, शक्ति के सामने वह हताश होता है । कासम नशीली दवाइयाँ बेचनेवाला घिनौना इंसान है । वह केरू की प्रेमिका फुलय को पाना चाहता है । स्वाभिमानी फुलय से अपनी बेइज्जती सही नहीं जाति । फुलय बदला लेने हेतु घर आए कासम को गोश्त के साथ मरे हुए शेर के मूँछ खिलाकर उसे मार डालती है । कथानायक केरू सेठ, साहूकार से संघर्ष करते-करते थक जाता है । एक दिन मछली पकड़ने के लिए केरू जलाशय में जाता है । वह ऊपर से छलाँग लगाता है और अंदर फँसकर मर जाता है । केरू के इस तरह के दर्दनाक अंत से फुलय भी उसी जलाशय में आत्महत्या करती है । इसी त्रासद और दुःखद अंत के साथ उपन्यास ख़त्म होता है । केरू तथा फुलय का दुःखद अंत उपन्यास की वैचारिकता को स्पष्ट करता है कि महाजन, साहूकार और

---

[45]झेलझपाट, पृ.सं. 34.

मदिरायल के मालिक तथा शासकीय अधिकारी आदिम जन-जाति के अज्ञान, गरीबी तथा मजबूरी का फायदा उठाते हैं। 'झेलझपाट' इसका प्रमाण है।

1.4.2.2. हाकुमी

महाराष्ट्र के भामरागढ़ जंगल के कांदोडी नामक गाँव के 'माडिया गोंड' जन-जाति का चित्रण सुरेश द्वादशीवार ने अपने 'हाकुमी' उपन्यास में किया है। जो सन् 1989 में श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित हुआ है।

'माडिया गोंड' जनजाति का पहला वैद्यकिय डॉक्टर कन्ना और रूपी का प्रेमचित्रण किया गया है। इनके प्रेमचित्रण के साथ-साथ माडिया गोंड के जीवन, संस्कृति को दिखाया है। उदा— तल्लाईदेवी की श्रद्धा, पोच्चमअवल, रेलॉ नृत्य, लंबाड्या (घर जवई) पद्धति, नक्सलवादी और आदिवासी, शोषण विरोधी आंदोलन, पुलिस अत्याचार, विवाह पद्धति तथा घटस्फोट (तलाक), शिक्षा एवं अंधश्रद्धा आदि। उपन्यास का नायक अपने समाज के प्रति चिंतित है कि जब कोई अपने समाज के ऊपर कुछ लिखता है या बोलता है तो वह पढ़ने में एवं सुनने में हमें कितना अच्छा लगता है। इन गैर-आदिवासियों द्वारा लिखा साहित्य तथा भाषण के संदर्भ में वह कहता है—"मैं खुद आदिवासी और अप्रगत प्रदेश का रहते हुए भी मुझे ऐसी युक्ति क्यों नहीं आती ? इस बात का मुझे दुःख होता है।"[46]लेकिन कन्ना अपना समाज का विचार करते हुए हमेशा सोचता है कि मैं अपनी डॉक्टरी अपने समाज के लिए कैसे उपयोग में लाऊँ ?

---

[46]हाकुमी, पृ.सं.02.

लेखक 'हाकुमी' उपन्यास के माध्यम से आदिवासी-जीवन के साथ-साथ आदिम समाज का इतिहास भी चित्रित करता है। माडिया गोंड समाज मातृ देवपूजक है तो इस संदर्भ में डॉ. तिडके श्रीकांत ने कहा है कि—"आदिवासी-समाज में मातृ सत्तात्मक कुटुंब पद्धति होते हुए भी वहाँ स्त्रियों पर बंदी है। 'हाकुमी' में इसका उदाहरण हमें रूपी के माध्यम से प्राप्त होता है।"[47]यह बंदी केवल अनैतिक संबंधों को रोकने के लिए ही बनाई गयी है अन्य स्थानों पर स्त्री-मुक्ति ही दिखाई देती है।

डॉ. कन्ना उपन्यास की नायिका रूपी को चाहते हुए भी उससे विवाह नहीं कर पाता। क्योंकि रूपी अठारह साल की हो चुकी थी और उसके घरवाले उसका ब्याह करना चाहते थे किंतु कन्ना की पढ़ाई खत्म नहीं हुई थी। रूपी की शादी कन्ना के बड़े भाई जुरू के साथ जरूर हुई थी लेकिन उसका दिल और दिमाग सिर्फ़ कन्ना पर था। रूपी चाहती थी कि अगर वो घर में आती है तो कम-से-कम कन्ना उसके साथ रहेगा। कुछ दिन बितने के पश्चात रूपी का हाव-भाव देखकर कन्ना का बड़ा भाई जुरू कहने लगा—"रूपी इस घर में मेरे लिए नहीं आयी थी। तेरे संग रह सके इसलिए वो इस घर को अपना बना ली।"[48] जुरू और रूपी की शादी के पश्चात भी रूपी और जुरू कभी एकरूप नहीं हुए थे। कितनी महान संस्कृति है इन आदिवासियों की। जुरू की पहली पत्नी से रूपी का झगड़ा होने के बाद रूपी नक्सलवाद आंदोलन में शामिल होती है। वह अपनी शील, चारित्र्य को बरकरार रखती है। यह माडिया स्त्रियों की उदात्तता है। इसलिए यह विशेष उल्लेखनीय है।

1.4.2.3. एका नक्षलवाद्याचा जन्म

---

[47]वसंत, पृ.सं. 30.

[48]हाकुमी, पृ.सं. 44.

विलास मनोहर लिखित 'एका नक्षवाद्याचा जन्म' उपन्यास सन् 1992 में श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित हुआ है । 'एका नक्षवाद्याचा जन्म' उपन्यास गढ़चिरोली के माडिया गोंड जीवन पद्धति को चित्रण करनेवाला उपन्यास है । आदिवासी माडिया जनजाति के ऊपर वहाँ के पाटील, रेंजर, गार्ड, सरकारी अफ़सर, कर्मचारी, पुलिस, साहूकार, परंपरागत व्यापारी, ठेकेदार आदि अन्याय, अत्याचार, आर्थिक शोषण, शारीरिक शोषण करते हुए दिखाई देते है । इन शोषण करनेवालों के खिलाफ लड़ने के लिए गाँव में नक्सलवादियों में प्रमुख भूमिका निभाते हैं । पुलिस और नक्सलवादियों के बीच आदिवासी जूझते हुए नज़र आते हैं ।

जुरू अपनी पत्नी मैना, बड़ा लड़का लालसू, लड़की रूपी और छोटा लड़का गोंगलू के साथ पटेल के चार एकड़ जमीन पर अपना जीवन यापन कर रहा था । आदिवासी बच्चे छः-सात साल के होते ही अपने माता-पिता के काम में हाथ बंटाते हैं । लेकिन मैना थोडी-सी आधुनिक सोचवाली औरत थी । वह सोचती है कि 'मेरा लालसू पढ़-लिखकर बड़ा ऑफिसर बनेगा ।' इसलिए मैना लालसू को पाठशाला भेजती है ।

माडिया आदिवासियों में पुजारी और महुवे की दारू इन दो बातों का विशेष महत्त्व है । जादूटोना, भूत-प्रेत इन बातों पर उनका प्रचंड विश्वास है । इसलिए जब जुरू की पत्नी मैना को बुखार का सामना करती है तब उल्लू पुजारी को बुलवाकर बुखार उतारा जाता है । लेकिन जब पुजारी की लड़की को कुछ बीमारी होती है तो वह पुजारी अपनी लड़की को लेकर अस्पताल जाता है । इन भोले-भाले आदिवासियों को पुजारी कहता है कि 'अरे भाई अस्पताल में क्या पड़ा है, अस्पताल से कुछ नहीं होने वाला है ।'

इस उपन्यास में त्रिकोण सूत्र अपनाया गया है— आदिवासी, नक्सलवादी और पुलिस प्रशासन । नक्सलवादी संगटना का प्रमुख राजण्णादादा और जुरू का बेटा लालसू के संभाषण के

माध्यम से उपन्यासकार ने एक मार्मिक चित्रण को प्रस्तुत किया है । जो समाज परिवर्तन के लिए सार्थक सिद्ध हो सकता है । नक्सलवादियों को लालसू कहता है—“इन गरीब एवं अनपढ़ आदिवासियों को आप लड़ाई, मारपीठ सिखाने के बजाए शिक्षा, खेती, पशुपालन, बदलाव आदि क्यों नहीं सिखाते ?”[49] प्रति उत्तर में राजण्णादादा कहता है—“क्यों वे आदिवासी का मतलब हाथ की छोटी अंगुली समझते है, और भांडवलदार, शासनकर्ताओं के हाथ के बड़े अंगुली है क्या ? और वे जिधर इशारा करें आप लोग उधर चलेंगे और नाचते रहेंगे ? इसलिए हम चाहते हैं कि, सारी अँगुलियाँ समान कर दी जाए तो ?”[50]

उपन्यास का नायक जुरू नक्सलवादी न होते हुए भी उसे नक्सलवादी घोषित कर दिया जाता है । जुरू अपना सब कुछ खोने के बाद विचार करता है कि—“वे मुझे गोली मारने लिए तैयार है तो मैं खामोशी से क्यों गोली खाऊँ ? मुझे भी गोली का जवाब गोली से देने का हक़ है ।”[51] अंत में जुरू बंदूक उठाता है । नक्सलवादी बन जाता है । इस प्रकार माडिया आदिवासी-समाज का जन्म गरीबी का शिकार होना है । इन शोषक वर्ग के अन्याय, अत्याचार से त्रस्त होकर वह नक्सलवादी में परिवर्तित होने के लिए तैयार हो रहे हैं । इसी के इर्द-गिर्द उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है ।

1.4.2.4. पारधी

शंकरराव खरात का ‘पारधी’ उपन्यास सन् 1997 में मीनल प्रकाशन, कोल्हापूर से प्रकाशित हुआ है । यह उपन्यास ‘फासेपारधी’ समाज का जीवन-चित्रण को दर्शानेवाला

---

[49]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 240.

[50]वही, पृ.सं. 240.

[51]वही, पृ.सं.247.

उपन्यास है । महाराष्ट्र में फासेपारधी यह जनजाति 'घुमंतू' जनजाति के रूप में प्रचलित है । उनके पास हक़ के घर नहीं होते, न ही गाँव होते हैं । किसी भी पठार पर अपना संसार बसाते हैं । कभी शिकार, कभी चोरी तो कभी माँग कर अपना उदरनिर्वाह करते हैं । भारतीय तथाकथित शोषक समाज ने उन्हें कभी मनुष्य के रूप में देखा ही नहीं । उपन्यास का नायक 'चित्र्या' और उसका मित्र 'जंगल्या' अपनी परंपरागत जीवन से बाहर आने की कोशिश करते हैं । किंतु यह वर्गभेदी समाज उन पर 'चोरी' का ठप्पा हमेशा के लिए लगा देते हैं ।

पारधी समाज को हमेशा पुलिस का डर होता है । चोरी नहीं की तो भी पुलिसवालों को इन्हीं पर संशय रहता है । उपन्यास का नायक चित्र्या अनपढ़ है । लेकिन वह इस उपेक्षित जीवन से छुटकारा पाना चाहता है । इसलिए चित्र्या शंभुराव वकील के माध्यम से सरकारी नौकरी पाता है । शंभुराव वकील चित्र्या को पूना के बस डिपो में हमाल की नौकरी दिलाता है । किंतु वहाँ पर भी उसे अपमानित किया जाता है । उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है । उसकी खिल्ली उड़ायी जाति है । इस दुःखी जीवन का चित्रण करते हुए लेखक बताते हैं कि— "फासेपारधियों का जीवन क्या है ? यह उन्हीं को पता नहीं था । वे जनम लेते हैं इसलिए जैसे-तैसे जीते हैं । एकदम जंगली जानवर की तरह, उनका जीवन उन सूखे पत्तों की तरह है, जो हवा के संग कहीं भी उड़ जाते हैं । पारधी मनुष्य रहते हुए भी उसे मनुष्य के रूप में देखा नहीं जाता, उन्हें जंगल के पशु-पक्षी कहा जाए तो वे मनुष्य की तरह दिखाई देते हैं ।"[52]

फासेपारधी के जीवन में दरिद्रता तो है ही, किंतु समाज में उन्हें मनुष्य के रूप में देखा क्यों नहीं जाता ? यही सवाल वो अपने आपसे बार-बार करती हुई दिखाई देती है । और अपनी

---

[52]पारधी, पृ.सं. 06.

इस व्यथा को बताते हुए उपन्यास की नायिका खारी कहती है—“उस भगवान ने हमें घटिया जनम दिया देखों ! अगर जनम दिया तो भी फासेपारधी समाज में नहीं देना चाहिए ।”[53]

लेखक फासेपारधी और उच्च सुविधाभोगी समाज के बीच की विषमता को बताते हैं । मजिस्ट्रेटवालों ने चित्र्या की तलाशी लेने के दौरान जब वकील मजिस्ट्रेट साहब को चित्र्या की परिस्थिति बताता है तो मजिस्ट्रेट साहब आश्चर्य चकित रह जाते हैं । वकील साहब बताते हैं—“साहब, इनका जीवन उस हवा की तरह है, रास्ते पर खुली पड़ी है । यह समाज रचना की विषमता का भयानक चित्र है ।”[54] इस उद्धरण से भारतीय समाज व्यवस्था का वास्तविक चित्रण दिखाई देता है ।

फासेपारधी समाज तुलजापुर के भवानी देवी को अपना कुल देवता मानते हैं । उनके कुलनाम (Surname) भोसले, पवार, चव्हाण, जाधव ऐसे होते हैं । किंतु यह कुलनाम मराठा समाज में भी होने के कारण पुलिसवाले चित्र्या के नाम पर भी संशय व्यक्त करते हैं । चित्र्या आक्रोश करते हुए वकील से कहने लगता है—“मुझे तेरे इन मनुष्यों (समाज) में रहना ही नहीं । तेरे मनुष्यों में मानवीयता ही नहीं है । वे जानवर की तरह है । मेरे जंगल के विषारी साँप भी तेरे मनुष्य से अच्छा है । हमें कभी डँसते तो नहीं । लेकिन तेरे यह मनुष्य साँप की तरह डँसते हैं ।”[55]

चित्र्या एवं खारी इस तथाकथित समाज को परिवर्तन नहीं कर सकते थे, इसलिए वे स्वयं को बदलना चाहते थे । अपनी पोशार, रहन-सहन, घर में बर्तन, घर में खाना बनाना,

---

[53]वही, पृ.सं. 30.

[54]वही, पृ.सं. 35.

[55]वही, पृ.सं.155.

भीख माँगना भी बंद करते हैं, झोपड़ी में न रहते हुए किराये पर मकान लेते हैं । इतना सब कुछ करने के बाद उनके हाथ में निराशा ही लगती है । आखिर लोग उन पर चोरी का इल्जाम लगाते हैं । इस उपन्यास में केवल वकील साहब और उनकी पत्नी शकूबाई यह दोनों फासेपारधियों की चिंता पर विश्वास करते हैं । वे चित्र्या तथा उसके समाज के पक्ष में बोलते नज़र आते हैं । उन पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार को दूर करना चाहते हैं । इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि काश हमारा भारतीय समाज भी इन्हीं की तरह होता, तो शायद वंचित तबकों पर किसी तरह का अन्याय, अत्याचार नहीं होता !

1.4.2.5. टाहो

'टाहो' बाबाराव मडावी का उपन्यास है । जो सन् 1998 में मिलिंद प्रकाशन, सावंगी, वर्धा से प्रकाशित हुआ है । आदिवासियों के मुक्त जीवन पर सरकार ने कुछ नियम बनाकर उनके मुक्त जीवन में कैसी बाधाएँ उपस्थित की हैं यही इस उपन्यास की मूल चिंता है । नदी-नालों के किनारे रहनेवाले आदिवासियों पर अपने स्वार्थ के लिए उच्चवर्ग के लोग अन्याय, अत्याचार करते हैं । इस अत्याचार को मिटाने के लिए उपन्यास का नायक 'भीम्या' मध्यांतर के बाद प्रवेश करता है लेकिन यही इस उपन्यास की विशेषता है । इस संदर्भ में बाबाराव मडावी कहते हैं— "यह सत्य है कि, आदिवासी मनुष्य अभी-अभी शिक्षित हो रहा है । इसलिए उपन्यास का नायक अपने संपूर्ण अधिकारों को जानकर ही देरी से पहुँचता है ।"[56]

स्वातंत्र्योत्तर काल में आदिवासियों का जंगल सरकार के हाथ में चला गया, शिकार करने पर भी पाबंदी लगायी गई । इसलिए आदिवासियों की जीवन-पद्धति ही नष्ट होती गई । मध्ययुगीन काल में आदिवासियों की जमीन जमींदारों ने लूटी, उन्हें भूमिहीन बना दिया ।

---

[56]टाहो, मनोगत

जंगल संबंधी कानून बनाए, जंगल की लकड़ी सरकार की हो गई, लकड़ी का व्यापार शुरू हुआ, जंगल नष्ट करने लगे, जो भी आदिवासी शिकार करेगा उसे सलाखों के पीछे बिठाया गया। इसी का फायदा उठाकर इस उपन्यास में प्यारेलाल सेठ उनका शोषण करने लगा। प्यारेलाल सेठ सारे आदिवासियों को कर्जे में डूबो देता है। वह कोरे कागज़ पर इन लोगों का अंगूठा लेकर जमीन अपने नाम कर लेता है।

डोंगरगाँव के आदिवासियों को शिक्षा का गंध न होने के कारण उन्हें कानून का भी ज्ञान नहीं था। सरपंच के चुनाव का महत्त्व इन लोगों को पता नहीं था। हर बार प्यारेलाल सेठ इन भोले आदिवासियों को शराब, बकरा, मुर्गी देकर सरपंच पद को उपभोगता था। सारे गाँव को अपने इशारों पर नचाता था। लेकिन एम.ए. इंग्लिश तथा एल.एल.बी. पास इस उपन्यास का नायक भीम्या गाँव में आकर आदिवासियों को चुनाव का महत्त्व समझाते हुए कहता हैं—"मेरे प्यारे बंधुओं, आज तक इस गाँव में किसी ने आपको चुनाव का महत्त्व और मतलब नहीं समझाया है। आपको लोकतंत्र किसे कहते हैं ? यह भी पता नही, आप लोगों को अंधेरे में रखा गया है। इस देश की सत्ता भोगने का अधिकार हर मनुष्य को है, किंतु नोटों के दम पर यह अधिकार यह सत्ता आपके दरवाजे तक नहीं पहुँच पा रही है। आपको इस कीमती वोट का महत्त्व आज तक किसी ने नहीं बताया है। इस वोट का महत्त्व और कीमत कौन क्यों बताएगा ? उसके लिए आप लोगों को शिक्षित बनना होगा।"[57]

इस अन्याय, अत्याचार पर प्रतिबंध लगाने के लिए भीम्या चुनाव का फॉर्म भरता है। चुनाव में जीत हासिल करता है। प्यारेलाल सेठ को 'पराभव' की चिंता सता रही थी। इस पराभव का बदला लेने के लिए वह सदूचाचा की लड़की पारू पर बलात्कार करता है। इस

[57]वही, पृ.सं. 48.

बलात्कार का पारू के मन को सदमा पहुँचता है और वह आत्महत्या करती है । लेकिन अंत में भीम्या उसका बदला लेता है । यह बदला लेना कैसे संभव हुआ ?इसलिए युवा आलोचक रमेचंद्र मीणा का कहना है कि—“आज आदिवासी के लिए अपने अस्तित्व को बचाए रखना मूल समस्या है । उनके सदियों के अंधेरे को शिक्षा का प्रकाश दूर कर सकता है । ऐसी प्रकाशदायिनी शिक्षा सघन अँधेरों तक कैसे पहुँचे ? जबकि शिक्षा निजि टापुओं में कैद हो चली है । ऐसे में यह लघु रचना अपनों में से हुए शिक्षितों को भी आत्ममंथन करने को बाध्य करती है कि उनकी क्या भूमिका है ?”[58]

1.4.2.6. तंट्या

भील जनजाति पर आधारित ‘तंट्या’ यह उपन्यास बाबा भांड का है । जो सन् 2001 में साकेत प्रकाश, औरंगाबाद से प्रकाशित हुआ है । सन् 1857 में स्वतंत्रता संग्राम लड़ाई की चिंगारी मेरठ में गिरी थी । धीरे-धीरे सारे उत्तर-भारत में फैल गई । अंग्रेजों के विरोध में लड़ाई सारे देश में जगह-जगह पर होने लगी थी । साहूकार और अधिकारियों के मदद से नर्मदा और तापी नदी किनारे की वसाहतों पर अंग्रेजों ने पचास साल तक राज किया था । इससे पहले इन आदिवासियों को साहूकार, पाटील, पटवारी, व्यापारी आदि ने लूटा था । निमाड के रहिवासी और जंगल के आदिवासी भील, कोरकू इसमें पीसे जा रहे थे, अत्याचार, अन्याय को सहन कर रहे थे । तंट्या भील की लड़ाई इस अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध थी ।

ब्रिटीश सरकार ने जंगल संबंधी कानून बनाये, जंगल में रहनेवाले आदिवासियों पर अनेक पाबंदियाँ लगायीं । इसलिए निमाड के आदिवासियों में असंतोष का वातावरण निर्माण हुआ । इस असंतोष को तंट्या ने दस बरस में खत्म किया था । इसलिए किसान, मेहनती मजदूर

---

[58]समकालीन जनमत, पृ.सं.32.

तंट्या को 'जननायक' मानते हैं । तंट्या को 'भीलों का राजा', 'निमाड का शेर' ऐसे नामों से संबोधित किया जाता है । शंकर सारडा ने'19 वीं शती के आदिवासी लोकनायक तंट्या भील' नामक आलेख में लिखा है—"तंट्या का चित्रण सही कागज पत्रों के आधार पर खड़ा हुआ प्रभावी चरित्रनाट्य है ।"[59]मध्य प्रदेश सरकार के नियंत्रण में पुराने कागजात, पुलिस तलाशी रिपोर्ट, न्यायालय के साक्षी-सबूत, फासी शिक्षा के निकालपत्र और निमाड प्रदेश में लेखक की भटकती आदि के आधार पर बाबा भांड ने भील राजा का ऐतिहासिक महत्त्व 'तंट्या' इस उपन्यास में दिखाया है । तंट्या के संदर्भ में रघुवीर सिंह राजपूत अपने आलेख 'आदिवासी भील क्रांतिकारियों की कहानी' में कहते हैं कि—"तंट्या यह उपन्यास केवल कल्पना की उड़ान न होते हुए एक ऐतिहासिक सत्य है ।"[60]

1.4.2.7. कोळवाडा

गोपाल गवारी कृत 'कोळवाडा' उपन्यास सन् 2004 में मयूरवृत्त प्रकाशन, नाशिक से प्रकाशित हुआ है । इस उपन्यास में 'महादेव कोळी' जनजाति का जीवन चित्रण किया गया है । कुछ आलोचकों का मानना है कि कोळवाडा यह उपन्यास गोपाल गवारी की आत्मकथा ही है । उपन्यास के पात्रों के संदर्भ में गवारी कहते हैं—"कोळवाडा के संदर्भ में विचार किया जाए तो उसके सभी पात्र वास्तविक है, कुछ जगह पर मैंने केवल नाम परिवर्तन किया है ।"[61]

---

[59]दैनिक लोकमत, पृ.सं. 04.

[60]दैनिक सकाळ, पृ.सं. 10.

[61]कोळवाडा, मनोगत.

कोळवण नदी किनारे निळवंडी पांडे नामक गाँव के महादेव कोली जनजाति का चित्रण करने के लिए लेखक ने 1970 से 1995 तक के समय को अपने उपन्यास का विषय बनाया है । लेखक जिस समाज से संबंध रखते हैं वह समाज आज भी पिछड़ा, गरीबी, दरिद्रता, अशिक्षा से ग्रस्त है । लेखक की शिक्षा विषयक चिंता हर पन्ने पर नज़र आती है । शिक्षा के महत्त्व को लेखक जान चुके थे कि शिक्षा के बगैर आदिवासियों का विकास संभव नहीं है । दरिद्रता के कारण यह समाज किसी की भी मजदूरी, खेती करने के लिए मजबूर है । काम करने के बावजूद भी इन्हें पेट भर खाना नसीब नहीं होता इसलिए वे पेड़ से शराब निकालना, चोरी करना, मच्छली पकड़ना, शिकार करना आदि काम करते हैं । इस समाज की अधिकांश जन-संख्या शराब के व्यसनाधिन हैं ।

स्वतंत्रता के तीन दशक बाद इस कोळवाडा में कौन-सा स्वराज्य स्थापित हुआ है इसका सुंदर चित्रण लेखक उपन्यास में करते हैं । इस संदर्भ में मराठी कवि 'वसंत बापट' अपनी कविता में सवाल करते हैं— 'कहाँ स्वातंत्र्य ? किसका स्वातंत्र्य?' और पाडगांवकर लिखते हैं— 'स्वतंत्रता का क्या हुआ ? हमारे हाथ क्यों नहीं लगी?' ऐसे ही सवाल लेखक ने अपने उपन्यास में करते दिखाई देते हैं । इस उपन्यास में हर समाज के पात्र हमें दिखाई देते हैं । मुस्लिम, तेली, मराठा, धोबी आदि समाज के पात्रों का चित्रण लेखक ने बखुबी किया है—"हनुमान मंदीर के पीछे बाबू मुसलमान का घर, उसके स्वतः घर के सामने मस्जिद और मस्जिद के सामने हनुमान चबुतरा एवं उसके नीचे महादेव का पींड तथा नदी, गाँव में प्रवेश करते ही भगवान का दर्शन होता है । कुछ लोग बीच रास्ते में ही भगवान को हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे । वैसे तो

बामन, मराठा, तेली यह समाज बहुत अधिक देव-धर्म करते हुए दिखाई देता है । लेकिन राजवाड़े (महादेव कोली) के लोग गलती से भी मंदीर में नहीं आते थे ।"[62]

इस समाज में प्रमुख रूप से अज्ञानता, भूत-प्रेत, भगत पर अधिक विश्वास है । ऐसे अनेक संदर्भ इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं । इसके साथ-साथ महादेव कोली समाज की विवाह पद्धति, त्यौहार-पर्व का भी चित्रण मिलता है । नाना पाटील द्वारा इन स्वाभिमानी आदिवासियों का शोषण का भी चित्रण दिकाई देता है । इस उपन्यास में आदिवासियों की बोली का इस्तेमाल लेखक ने जगह-जगह पर किया है । उपन्यास में आदिवासियों की शिक्षा पर अधिक बल दिया गया है । अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा शिक्षा को लेकर ही इस उपन्यास का रचना किया गया है ।

1.4.2.8. ब्र

कविता महाजन लिखित 'ब्र' उपन्यास राजहंस प्रकाशन, पुणे से सन् 2005 में प्रकाशित हुआ है । लेखिका अपने रोजमर्रा जीवन से तंग आकर एक सच्ची समाजसेविका के रूप में उभरकर सामने आती है । लेकिन समाजसेवा करते हुए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा । खासकर जो समाजसेवी संस्थाएँ (NGO) आदिवासी इलाकों में मौजूद है । इन समाजसेवी संस्था (NGO) आदिवासी इलाकों में मौजूद है । इन समाजसेवी संस्था (NGO) का कार्य और आदिवासियों की समस्याओं का लेखा-जोखा इस उपन्यास के माध्यम से बयान करने का प्रयास लेखिका ने किया है ।

उपन्यास की शुरुआत बहुत कुछआश्वासक है तथा लेखिका के जीवन पर आधारित है । कथा नायिका प्रफुल्ला, जो लेखिका भी है । उन्होंने फाईन आर्ट्स की शिक्षा हासिल की है । किंतु

---

[62]कोळवाडा, पृ.सं. 129.

ब्याह के पश्चात केनवास में रंग भरना ही भूल गयी हो। परंतु जब निसर्ग का चित्रण करती है तो वे सारे रंग भर जाते हैं। उसी का प्रतीकात्मक वर्णन इतर तरह है—"खुला गगन और पहाड़ों की लाईन, टेढ़े-मेढ़े डांबरी रस्ता स्वच्छ दिखाई दे रहा था। रास्ते के दोनों बाजू से हरी झाड़ियाँ वो भी पहाड़ों के पैसों तक। इन झाड़ों में घुटनों तक पीली घाँस दिखाई दे रही थी। झाड़ियाँ भी सुखी हुई नज़र आ रही थी।"[63]

कथा नायिका को आदिवासी पाड़ों पर अलग-अलग अनुभव, तथाकथित समाजसेवी संस्थाओं के कार्य से अधिक अपना अहवाल प्रजेंटेशन पर जोर देने और अधिक से अधिक मानधन वसूल करने के लिए भागदौड़ करते हुए दिखाया गया है। आदिवासी पुरखों की संस्कृति और आज के यंत्रयुग में इन आदिवासिओं के हाल को साँझा करते हुए उपन्यास आगे बढ़ता है।

प्रफुल्ला सर्वे के साथ-साथ आदिवासी-जीवन का भी अध्ययन कर रही थी। आदिवासियों के जीवन में बेगारी, जमीन के प्रश्न, महिलाओं पर अत्याचार, बेरोजगारी, महिलाओं को प्रताड़ित करना, अंधश्रद्धा जैसे अनेक प्रश्न इन लोगों से जुड़े हुए थे। इन सारे सवालों को लेकर अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ (NGO)जन्म ले रही थीं। केवल अनुदान लूटने के लिए ही ये संस्थाएँ आगे आ रही थीं। जितना काम होना था उतना काम नहीं हो पा रहा था। संस्थाओं के लिए शिवीर, बजट, समय तथा परिणाम आदि केवल अहवाल तक ही सीमित थे। सुमेध को तो पंद्रह लाख रूपये का बजट भी अधूरा लग रहा था। आदिवासियों के लिए या आदिवासी भागों में जो संस्थाएँ काम कर रही थी वे किस तरह उस बजट का फायदा उठाते हैं और उनका अहवाल सरकारी दफ़्तरों में कैसे धूल से लथपथ होते हैं उसका अच्छा खासा उदाहरण उपन्यास में दिया गया है।

[63]ब्र, पृ.सं. 07.

वर्तमान समय की राजकीय व्यवस्था और प्रस्ताव, संस्थाओं की कूटनीति, आरक्षण, अन्याय, अत्याचार, महिला उत्पीड़न, महिला जागृति, चुनाव केवल नाममात्र के लिए आदि बिंदुओं पर उपन्यास में विस्तृत चर्चा की गई है। उपन्यास के अंत में सुमित्रा ट्रेन के नीचे प्राण दे देती है। तब सुमेध का असली चेहरा प्रफुल्ला के सामने आता है। प्रफुल्ला, प्रगत संस्था का राजीनामा देकर चिचगुड़ा निकलती है।

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण

विषय-प्रवेश

प्रस्तुत शोध-विषय के द्वितीय अध्याय में समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन का विश्लेषण तथा आदिवासी शब्द का आशय, कोशगत अर्थ, आदिवासी जन-जीवन, रहन-सहन, उत्सव-पर्व, लोक-कथाएँ, लोक-गीत, समाज की प्रकृति और उनके समक्ष कौन-कौनसी चुनौतियाँ हैं इसी का ब्यौरा प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

हिंदी उपन्यासों में 'आदिवासी-जीवन' को प्रस्तुत करने से पहले 'आदिवासी' शब्द की अवधारणा को समझना आवश्यक होगा।आदिवासी, जनजाति, आदिम जाति एवं वनवासी जैसे अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'ट्राइब्स' के भारतीय हिंदी अनुवाद के रूप में होता है। भारतीय संदर्भ में जनजाति के साथ-साथ'अनुसूचित जनजाति' शब्द का प्रयोग भारतीय समाज की एक अन्य विशेषता है। सामान्यतः किसी भी सूचिबद्ध जनजाति श्रृंखला को अनुसूचित कहा जा सकता है, किंतु जब वह शब्द भारतीय जनजातियों के साथ प्रयुक्त होता है तब वह जनजातियों के साथ संवैधानिक संरक्षण से संबंधित होता है।

भारत बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी, बहुप्रांतीय एवं बहुलधर्मी देश है। जनजातियों की भिन्नता के आधार पर उनकी संख्या भी भारत में अन्य समाजों की तुलना में अधिक है। अलग-अलग भौगोलिक पर्यावरण एवं विकास के विभिन्न सोपानों से संबद्धता के कारण भारतीय जनजातियों में यह वैभिन्न स्पष्ट दिखाई देता है।

2.1.1. 'आदिवासी' शब्द से आशय

'आदिवासी' की स्पष्ट परिभाषा देना अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि आदिवासी-समाज की कोई भी पूर्ण रूप से मान्य परिभाषा अब तक प्रचलित नहीं हो पाई है । वैसे समय-समय पर आदिवासी की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं परंतु ये परिभाषाएँ केवल विशेष परिस्थिति की हैं तथा केवल किसी जनजाति विशेष के लिए ही उपयुक्त सिद्ध हो सकती हैं । एक जनजातिय समाज दूसरे जनजातिय समाज से भिन्न हो सकता है । आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भाषाई तथा जनसंख्या के आधार पर इनकी विशेषताएँ अलग-अलग हो सकती है । उदाहरण के लिए विद्वानों द्वारा दी गयी कुछ परिभाषाएँ निम्न रूप में देख सकते हैं ।

"'आदिवासी' शब्द अंग्रेजी के 'एबोरिजिन'(Aboriginal) शब्द का पर्याय है ।"[64] आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ है—'किसी देश का मूल निवासी' ।

1)रिचार्ड का कथन है कि, "समूहों की श्रृंखला परिणाम में जब बढ़ती जाति है तब उसका अंत राष्ट्र में होता है । समूह की यह क्रमिक वृद्धि प्रायः आदिम जातियों में पाई जाति है—इन आदिम जातियों को हम जनजाति कहते हैं । जनजाति एक ऐसे समूह का नाम है जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होता है, समान भाषा बोलता है और जब किसी बाहर के शत्रु का सामना करना होता है, तब समूह के लोग मिलकर एक हो जाते हैं ।"[65]

2) भारत के प्रसिद्ध मानव-शास्त्री डॉ. मजूमदार ने जनजाति की अत्यंत सटीक परिभाषा की है—"आदिवासी परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक ऐसा समूह जो सामान्य नाम धारण किये हुए है । इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर वास करते हैं और एक ही भाषा-भाषी, विवाह की प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं । वे आदान-प्रदान संबंधी

[64]भारतीय समाज संस्थाएँ और संस्कृति, पृ.सं. 05.

[65]आदिवासियों के बीच, पृ.सं. 11.

पारस्पारिक व्यवहार को विकसित करते रहते हैं । साधारणतया आदिवासी अंतर्विवाह-सिद्धांत का समर्थन करते हैं और साथी सदस्य अपनी ही जन-जाति के अंतर्गत विवाह करते हैं । कई गोत्र मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं । प्रत्येक गोत्र सदस्यों का परस्पर रक्त-संबंध जुड़ा होता है । इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक बृहतवर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं अन्यथा उनके वंश का परंपरागत सरदार होता है । इस दृष्टि से आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है ।”[66]

3) जेकब्स और स्टर्न के मतानुसार—“एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का एक ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान संस्कृति हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत हो वही आदिवासी कहलाता है ।”[67]

4) डॉ. रिवर्स ने कहा है कि—“आदिवासी जनजाति एक ऐसा सरल-सा समूह है जिसके सदस्य एक बोली बोलते हों, और जो युद्ध के समय सम्मिलित रूप से कार्य करते हों ।”[68] रिवर्स का मत है कि अन्य व्याख्याकारों ने इस समूह का एक सामान्य भू-भाग पर रहना आवश्यक बतलाया है, परंतु यह ठीक नहीं है । कारण अनेक आदिवासी जातियाँ घूमते-फिरते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, इसलिए इसकी परिभाषा में सामान्य भू-भाग का होना आवश्यक नहीं है ।

---

[66]भारत की जनजातियाँ, पृ.सं. 75.

[67]वही, पृ.सं. 75.

[68]वही, पृ.सं. 75.

Oxford Dictionary में लिखा है—“A Tribe is a group of people in a primitive or barbarous stage of development acknowledging the authority of a chief and usually regarding themselves as having a common ancestor.”[69]

Ralph Linton ने लिखा है—“In its simplest from the tribe is a groupof bands occupying a continuous territories and having a feeling of unity deriving from numerous of similarities in culture and a certain community of interest.”[70]

5) भारत के संदर्भ में ‘आदिवासी’ की परिभाषा— भारतीय समाज के कुछ विशेष समूहों को जनजातिय रूप में वर्गीकृत करने की परंपरा 19 वीं सदी में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रारंभ की गयी । उल्लेखनीय है कि ऐसे समूहों के लिए एक से अधिक लोकप्रिय संबोधन शब्द प्रचलित रहे हैं, यथा-आदिवासी, वन्यजाति, पर्वतवासी, वनवासी और आदिम जाति । स्वतंत्र भारत के संविधान में वर्णित ‘अनुसूचित जनजाति’ की सूची का आधार वही है जिसे विदेशी शासकों ने तैयार किया था । सूची तैयार करते समय जनजाति की मानवशास्त्रीय परिभाषा पर विशेष ध्यान न देकर केवल उन्हें सम्मिलित किया गया जो हिंदू वर्ण व्यवस्था के बाहर थे, साथ ही सदियों से उपेक्षित रहें।

“भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार, जनजातिय से तात्पर्य उन जनजातिय समुदाय अथवा जनजातिय समुदायों के अंशों या समूहों से है जो संविधान के

[69]Tribal India, पृ.सं. 32.

[70]Tribal India, पृ.सं. 32.

अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों के रूप में माने गये हैं। इसी अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति के द्वारा आम सूचना जारी की जाति है।"[71]

2.1.2. 'आदिवासी' शब्द का कोशगत अर्थ

विभिन्न शब्द कोशों में 'आदिवासी' शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न मिलता है जो निम्न है—

'मानक हिंदी कोश' में आदिवासी शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आये हो और जिनके बाद और लोग भी वहाँ आकर बसे हो। आदिम निवासी।" तथा "आधुनिक भारत में उड़िसा, बिहार, मध्यप्रदेश आदि में रहने वाली ओराँव, खरिया, पहाड़िया, मुंडा, संथाल आदि पुरानी जन-जातियाँ।"[72]

'भारतीय संस्कृति कोश'में आदिवासी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है— ऐसे निवासी जो किसी क्षेत्र के मूल निवासी हो और ऐसे निवासी जो प्राचीनतम निवासी हो। दूसरी कोटि के व्यक्तियों के लिए किसी क्षेत्र का मूल निवासी होना आवश्यक नहीं है। भारत में 292 आदिवासी समूहों की गणना की गई है। आमतौर पर देश की सामान्य धारा से संबंद्ध होते हुए भी इनके अनेक रीति-रिवाज अब भी भिन्न है।

'रमानाथ शर्मा' आदिवासी शब्द के तात्पर्य के बारे में लिखते हैं—"आदिवासी (Aboriginal) को वनवासी या जंगली (Forest- Dwellers), आदिम (Premitive) भी कहते हैं। भारतीय

---

[71]जनजातीय भारत, पृ.सं. 03.

[72]मानक हिंदी कोश, पृ.सं. 264.

संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribes) कहकर संबोधित किया गया है ।"[73]

'समाजशास्त्र विश्वकोश' में आदिवासी की परिभाषा इस प्रकार दी है—"किसी देश-प्रदेश के वे लोग जो आदिकाल से वहाँ निवास कर रहें हैं, उन्हें उस देश-प्रदेश का आदिवासी कहा जाता है । आदिवासी उस देश-प्रदेश के मूल निवासी होते हैं ।"[74]

'आदिवासी' शब्द को उक्त अर्थों के आधार पर कहना सही होगा कि आदिवासी याने 'किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आए हो ।' और 'जिनके बाद और भी वहाँ आकर बसे हो' और 'किसी क्षेत्र के मूल निवासी' है तथा जिनको पहाड़ियों, जंगलों तथा दुर्गम प्रदेशों के वाशिंदे होने के कारण सारा जीवन अभावों में बिताना पड़ता है ।

2.2. 'आदिवासी' जन-जीवन

आदिवासी जातियों पर अगर विचार किया जाए तो इसमें भारत के सभी आदिवासी आते हैं । आदिवासियों की अनेक-जातियाँ, उपजातियाँ मिलती हैं । सबकी संस्कृति, परंपराएँ और प्राकृतिक स्थितियों के अनुसार उन्हें एक समूह मानने में कठिनाइयाँ आती हैं । कुल मिलाकर आदिवासियों को भारत का मूल निवासी कहा जा सकता है । पहले आदिवासियों को दलितों में शामिल किया जाता था । आदिवासी साहित्य को दलित साहित्य ही माना जाता था । ये दो जातियाँ भी सर्वहारा या पिछड़ा जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं । ये दो जातियाँ समाज से कटे हुए थीं । मगर आज़ादी के बाद दलित मुख्यधारा में मिल गए और आदिवासी मुख्यधारा से कटे

[73]भारत की जनजातियाँ, पृ.सं. 90.

[74]समाजशास्त्र विश्वकोश, पृ.सं.01.

रहे और आज भी अलग-थलग जीवन जी रहे हैं, इसलिए आज आदिवासी विमर्श तथा आदिवासी चिंतन की आवश्यकता है ।

'अरावली उद्घोष' पत्रिका के संपादक बी.पी.वर्मा 'पथिक' अपने एक लेख 'आदिवासी विमर्श' की भूमिका में स्पष्ट करते हैं कि—"बीसवीं शताब्दी की समाप्ति तक हिंदी पट्टी में केवल दलित-विमर्श और दलित-साहित्य का बोल-बाला रहा था। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो, तब न कहीं आदिवासी-विमर्श और आदिवासी-साहित्य का ज़िक्र होता था और न कभी इनकी आवश्यकता ही महसूस की जाति थी । चाहे गैर-आदिवासी साहित्यकार हो या दलित-साहित्यकार, अधिकांश ने यही भ्रम पाल रखा था कि दलित संज्ञा में आदिवासी का भी समावेश है ।"[75]

कुसुम नारगोलकर के अनुसार—"अछूतों को चाहे हिंदू-समाज के शूद्र-सेवक के रूप में ही क्यों न हो, किंतु एक विशिष्ट सामाजिक स्थान दिया गया था, परंतु आदिवासियों का श्रेष्ठ या कनिष्ठ ऐसा कोई स्थान नहीं था । वे उपेक्षित थे । हम मनुष्य हैं—यह अहसास ही आज तक उनमें पैदा नहीं हुआ है ।"[76]

यह सत्य मान लेना होगा कि गाँव के बाहर जीते हुए भी गाँव के भीतर के जन-जीवन तथा व्यवहार से दलितों का संपर्क तथा संबंध किसी न किसी रूप में कायम ही था । आदिवासी-समूह गाँव के जीवन एवं उनके जीवन के प्रभाव-क्षेत्र से सैकड़ों मिल दूर था । गाँव के भीतर सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहार के साथ दलितों का जैसा संबंध और संपर्क था, वैसा आदिवासियों का नहीं था ।

[75]अरावली उद्घोष, पृ.सं. 27.

[76]आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ.सं. 32.

इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों के हिस्से में आए एकाकीपन निश्चित रूप से कहीं अधिक था, इसलिए दलितों और आदिवासियों की जीवनशैली में जो लाक्षणिक अंतर है, वह सांस्कृतिक भिन्नता के कारण है, अनुभूति के निरालेपन के चलते है। दलितों तथा आदिवासियों में दिखाई देनेवाली भावात्मक दूरी का कारण उनकी मानसिकता में खोजना पड़ता है। उन दोनों के हिस्से में, जो अकेलापन-एकाकीपन है, उसका कारण भी उनकी स्वरूप-भिन्नता तथा दोनों के जीवन-संघर्ष में खोजना पड़ता है। इस संदर्भ में महाराष्ट्र के डॉ. शरदचंद्र गोखले ने जो कहा वह अत्यंत मार्मिक है—"दलित तथा आदिवासियों के आस-पास की सांस्कृतिक चौखट एवं वातावरण भिन्न है। आदिवासियों की संस्कृति की अपनी एक समृद्ध चौखट है। उनकी संस्कृति मिट्टी की सोंधी महक है। इस कारण आदिवासी-साहित्य, दलित साहित्य की नकल न बनकर, उसकी अपनी एक शैली तथा संरचना होनी चाहिए।"[77]

भारत विभिन्न जाति-जनजाति, धर्म-पंथों और संस्कृति-संप्रदायों का देश है। 'जाति-व्यवस्था' भारतीय समाज-व्यवस्था का प्राण-तत्व है। सैकड़ों वर्ष बीत गए पर वर्तमान समय में आदिवासियों को देखने का नज़रिया जैसे-का-तैसा ही रहा है। जैसे— असुर, दानव, राक्षस, पिशाच तथा दैत्य ऐसे अनेक नामों से पहचाना जाता है। इतना ही नहीं अपने धार्मिक ग्रंथों में भी जैसे—'रामायण' की भीलनी, शबरी तथा 'महाभारत' का एकलव्य ये चरित्र भारतीय समाज-जीवन में सहानुभूति तथा आदर का हास्यास्पद दिखावा भर हैं।

हिंदी उपन्यासों में प्रमुख रूप से पिछले दो दशकों से आदिवासी-जीवन का चित्रण किया जा रहा है। हिंदी उपन्यासों में आज़ादी-पूर्व भी आदिवासी-जीवन का चित्रण किया गया था। लेकिन इन उपन्यासों का क्रम धीरे-धीरे बढ़ता गया।

---

[77]वही, पृ.सं. 33.

आदिवासी साहित्य प्रमुख रूप से वन-संस्कृति से संबंधित साहित्य है, यह दुर्लक्षितों का साहित्य है, आदिवासियों के प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया है। मुख्यधारा की समाज-व्यवस्था ने आदिवासियों के आक्रोश पर कभी ध्यान नहीं दिया। आदिवासी-साहित्य जंगलों, पहाड़ों तथा गिर-कंदराओं में रहनेवाले अन्यायग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। इस कठोर तथा क्रूर न्याय-व्यवस्था ने इन आदिवासियों की सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया। उस अन्याय, अत्याचार तथा कठोर न्याय-व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है।

आदिवासी एक निश्चित भू-भाग में अपनी विशिष्ट बोली बोलते हैं तथा संगठित रहते हैं। ये सभ्यता की दौड़ में पिछड़े हुए हैं और लिपिरहित भाषा-भाषी हैं। कुछ आदिवासियों की जातियाँ शहरी संस्कृति के संपर्क में आने से शहरों में जाकर मज़दूरी करके जीविकोपार्जन कर रही हैं। बहुत से आदिवासी जंगलों में, पहाड़ों में और दुर्गम प्रदेश में रहकर कबीलाई जीवनशैली अपनाए हुए हैं। सदियों से सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होने के कारण ये पिछड़े हुए हैं। आदिवासी अनपढ़, अज्ञानी, अंधश्रद्धालु होने के कारण अभावग्रस्त हैं। गरीबी, अज्ञान तथा सुख-सुविधाओं से वंचित होने के कारण उनका जीवन बीमारियों तथा कुपोषणग्रस्त है। जनजाति समाज का तात्पर्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकरूपता से नहीं है। जनजातियाँ एक-दूसरे से अनेक अर्थों में विभिन्न होती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जनसंख्या के आधार पर इनकी विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं। उदाहरण के लिए भारत की ही दो जनजातियाँ संथाल, भील की सांस्कृतिक संरचनाएँ बिल्कुल भिन्न हैं। "संविधान के एक आदेश सन् 1950 के एस.आर.ओ. 510 के द्वारा (आसाम की जनजातियों को छोड़कर) एक सौ साठ समूहों को

अनुसूचित जनजातियाँ (Scheduled Tribes)घोषित किया गया है। सन् 1991 की जनसंख्या के आधार पर भारत में अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या 6.78 करोड़ है।"[78]

इस मान्यताओं से आदिवासी जनसंख्या तथा उसकी जनजातियों का पता चलता है। भारत में आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, केरल, ओड़िसा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मणिपुर और त्रिपुरा आदि क्षेत्रों में आदिवासी जनजातियाँ पायी जाति हैं।

प्रमुख भारतीय जनजातियाँ इस प्रकार मिलती हैं— 1. संथाल- इनका मुख्य निवास बिहार का संथाल परगना है। ये पश्चिम बंगाल और अन्य क्षेत्रों में भी पाई जाति हैं। 2. भील- भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है। इनका प्रमुख केंद्र मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान है। 3. खस- उत्तर प्रदेश (अब उत्तराखंड) की महत्त्वपूर्ण जनजाति है। ये देहरादून जिले के जौनसर बाबर क्षेत्र में निवास करते हैं। 4. मन्नेरवारलू- महाराष्ट्र के नांदेड तथा अन्य जिलों में पायी जाति है। 5. थारू- उत्तर प्रदेश की प्रमुख जनजाति है। यह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में फैले हुए हैं। 6. नागा- नागा क्षेत्र में रहते हैं। 7. हो- जनजाति झारखंड व ओड़िसा में रहती है। आदिवासियों की अनेक जातियां कबीलाई जीवन शैली में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता के कारण आर्थिक अभाव में कंगाल बनी है। यह अज्ञानी, अनपढ़ और अंधश्रद्धालु होने के कारण इनका समाज में चारों ओर से शोषण होता है।इस संदर्भ में विनायक तुमराम कहते हैं—"वनवासियों का क्षत-जीवन, जिस संस्कृति के गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन तथा अनुभव का शब्द रूप हैं।"[79]

---

[78]समाजशास्त्र विश्वकोश, पृ.सं. 314.

[79]म. फूले वाङ्मय, पृ.सं. 416.

आदिवासी साहित्य दिन-ब-दिन विद्रोह का रूप लेते जा रहा है । क्योंकि वनवास से मुक्ति का यह नया संकल्प है । आदिवासी साहित्य के बहाने तो इन पीड़ाओं से मुक्ति का राह मिल रही है । आदिवासी-साहित्य से नव-निर्माण का स्वप्न बीज अंकुरित हो रहा है । "पहाड़ों की गोद में कंटीली झाड़ियों में, बस्ती-बस्ती में, जिनके जीवन का हर क्षण श्रृंखलाबद्ध हुआ है, यह साहित्य ऐसे ही जंगलवासियों को मुक्ति की आशा दिलानेवाला है ।"[80]

विगत दो दशकों में आदिवासी साहित्य प्रमुख रूप से उभरकर हमारे सामने आया । आदिवासी साहित्य यथा कविता, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य आदि विधाओं के माध्यम से लगातार अभिव्यक्त हो रहा है । यह साहित्य मानवीय-मूल्यों, वंचितों और मानवीय-संवेदनाओं को उकेरने की एक नये ढंग से कोशिश करता है । जनजातिय साहित्य वर्णव्यवस्था, जातिवाद, अन्याय, शोषण आदि के मठों की धारणा को खंडित कर अभिव्यक्ति के खतरे उठा रहा है । यह साहित्य इतिहास की पुरातन धारणाओं, धर्मशास्त्रों की स्थापनाओं का खंडन करता दिखाई पड़ता है । वह शोषण, तिरस्कार एवं परंपराओं को खारिज कर मानवता को स्थापित करना चाहता है । इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती हैं—"जनजातिय साहित्य सामाजिक-रचना और एकात्म-जीवन का भी विचार रखने लगा है । इस साहित्य का सपना है कि आदिम समूहों में वर्ग-रहित, जाति-रहित समाज-व्यवस्था रची जाए, जो जीवनमूल्य आदिवासियों के थे ही नहीं, यह साहित्य उसे कभी नहीं स्वीकारेगा ।"[81]

आदिवासी साहित्य में आदिवासियों का भोगा हुआ यथार्थ और पीड़ा, आक्रोश के रूप में फूट रहा है । उसका सुषुप्त आत्मसम्मान जागने लगा है । वह समाज-व्यवस्था को चुनौती देता हुआ आश्वस्त है । संपूर्ण भारत के आदिवासियों की संवेदनाएँ, मूल्य, आदर्श, विषयवस्तु कमोवेश

---

[80]आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ.सं. 25.

[81]वही, पृ.सं. 25.

एक-सी है, अभिव्यक्ति पर भाषा बंधन नहीं हो सकता है। आदिवासी साहित्य में ऐसी पीड़ा-वेदना, उपेक्षा की धुरी पर टिकी है, जो एक नई साहित्यिक विचारधारा का निर्माण करती है।

आदिवासी-समाज में धार्मिक भावना अधिकतर दिखाई देती है। इन्होंने प्रकृतिवाद, आत्मा की अमरता, जीववाद, जादू-टोना और पुनर्जन्म में इनका अटूट विश्वास है। कुछ विद्वानों के अनुसार जन-जातिय धर्म की विशेषताओं में सबसे प्रमुख विशेषता जीववाद है। पूर्वजों की पूजा जीववाद का एक मुख्य तत्त्व है। भारत में संथाल, बंजारा और उराँव जन-जातियों में पितरों की आत्माओं की पूजा करने का रिवाज मिलता है। आदिवासी-समाज में भूत-प्रेत के नाम पर जादू-टोना किया जाता है। नागा जन-जाति के लोगों में तथा निकोबार द्वीप समूह में लकड़ी की मूर्तियों पर मृत व्यक्ति की खोपड़ियाँ रख कर यह समझते हैं कि आत्मा खोपड़ी से निकल कर मूर्ति में आ जाति हैं। भील जन-जाति में पुनर्जन्म का विश्वास दिखाई देता है। आदिवासी सभ्य समाज प्रकृति के उपासक है। जन-जाति के लोग सूर्य-चंद्र की पूजा करते हैं, इसके साथ-साथ नदियाँ, पहाड़ों, पेड़-पौधे, जानवरों और नक्षत्रों की पूजा भी की जाति हैं। इस सभी प्रकार की साहित्यिक जानकारी हमें लोक साहित्य के द्वारा प्राप्त होती हैं।

लोक-कथाओं में आदिवासी साहित्य मिलता है, क्योंकि इसमें प्राकृतिक वस्तुओं, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, जीवन-विधान, रीति-रिवाज और सृष्टि की अवधारणा आदि विषयों के बारे में मालूम पड़ता हैं। इस साहित्य में लोकवार्ता को मूल आधार के रूप में मान सकते हैं, क्योंकि लोकवार्ता में आदिवासी एवं जन-जाति की अवधारणा एवं विकास के बारे में कहा गया है। आदिम संस्कृति को समझने के लिए लोकवार्ता महत्त्वपूर्ण साधन है। आदिम कला सामाजिक कला है यद्यपि वह व्यक्ति को अनेक प्रकार से संतोष देती है। जन-जाति के समूह जिन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, उन वस्तुओं जैसे— बर्तन, हथियार, वस्त्रों आदि पर ही चित्रकला की कृतियाँ भी बनाई जाति हैं।

लोक-साहित्य में शिल्प-कला को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आदिवासी सभ्य-समाज में पत्थरों की चट्टानों, शिलाओं और लकड़ियों पर इन लोगों की आराध्य देवी-देवता, शक्तियाँ एवं शिकार की मूर्तियाँ दिखाई देती हैं। इन कलाओं के आधार से आदिम समाज की जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ नृत्य-कला आदिम समाज में दिखाई देती है। नृत्य-कला में स्त्री-पुरुष दोनों वर्ग की भागीदारी हैं। आदिम समाज में जन-जाति की दिलचस्पी संगीत में दिखाई देती है। उस समय संगीत का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। धार्मिक अवसरों पर संगीत को विशेष महत्त्व दिया गया है।

आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक है, चाहे कोरकु जनजाति पर लिखा साहित्य हो अथवा गोंड, भील, परधान, कोलाम, वारली, मन्नेवारलु तथा कोली महादेव आदि या किसी भी अन्य जनजाति पर लिखा साहित्य हो, उन सबका समावेश आदिवासी साहित्य में है। संसार में जहाँ-जहाँ आदिम समूह रहते हैं, उनसे संबंधित सारा साहित्य आदिवासी साहित्य में समाविष्ट होगा। अभी तक अव्यक्त वेदना-संसार का दर्शन कराने वाला साहित्य है। आज का आदिवासी साहित्य नए जागरण का उषासूक्त है।

कहना न होगा कि आदिवासी लेखन अपने लोकसाहित्य को प्रस्तुत कर रहे हैं— किंवदंतियाँ, कथाएँ, लोककथाएँ सामने ला रहे हैं, नाटक लिख रहे हैं तो वे अपनी शौर्यगाथाओं की खोज में भी निकल पड़े हैं। संपादन क्षेत्र में भी आदिवासी लेखकों ने कमान संभाली है। इनकी मातृभाषाओं में पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं। अकेले झारखंड राज्य में संथाली भाषा में ही लगभग 146 पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं। राजस्थान से निकलने वाली 'अरावली उद्घोष' जिससे प्रेरित होकर 'युद्धरत आम आदमी' ने आदिवासी रचनाओं के दो विशेषांक निकाले, अपने में एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है जो आज भारतीय आदिवासी लेखकों का प्रतिनिधित्व करती है।

यह साहित्य प्रासंगिक तो है ही, उपेक्षित जमातों के प्रति आज तक अनजाने में अथवा जानबूझकर अपने स्वार्थहित में बढ़ती जा रही उपेक्षा के प्रति तथाकथित मुख्यधारा में संवेदना पैदाकर मानसिकता बदलने का प्रयास भी करता है । हम और वे की दूरियों को पाटने का काम यही साहित्य कर रहा है । निर्मला पुतुल ने यदि झारखंड के आदिवासियों में पनप रहे रोष और पहचान के आंदोलन से प्रभावित होकर लिखा है, तो उसका असर आपके मन पर भी पड़ रहा है, आपके अंतर्मन में वे एक संवेदना जगाने में कामयाब हुई हैं और यही आदिवासी साहित्य की सफलता है ।

उक्त विवेचन के आधारपर हम यह कह सकते हैं कि, अनेक रचनाकारों की कृतियों के माध्यम से आदिवासी साहित्य की प्राप्त जानकारी मिलती है । इस साहित्य की वजह से जन-जातियों की समस्याएँ उभरकर सामने आ रही हैं । जन-जाति के रचनाकार इस साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से उनकी अस्तित्व की पहचान और समस्याओं को समाज के सामने रख रहे हैं । आदिवासी साहित्य को समझे बिना आदिवासियों को समझना असंभव हैं । आज आदिवासी रचनाकार उनकी रचनाओं में जन-जाति संस्कृति को आधार बनाकर उनके रीति-रिवाज, वेश-भूषा, भाषा, विवाह, धर्म आदि को साहित्य के रूप में दिखा रहे हैं ।

आदिवासी साहित्य धरती के ऊपर मानव उत्पत्ति से हम मान सकते हैं, क्योंकि उस समय मौखिक रूप में दिखाई देता है । प्राचीन काल में आदिवासी साहित्य के ऊपर दबाव भी डाला गया है । काल की दृष्टि से बदलाव आया है । आधुनिक युग में शिक्षा अर्जन की वजह से इन लोगों के बीच चेतना पैदा हुई । आदिवासी अपने समाज के बारे में खुद रचना करने लगे । उनका जीवन-विधान, संस्कृति एवं समस्याओं को उसमें दिखाया है । आजकल आदिवासी-जीवन के ऊपर अधिकतर रचनाएँ हो रही हैं । पढ़े-लिखे (सुशिक्षित) लोग आदिवासी रचना की ओर उत्सुकता दिखाने लगे हैं । इस साहित्य के माध्यम से जन-जाति के समूह में जागृत-भावना उत्पन्न हुई है । हर क्षेत्र में आदिवासी साहित्यिक स्वरूप का विकास क्रम बढ़ रहा है ।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में तथा आदिवासियों के जीवन में पुलिस, प्रशासन और सरकारी व्यवस्था नेअन्याय, अत्याचार एवं दमनकारी व्यवहार से आदिवासी-समाज को विद्रोह और संघर्ष के लिए विवश किया है। फलतः आदिवासियों में ऐसी व्यवस्था के विरूद्ध चेतना जागृत हुई। इसका परिणाम उनके संघर्ष के लिए खड़े होने में हुआ, विद्रोह बनकर व्यवस्था में परिवर्तन की प्रबल कामना में हुआ। जब वे संघर्ष के लिए खड़े होते हैं तो उन्हें 'नक्सली' घोषित कर कैसे दबाया जाता है और उनका इस विवरण का चित्रण अख़बारों में कैसे किया जाता है इसका ब्यौरा रणेंद्र ने अपने उपन्यास में दिया है—"पाथरपाट में हुए पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमाडंर बालचन भी शामिल। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एस.पी. दरोगा की हत्याओं और किन-किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आँखों देखा विवरण। अंत में इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशें उठा ले गये। पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है।"[82]

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन खूब मिलता है। श्री प्रकाश मिश्र के 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के लालडेङा में आदिवासी-समाज को विद्रोही बनाने की ओर अपने सोये हुए स्वाभिमान को चेताने की दृष्टि लक्षित होती है जो असम रायफल में पच्चीस-वर्षों तक हवलदार-क्लर्क रह चुका था। जब बेवजह डाका डालने का मुकदमा दायर कर पुलिस आदिवासियों की खोज में निकलती है तो लालडेङा को खोजती है। आदिवासी को जंगली मानकर उसके साथ जानवर जैसा व्यवहार करनेवाली पुलिस तथा सरकार को जंगली बनकर जूतों की भाषा में ही जवाब देना जरूरी समझते हुए लालडेङा कहता है—"भाई! निहुरे-निहुरे

[82]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 88.

अपना हक नहीं पाया जा सकता। चाल्हिया को सरकार हमें जंगली समझती है। अपने जूता की भाषा करनी होगी और पूरा जंगली बनकर दिखाना होगा।"[83]

उपन्यासकार तेजिंदर ने भी तथ्यों की सत्यता को उपन्यास की यथार्थपरक जमीन पर पटक कर, इन्हीं के कथ्यों और कृत्यों का कटघरा बना दिया है। काला पादरी में तेजिंदर ने मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित होती घटनाओं और जंगलों के पास सांस लेते जीवन का इतना विवरणात्मक, संवेदनशील एवं सूक्ष्म आकलन किया है जो समकालीन कथा साहित्य की एक विरल उपलब्धि है।

उपन्यास के केंद्र में अंबिकापुर का आदिवासी बहुल क्षेत्र है। इस उपन्यास का नैरेटर आदित्य बैंक पोस्टिंग पर अंबिकापुर गया है। आदित्य की पहली मुलाकात जेम्स खाखा यानी 'काला पादरी' से होती है। जो मूल रूप से आदिवासी है। उसके दादा और पिता ने ईसाई धर्म अपना लिया था। उसकी धर्मविश्वासी तथा धर्मभीरू इच्छा और प्रयासों से वह स्थानीय पादरी हो गया है। पूरा उपन्यास जेम्स खाखा के अंतर्द्वंदों पर आधारित है। क्षितिज शर्मा के अनुसार—"जेम्स खाखा भीतरी धर्म को या धर्म के मौजूदा रूप को उसी तरह नहीं ले पाता जैसे उसे प्रसारित या स्थापित किया जा रहा है।"[84]

आदिवासी-समाज में सबसे बड़ी समस्या भूखमरी की रही है। जब अकाल पड़ता है तो जंगलों में कुछ खाने को नहीं मिलता है। यह अकाल आदिवासी-जीवन को परास्त कर देता है। वे इस दुखःमयी जीवन को किसे बताएँ, किसके पास जाएँ ? सरकार तो अपनी जगह निश्चिंत बैठी है। जब इनकी जाँच, पड़ताल करती है तो वो भी उलटे ही करती हैं। आदिवासी समाजों

---

[83]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 75.

[84]काला पादरी, पृ.सं. 20-21.

पर सबसे बड़ी धोखाधड़ी किसी ने की है तो वे हैं— तथाकथित समाज, पुलिस, प्रशासन तथा सरकार। अख़बारों में छपी ख़बरों पर सरकार क्या कहती है इसका उदाहरण हमें तेजिंदर के उपन्यास में देखने को मिलता है।

1.“अख़बार में एक रिपोर्ट दर्ज़ थी। रिपोर्ट में बताया गया था कि अंबिकापुर ज़िला मुख्यालय, सरगुजा के एक गाँव बीजाकुरा में एक आदिवासी औरत तथा उसके दो बच्चे, जिनमें एक चार साल का था तथा दूसरा अभी माँ की छातियों में दूध तलाश रहा था, की मृत्यु हो गयी। गाँव के सरपंच ने अठारह किलोमीटर दूर पैदल चल कर यह रिपोर्ट रघुनाथ नगर पुलिस थाने में दर्ज़ करवायी। अकालग्रस्त इस क्षेत्र में आदिवासी और उसके दो बच्चों की मृत्यु का कारण भूख बताया गया था।”[85]

2. “सत्तर साल के एक बूढ़े व्यक्ति को उसकी इच्छा के खिलाफ अंबिकापुर के ज़िला अस्पताल में भर्ती कराया गया। बताया गया कि यह बूढ़ा उस महिला का श्वसुर (ससुर) था जो भूख से मर गयी थी। बूढ़े का नाम बिरई लकड़ा था। उसके एक लड़के की मृत्यु भी कुछ दिन पहले भूख से हुई थी।”[86]

जब कोई आदिवासी अपने स्वेच्छा से मरने के लिए तैयार है तो उसे भी हमारी शासन व्यवस्था मरने नहीं देती। उसका एक उदाहरण काला पादरी में दृष्टव्य है।

3.“साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने कई दिनों से कुछ नहीं खाया था, मैं भी मर जाना चाहता था, पर यह लोग मुझे ज़बरन अस्पताल ले आये। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि इस क्षेत्र के

---

[85]काला पादरी, पृ.सं.21-21.

[86]वही, पृ.सं. 21.

आदिवासी पिछले कई दिनों से ज़हरीली जंगली बूटियाँ खा रहे हैं और ज़िले के भीतर इलाक़ों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर, उनका माँस तक खा रहे हैं।"[87]

इन ख़बरों को लेकर पुलिस, प्रशासन तथा सरकार जाँच करती है और उनका कहना होता है कि—"कुछ समाचार पत्रों में प्रकाशित, बीजाकुरा गाँव में भूख से मृत्यु संबंधी समाचारों की विस्तृत जाँच की गयी है। जाँच से पता चला है कि इन क्षेत्रों में रहनेवाले कई आदिवासी परंपरागत रूप से बंदरों और बिल्लियों का शिकार करते हैं और उनका माँस खाते हैं। बीजाकुरा में किसी भी व्यक्ति की मृत्यु भूख के कारण नहीं हुई है तथा ज़िले के किसी भी क्षेत्र से ग्रामीणों के पलायन का समाचार जाँच के बाद सही नहीं पाया गया है।"[88]

राकेश कुमार सिंह ने आदिवासी जन-जीवन को गाँव कस्बे, खेत-खलिहान, जंगल-पठार, दुख-दैन्य, भूख, शोषण, अज्ञान, बेरोजगारी, अशिक्षा, विपन्नता और समय-समय पर होती क्रांतियों को संघर्ष-अमर्ष को बड़ी ही गहनता व सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। इसी संदर्भ में 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास दृष्टव्य है।

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण और दमन से त्रस्त झारखंड के आदिवासी संथाल बहादुरों की मुक्ति-संग्राम की सशक्त महागाथा है।

राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास में जंगल की भूमि पर अधिकार कर जमींदारों से गठबंधन कर अंग्रेजों ने वनपुत्रों का शासन के नाम पर अंधाधुंध शोषण किया। वनपुत्रों की पारंपारिक भूमि से उनके अधिकारों को छीनकर उसका बंटवारा कूटनीति के आधार पर किया गया। जिसे

---

[87]वही, पृ.सं.21.

[88]वही, पृ.सं. 21.

चित्रित करते हुए लेखक कहते हैं—“जब जंगले की भूमि का सरकारी खाता बनने लगा तो बाघामुंडी गाँव को बसाने वाले संतालों को मिलों, पहाड़ों पर बने खेत, रेतीली क्यारियाँ या ऊसर भू-खंड ! सड़ी गायें ब्राह्मण को दान...! बाघामुंडी की नींव डालने वाले संताल राजा गोमके के रैमत बना डाले गये जिनके पास पठारी भूमि के ऐसे खेत थे जिन्हें खोदने पर बरोसा भर भूमि के नीचे चट्टानों ही चट्टानों... । हाँड खेतों के साथ जुड़े भविष्य वाले संताल सदैव परावलंबी और राजा गोमके की रैयत बनने को अभिशप्त थे ।”[89]

अंग्रेजी और स्वदेशी शासकों के शोषण से त्रस्त आदिवासी-समाज अपने देश को इस दासता से मुक्ति कराने के लिए कटिबद्ध हो चुका था । देशभक्ति की भावना ने उनमें ऊर्जा का संचार कर दिया था, जिसके बल पर वह शोषक वर्ग को बुलंद स्वर में चुनौती दे रहा था । आदिवासी-समाज के रामा मुंडा के माध्यम से लेखक देशभक्ति की भावना को चित्रित करते हैं—“अमानुष का जीवन जीनेवाला मुंडा आदिवासी रामा आज सर्वशक्तिमान कंपनी सरकार से अभय प्राप्त राजा गोमके को मानो चुनौती देता फिर रहा था । अंग्रेजों को ‘गोरे ईसाई’ और अंग्रेज समर्थ देसी जमींदारों को ‘काले ईसाई’ कहता रामा मुंडा, सर कराटने की बात कर रहा था । पेट में दाने नहीं, जीभ गज भर की !”[90]

संजीव के उपन्यास के केंद्र में पश्चिमी चंपारण (बिहार) जिले की डाकू समस्या और उससे प्रभावित थारू जनजाति है । “थारू उत्तराखंड में नैनीताल, उत्तर प्रदेश में लखीमपुर खीरी, गोंडा, बहराइच, गोरखपुर आदि जिलों में तथा बिहार के चंपारण ओर दरभंगा जिलों में एवं

---

[89]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 41.

[90]वही, पृ.सं. 106.

भारत के पूर्व में जलपाई गुड़ी (पं. बंगाल) से सुनिश्चित में कुमाऊं गढ़वाल तक तथा नेपाल में पूर्व में भेंची से पश्चिम में महाकाली के अंचल तक व्याप्त हैं।"[91]

थारू जहाँ रहते हैं, पहले यह प्रदेश भयंकर वनों से पटा हुआ था। कठोर परिश्रम से दिन रात लगाकर थारूओं ने इस भूमि को रहने योग्य बनाया। उपन्यास में चित्रित थारूओं के निवास के बारे में 'ऑपरेशन ब्लैक पॉइथन' के ऑपरेशन इंचार्ज, उप-पुलिस महानिरीक्षक कहते हैं—"उत्तर में पड़ोसी देश नेपाल, पश्चिम में पड़ोसी प्रांत उत्तर प्रदेश, बीच में प्रायः दुर्भेद जंगल पहाड़, मीलों फैले गन्ने के खेत, नारायणी नदी के तिलस्मी कछार.... दुर्गम पहाड़ों, दुर्गम जंगलों, नदी-नालों, गन्ने के खेतों से अँटा पड़ा है ये क्षेत्र।.... इस अभ्यारण्य से भी बड़ा एक और अभ्यारण्य है—'इलाके के थारू जनजाति के लोग।'"[92]

इस कथन से परिलक्षित होता है कि थारू लोग घने जंगलों, पहाड़ों वाले क्षेत्र में निवास करते हैं, जहाँ आवागमन की सुविधा तथा अन्य भौतिक जीवन की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इस पिछड़े क्षेत्र में सड़कों की स्थिति एकदम बदतर है। इस बारे में बड़े बाबू कुमार से कहते हैं—"सब्भे रद्दी हैं सर, दो-एक जगह भले ठीक हो, बिहार की सड़कें हैं न।"[93]

निम्नवर्गीय जीवन में डाकुओं का खौफ सदैव मौजूद रहता है। अधिकांश डाकू इसी वर्ग के होने के बावजूद गरीबों को ही सताते हैं। अपहरण, हत्या, लूट तथा बलात्कार जैसे जघन्य कार्यों को अंजाम देने में इसका जरा भी मन नहीं हिचकता। प्राकृतिक आपदा के कारण मझरिया जैसे गाँव के परशुराम, पत्तन तथा परेमा डाकू चंद्रदीप, लल्लन बाबू, राजगढ़िया तथा दुबेजी जैसे नेताओं के इशारे पर कुकृत्यों को अंजाम देते रहते हैं। एक अधेड़ औरत कुमार से

[91]जनजातीय भारत, पृ.सं. 126-127.

[92]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 08.

[93]वही, पृ.सं. 14.

कहती है—"सरकार हमरा के बचाई नदी नीचे से काटेली, डाकू ऊपर से, जान कइसे बाची ? ई बान्ह (बांध) पे कतना दिन काटीं जा... ?"[94] इस तरह उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन को प्रस्तुत किया गया है ।

2.3. 'आदिवासी' सांस्कृतिक-जीवन

साधारणतः संस्कृति मनुष्य के जीवन में घटित होनेवाले प्रत्येक पहलू को स्पर्श करती है, जिसके आधार पर मनुष्य का दैनिक जीवन चलता है । ई.वी. टेलर ने कहा है— 'संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसके अंतर्गत आचार-विचार, विश्वास, रीति-रिवाज, विधि-विधान एवं परंपराएँ आती हैं । इसके अंतर्गत सभी मान्यताएँ एवं आदतें शामिल हैं ।' डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' की भूमिका में लिखा है—"आदिम साम्यवादी व्यवस्था से लेकर आधुनिक जातियों के निर्माण तक समाज के गठन में, उसके ढाँचे में, वर्गों के परस्पर संबंधों में, अन्य समाजों से संघर्ष या हेलमेल में जो परिवर्तन हुए हैं वे सब भाषा में प्रतिबिंबित होते हैं और उसका विकास निर्धारण करते हैं ।"[95] इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है—"भाषा एक जीवन परंपरा है तथा भाषा सामाजिक निधि है ।"[96] भले ही डॉ. रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध के उपर्युक्त उद्धरण भाषा की महत्ता और महत्त्व के संदर्भ में उल्लेखित किये जाते रहें हो किंतु यहाँ यह भी निश्चित है कि 'भाषा में प्रतिबिंब' (डॉ. रामविलास शर्मा), 'जीवन परंपरा या सामाजिक निधि' (मुक्तिबोध), संस्कृतिरहित नहीं हो सकते ।

---

[94]वही, पृ.सं. 225.

[95]भाषा और समाज, पृ.सं. 01.

[96]एक साहित्यिक की डायरी, पृ.सं. 25-26.

आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है । इसके अंतर्गत मूल्य, मान्यता, चेतना, विश्वास, विचार, भावना, रिवाज़, भाषा, ज्ञान, कला, जादूटोना, धर्म, इसके अलावा आदिवासी संस्कृति में—लिंग समानता, जातिसमानता, सहयोग की भावना, भाईचारा, समानता एवं सभी जाति-धर्मों से एक अलग प्रेम इनमें होता है वह— प्रकृति तथा जानवर प्रेम ।

संस्कृति समाज का 'राजमुकुट' होती है । जिस संस्कृति के कारण भारत को विश्व की प्राचिनतम संस्कृतियों में महत्त्वपूर्ण और गौरवमय स्थान प्राप्त है, उसका मूल उत्स एवं वास्तविक रूप भारतीय आदिवासी-जीवन में उपलब्ध होता है । 'संस्कृति' शब्द का संबंध संस्कार से है और संस्कार व्यष्टि के रूप में व्यक्ति और समष्टि के रूप में जाति या राष्ट्र के होते हैं । समष्टिगत संस्कार ही संस्कृति कहलाते हैं । प्रायः सभ्यता और संस्कृति शब्दों का प्रयोग साथ-साथ होता है । किंतु सभ्यता का संबंध शारीरिक एवं भौतिक विकास से होता है । जबकि संस्कृति के मूल में बौद्धिक उन्नति होती है । अर्थात् सभ्यता का संबंध शरीर से होता है और संस्कृति का संबंध आत्मा से होता है । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी सभ्यता और संस्कृति के अंतःसंबंधों को इस प्रकार बताते हैं— 'सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है । सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का ।'

आदिवासी संस्कृति में मनुष्य का रहन-सहन एकदम सादा है । इनकी संस्कृति में संपत्ति के जुटा ने पर बात नहीं है । वे प्रकृति के पुजारी है । आदिवासियों ने आदिम काल से ही प्रकृति से एक विशिष्ट रिश्ता बना लिया है । इसलिए तो वे जंगल को ही अपना आराध्य मानते हैं, अपने जीवन का एक पहलू मानते हैं । लेकिन विकसित कहे जानेवाले सभ्य संस्कृति वाले इनके आराध्य को मिटाने पर तुले हुए हैं ।

संस्कृति शब्द को परिभाषित करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि—"संस्कृति ऐसी वस्तु नहीं जिसकी रचना दस-बीस या सौ-पचास वर्षों में की जा सकती हो, अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस प्रकार खाते-पीते, रहते-सहते, पढ़ते-लिखते, सोचते-समझते और राज-काज चलाते अथवा धर्म-कर्म करते हैं, उसमें हमारी संस्कृति की झलक होती है । असल में शरीर का नहीं आत्मा का गुण है, जबकि सभ्यता हमारी आत्मा से संबंध जन्म-जन्मांतर तक जलता है ।"[97]

मनुष्य के जीवन में 'धर्म' का महत्त्वपूर्ण स्थान है । लेकिन भारतीय संविधान में केवल हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई तथा अन्य का उल्लेख है । आदिवासी मूलतः उपरोक्त किसी भी धर्म को अपना धर्म नहीं मानता । वे केवल अपना धर्म 'आदिधर्म' मानता है । लेकिन इस धर्म का उल्लेख ही नहीं है । इसी तरह भारतीय इतिहासकारों ने भी आदिवासियों के साथ पक्षपात किया है । उन्हें पता था कि आर्यों से पहले यहाँ आदिवासी संस्कृति विकसित हो रही थी । इसकी जानकारी होते हुए भी उन्होंने आदिवासियों पर अन्याय किया है । धर्म एवं संस्कृति का महत्त्व बताते हुए रत्नाकर भेंगरे तथा सी.आर. बिजोय कहते हैं कि—"धर्म एवं संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध है । सामाजिक मनुष्य का प्रत्येक क्रियाकलाप संस्कृति कहलाता है । अपने धर्म से प्रेरित होकर मनुष्य जीता है अपने संपूर्ण जीवन में वह जो क्रियाएँ करता है वह प्रतीक के रूप में संस्कृति और धर्म के आधार पर प्रतिबिंब के रूप में प्रत्येक वस्तु का प्रतीक चिन्ह एवं अर्थ निर्धारण होता रहता है । यही 'अर्थ' मनुष्य को अच्छाई के लिए प्रेरित करता है तथा बुराई करने से रोकता है । अतः संस्कृति मानव जीवन का आवश्यक पहलू है ।"[98]आदिवासियों के

---

[97]समय के दस्तावेज, पृ.सं. 30.

[98]आदिवासी कौन, पृ.सं. 39.

सांस्कृतिक-जीवन को देखने के लिए प्रमुख दो बिंदुओं को देखना आवश्यक है— 1. लोक-कथाएँ, 2. लोक-गीत ।

2.3.1. लोक-कथाएँ

'लोक' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है एक विश्व-समाज और दूसरा जनसाधारण । साहित्य में 'लोक' का अर्थ 'ग्राम्य' के रूप में प्रयुक्त होता है । हिंदी-साहित्य कोश में डॉ. सत्येंद्र ने लोक तत्व को इस तरह व्याख्यायित किया है—"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अहंकार शून्य है और एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है । ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक तत्त्व कहलाते हैं ।"[99]

वर्तमान समय में आदिवासी केवल अपने लोक-कथाओं और लोक-गीतों में ही जीवित है । इन्हीं लोक-कथाओं और लोक-गीतों में उनका इतिहास है । जनजातिय समाज में प्रचलित कथाएँ लोक-कथाएँ कहलाती हैं । आज हमें लोक-कथाएँ पढ़ने को मिलती है उसका कारण ज्ञान-विज्ञान का विकास मात्र है । लेकिन यह लोक-कथाएँ सभ्यता के प्रारंभ से पूर्व 'मौखिक' रूप में ही प्राप्त होती है जो कि मौखिक साहित्यिक परंपरा के प्राचीनतम और प्रस्थान बिंदु मानीजाति थीं ।

आदिवासी लोक-कथाओं में देवी-देवता, भूत-प्रेत, राजा-रानी, प्राकृतिक उपादान, गोत्र, टोटम, वंश, परिवार तथा समाज के नायक आदि से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं । 'काला पादरी' उपन्यास में तेजिंदर ने उराँव जनजाति की वंश वृद्धि से संबंधित लोक-कथा का वर्णन

---

[99]हिंदी साहित्य कोश, पृ.सं. 685-686.

किया है—“भइया-बहन से हंडिया छान कर पी ली और वे नशे में आ गये और तब धरमेस ने उन्हें प्रजनन के रहस्य का ज्ञान कराया । अब तक भइया-बहन के बीच लकड़ी का एक लट्टा ड़ालकर एक साथ सोया करते थे । धरमेस ने विधिवत लड़के को बुलाया और उससे कहा, ‘जब तुम यह लट्टा पार करो, तब मानव की वृद्धि होगी ।’ और जब भइया-बहन गहरी नींद में पड़ गये तब धरमेस ने लकड़ी का वह लट्टा उनके बीच से हटा दिया । इस तरह धरमेस ने मनुष्य की प्रथम जोड़ी की शुरूआत की । उसने विवाह की स्थापना की । कथा के अंत में यह कहा गया है कि इस तरह मानव जाति की वृद्धि हुई और सारा संसार उनमें भर गया ।”[100]

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में रणेंद्र ने ‘असुर’ जनजाति के लोक-कथा को प्रस्तुत किया है । यहाँ धान के सीजन में मुंडीकटवा लोग घूमते हैं । ऐसे मुंडीकटवाओं से अनेक लोगों की बलि चढ़ गई है—“कमटी गाँव में बुधराम सिंह खरेवार । बड़ी-बड़ी लाल आँखें, हमेशा नशे में चढ़ी हुई । चेहरा-मोहरा ऐसा भयावह कि कोई भी समझ जाए । लेकिन उनके पास भी अपनी कहानी है । उनके गाँव के सटे पहाड़ में लगभग सत्तर-अस्सी फीट पर एक गुफा है । एकदम खड़ी चढ़ाई है । नया आदमी तो चढ़ ही नहीं पाएगा । सिंहजी का कहना है कि वहाँ देवी-थान है । देवी को जब बलि की जरूरत महसूस होती है तो गुफा से थाना-इलाला के बाहर जाकर ‘पूजा’ लाना पड़ता है । उस भक्त की बलि के बाद नगाड़े की आवाज़ खुद बंद हो जाति है ।”[101]

2.3.2. लोक-गीत

किसी भी देश के सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन एवं अनुसंधान उस देश के लोक-गीतों के विवेचन और विश्लेषण द्वारा ही संभव हो पाता है । लोक-संस्कृति के ज्ञान का प्रमुख साधन

---

[100]काला पादरी, पृ.सं. 40.

[101]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 13.

लोक-गीत होते हैं। लुप्त होती भारतीय अस्मिता को आदिम समाज और प्राकृतिक उपादनों से उसके आपसी संबंध को लोकगीतों के द्वारा खोजा जा सकता है। आदिवासी लोक-गीत इस देश की संस्कृति के वाहक हैं। डॉ. रवींद्र भ्रमर ने अपनी पुस्तक 'हिंदी भक्ति साहित्य में लोकत्त्व' में लिखा है—"लोक-गीत, लोक-मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोक-कथा की भाँति ये भी लोक-कंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोक-मानस की विविध चिंता-धाराओं के कोण माने गये हैं।"[102]

गाँव या देहातों में गाये जानेवाले जनसाधारण के वे गीत जो परंपरा रूप से किसी जनसमाज में प्रचलित रहते हैं, उन्हें लोक-गीत कहा जाता है। ये मौखिक होते हैं और इनमें सामयिक सुख-दुख की अनुभूतियों को प्रकट किया जाता है। ये गीत श्रोताओं पर मनोरंजक प्रभाव छोड़ते हैं। इन लोक-गीत, लोक-जीवन की संगीतात्मक अभिव्यक्ति तथा सुख-दुख की अनुभूति का सरलतम प्रकाशन है। गीतों के साथ सोना, गीतों के साथ जगना, गीतों में रीझना-रीझाना, रूठना-मनाना, रिसना-हँसना तथा ब्रत-अनुष्ठान करना लोक-जीवन का स्वभाव है। जन्म तथा विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर इन गीतों का महत्त्व किसी पुरोहित या पंडित के मंत्रोच्चार से कम नहीं होता। इन गीतों में मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, सहानुभूति और सौंदर्य चेतना बसी है। इन गीतों से भावों का ऐसा वेग होता है, जिससे समस्त अभाव दूर हो जाते हैं। लोक-मानस की विविध चिंता-धाराओं के कारण—"लोक-गीतों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें प्रकृति, पृथ्वी एवं मानव-मन की अनंत कल्पनाओं का ब्रह्मांड समाया हुआ है। मानव का शैशव लोरियों में झूलता व सोता है तो यौवन

[102]हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्त्व, पृ.सं. 06.

प्रेमोन्माद में प्रदत्त गीतों में विश्वास करता है । लोक-गीत, लोक-लीक के खींचहार और प्रेमी ह्रदयों को प्रेम जल से सिंचनहार हैं ।"[103]

लोक-संगीत और लोक-नृत्य लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम है, देश की संस्कृति, इतिहास और सामाजिक स्थितियों का प्रतिबिंब लोक-गीतों एवं लोक-नृत्यों में सहज ही देखा जा सकता है । लोक-नृत्यों के विविध रूप आज भी हमारे जन-जीवन में स्पंदन उत्पन्न करके हमें उल्लासित और प्रभावित करते हैं । इन नृत्यों के साथ गाये जानेवाले गीतों में पुरुष और नारी के तेज़-करारे, कर्ण-प्रिय सशक्त स्वर श्रोताओं और दर्शकों पर अपनी अलग ही अमिट छाप छोड़ते हैं । इन गीतों में यहाँ की संस्कृति के स्वर झिलमिलाते हैं । एक प्रकार से आदिवासी ही लोक-संस्कृति, लोक-गीत, लोक-कथाएँ, लोक-संगीत तथा लोक-नृत्यों आदि की अमूल्य धरोहर को आजतक सुरक्षित रखे हुए हैं । अब तो दिन प्रतिदिन इन लोक-नृत्यों या लोक-संगीत की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही है । इसलिए लोक-गीतों का वर्तमान साहित्य में महत्त्व बढ़ता जा रहा है और इनके संग्रह भी प्रकाशित हो रहे हैं । डॉ. विवेकीराय ने अनुसार—"लोक-गीतों में गाँव के प्राणों का स्पंदन होता है तथा उनका समूचा अंतरवैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है । परंपरा के रूप में गाये जानेवाले ये लोकगीत कभी-कभी उनके गायकों के व्यक्तित्व के साथ मिलकर एकाकार हो जाते हैं । स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में आँचलिकता की प्रवृत्ति ने गाँव के लोकगीतों को खेत-खलिहान से उड़ा कर साहित्य के अमर पृष्ठों के साथ जोड़ दिया है ।"[104]

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित विभिन्न आदिवासी समाजों में प्रचलित लोक-गीतों की अभिव्यक्ति क्षेत्रिय भाषा में हुई है । विभिन्न पर्वों-उत्सवों एवं घटना व अवसरों पर

---

[103]भारतीय लोकगीतः सांस्कृतिक अस्मिता, पृ.सं. 188.

[104]स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य और ग्राम्य-जीवन, पृ.सं. 276.

गाये जाने वाले गीतों की भाषा भले ही अलग-अलग हो किंतु सभी गीतों में अनुभूति एक सी होती है । गया पांडेय ने 'भारतीय जनजातिय संस्कृति' नामक पुस्तक में जनजातिय समाज में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले 38 लोकगीतों का नामोल्लेख किया है । लोकगीतों को लोक-नृत्य-वाद्य एवं संगीत से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि अधिकतर लोकगीतों के गायन के समय लोक-वाद्य एवं लोकनृत्य साथ-साथ बजाये और नाचे जाते हैं । इस तरह आदिवासियों के गीत-संगीत और नृत्य परस्पर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं ।

संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू हाट के मेले और सहोदर माई की पूजा का वर्णन मिलता है । उसी अवसर पर थारू हट की अप्सराएँ कभी पंख फैलाकर, कभी समेटकर, कभी झुक-झुककर, कभी सिमट-सिमटकर लहरों की हिलकोरों पर नाच रही हैं । सुध-बुध खोकर बालिकाएँ नाचती हैं और स्त्रियाँ गीत गाती हैं । इन गीतों के माध्यम से उनकी प्रश्नोतरी भी चलते रहती है—

"के अनिहें सुहानारी, के अनिहें कंगना,
कि के अनिहें कंगना,
हो के अनिहें कंगना,
से के अनिहें..... हिरदिया दरपनवाँ
के अनिहें...
(मलारी का दल जवाब देता है)
अरे बाबा अनिहें सहानारी,
हो बाबा अनिहे सुहानारी,
हाय बाबा अनिहें सुहानारी
(मलारी ने अंतरा को और खींच दिया, नहले पर दहला ।)

कि भइया अनिहें कंगना,

हमर भइया अनिहें कंगना,

कि वीरन अनिहें कंगना,

से सइहाँ अनिहें हिरदिया दरपनवाँ

हो राजा अनिहें हिरदिया दरपनवाँ

हमर बलमवाँ अनिहें हिरदिया दरपनवाँ...”[105]

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में ‘असुर’ जनजाति के लोग अपने बहू-बेटियों को डाँटना हो तो भी लोक-गीतों का प्रयोग करते हैं। निम्न गीत नौजवान लड़कों के मुँह से अक़सर सुनाई पड़ता कि लकड़ी और बाँस बेचने गयी असुरिन, तुमने खदान के मेठ के साथ नज़रें क्यों मिलायी ? तुमने खदान के मुंशी के साथ लगाव क्यों बढ़ाया ? पैसे (कचिया) के लोभ में तुम कुल का नाम डूबा रही हो। रूपये के लोभ में जाति का नाम डूबा रही हो—

“काठी बेचे गेले असुरिन,

बाँस बेचे गेले गे,

मेठ संगे नजर मिलयले,

मुंशी संग लसा लगयले गे,

कचिया लोभे कुला डूबाले,

रूपया लोभे जात डूबाले गे।।”[106]

‘असुर’ समाज में चाँदनी के रात हड़िया (देशी शराब) पीते हुए यह गीत गाया जाता है—

---

[105]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 17.

[106]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 38.

"फुलझर पहाड़े, गुड़ मीठा चुआँ,

रसा रसा पझराया पानी,

रसा रसा पझराय ।

पानी गे पझराय, निरमला पानी,

सैंया संगे भरब पानी

सोना संगे भरब पानी

रसा रसा

फुलझर पहाड़े..."[107]

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में आदिवासी कितने भोले हैं, उनको लगता है कि टूटे तारों की जगह मरे हुए आदमी की आत्मा पहुँचकर चमकने लगी है । वह इस गीत के माध्यम से दृष्टव्य है—

"राणापुर की कांचली माय भरग्यो रे बिछूड़ा

हां, बालम जी मरी जाऊंगी

कोठी मायड़ा गंवड़ा कुण पीसे बालमजी

हां, बालम जी मरी जाऊंगी"[108]

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में भी लोक-गीत प्रस्तुत किये हैं । आदिवासी इन लोक-गीतों के माध्यम से यह कहना चाह रहे है कि-संतान हेतु स्त्री, बसने हेतु भूमि, हल-गाय-भैंस-धन और संपत्ति हेतु है यह मारकाट । यह लड़ाई । पहले जैसा जंगल पाने हेतु, हक की वापसी हेतु विद्रोह करेंगे हम ।

---

[107]वही, पृ.सं. 47.

[108]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 147.

"मेरा निया निरूनिया, टिण्डानिया मिटानिया

हाय रे हाय, मापक गपच दो नुरिच नांगड़, गई काड़ा नाचेल लागित

पाचेल लागेत सेदाय लेका बेताबेतेत्

जाम रूयोड़ लागित

तउबे दो-बोन हूल गेया हो"[109]

आदिवासी लोक-गीतों में जन-जीवन, धर्म और दर्शन, भक्ति और नीति, कला और संस्कृति का जीवंत प्रभावशाली कलात्मक वैभव दृष्टिगोचर होता है जो किसी काव्यशास्त्रीय व्याख्या की अपेक्षा नहीं करता । लोक-गीतों का रचनाकार किसी एक वर्ग या संप्रदाय विशेष का नहीं है । युगों की उपेक्षा और अशिक्षा की विडंबनाओं के बीच भी लोक-गीतों के रक्षक-संरक्षक, कर्ता-भर्ता, रससृष्टा-रस आस्वादक की विडंबनाओं के बीच भी लोक-गीतों में उनकी और भारत की सही और समग्र सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित है । डॉ. नंदलाल कल्ला ने लिखा है—"संपूर्ण लोक समाज ही सिरजनहार है । इन गीतों की दुनिया ही लोक है । छंद, अलंकार, रस, शब्द-शक्तियाँ या गुण-दोष तो उन सिद्धियों के समान हैं जो 'भक्ति' रूपी राजरानी का हाथ जोड़कर अनुगमन करती हैं । लोक आस्था की जगमगाती इन मणियों की आभा का कौन मूल्यांकन कर सकता है ?"[110]

2.4. 'आदिवासी' आर्थिक-जीवन

सुचारू और सुविधापूर्ण जीवन जीने के लिए रूपयों की आवश्यकता होती है । आजकल समाज में जिसके पास पैसा है, उसे इज्जत और सम्मान प्राप्त है । अर्थ के बिना सारा जीवन व्यर्थ है । समाज में वर्ग बनने का मुख्य कारण अर्थ है । निम्नवर्ग की गरीबी एवं मजबूरी का फायदा

---

[109]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 123.

[110]भारतीय लोकगीतः सांस्कृतिक अस्मिता, पृ.सं. 208.

उठाकर उच्च वर्ग निरंतर धनी बनता जा रहा है। दोनों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। जहाँ उच्च वर्ग विलासितापूर्ण जिंदगी व्यतीत कर रहा है, वहीं उच्च वर्ग के शिकार निम्नवर्ग जीवन की न्यूनतम सुविधाओं से भी वंचित है। उसे रोजगार, रोटी, कपड़ा एवं मकान तथा स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं। समकालीन हिंदी उपन्यासों में अर्थ से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का चित्रण देखा जा सकता है।

आदिवासी-समाज आदिकाल से ही वनों पर आश्रित रही है। इसलिए आज भी वे वन या जंगल को ही अपना आराध्य मानने को तत्पर है। क्योंकि उन्हें उदरनिर्वाह के साधनों की पूर्ति जंगल से ही प्राप्त होती है। इसी जंगल के कारण उनका जीवन सुखमय था। किंतु आज आधुनिक युग में वे अपने उदरनिर्वाह के लिए जंगल पर आश्रित रहकर अन्य कार्य करने के लिए तैयार हैं जैसे— गोंद जमा करना, लकड़ी तोड़ना तथा बाजार में बेचना, मछली पकड़ना, जड़ी-बूटी, फल-फूल जमा करना, खेती करना, खिलौने बेचना तथा मजदूरी करना आदि।

आदिवासी-समाज की अर्थव्यवस्था के नियामक तत्त्वों में जनजातिय समाज की आय के प्रमुख साधन उक्त हैं। ये आय के प्रमुख साधन आदिम व्यवसाय मछली पकड़ना और वर्षों पुरानी परंपरा खेती द्वारा अर्थ अत्पाद करना हैं। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासियों के इन्हीं क्रिया-कलापों द्वारा अर्थोपार्जन का वास्तविक चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

आदिवासी हिंदी उपन्यासों में जनजातिय समाज की जो आर्थिक स्थिति है उसे केवल जंगल तथा जानवरों पर ही निर्भर दिखाया है। यह कुछ हद तक सही भी है। क्योंकि आदिम समाज पशु-पक्षी, वृक्ष तथा जमीन से जुड़े कार्य पर ही उनका जीवन निर्भर रहा है। रणेंद्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में जंगल, पशु-पक्षियों को तो आदिवासियों के पासबुक बताया है—"ये गाय-गोरू, बकरी-छकरी, मुर्गी-सुअर, केवल पशु-पक्षी नहीं थे, बल्कि आदिवासियों के पासबुक् भी थे

। हारी-बीमारी, शादी-विवाह इन्हीं के भरोसे । जब भी जरूरत होती, बेचारे मूक प्राणी हाट पहुँचा दिये जाते ।"[111] ये गाय-गोरू, बकरी आदि केवल इनके उदरनिर्वाह के साधन मात्र नहीं थे वे इनके बाल-बच्चों की स्वास्थ्य, शादी-विवाह, संगे-संबंधी आदि इन्हीं के विश्वास पर रहते थे । आज भी भारत में ऐसी कई जनजातियाँ हैं जो पशु-पक्षियों पर निर्भर है । आदिवासियों के विकास के लिए तो भारत सरकार अनेक योजनाएँ बना रही है पर वे योजनाएँ कितने हद तक आदिवासियों तक पहुँच रही है ? इन योजनाओं का फायदा लेने के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता होती है । सबसे पहले तो वे शिक्षा से ही वंचित है । इस संदर्भ में महात्मा ज्योतिराव फूले की उक्ति याद आती है—

'विद्या बिना मति गई

मति बिना नीति गई

नीति बिना गति गई

गति बिना धन गया

धन बिना शूद्र पतित हुए

इतना घोर अनर्थ मात्र अविद्या

के कारण ही हुआ ।'

निर्धनता आदिवासियों के केवल स्वास्थ्य एवं शक्ति को ही बुरी तरह प्रभावित नहीं करती अपितु उनकी पिछड़ी हुई सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की भी व्याख्या करती है । वर्तमान समय में आदिवासी यदि अज्ञान, अंधविश्वासी है तो इसका सबसे बड़ा कारण उनकी संस्कृति एवं निर्धनता है । शिक्षा के लिए वे धन व्यय नहीं कर पा रहे हैं, इसीलिए ये शैक्षणिक, सामाजिक, वैज्ञानिक उन्नति नहीं कर पा रहे हैं । इस बढ़ती महँगाई में आदिवासी

---

[111]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 23.

जिये तो कैसे जियें? यह गंभीर सवाल उनके सम्मुख हमेशा उभरता है। व्यापारियों द्वारा भी आदिवासियों को ठगा जा रहा है। राकेश कुमार सिंह ने 'जो इतिहास में नहीं है' में चित्रित किया है कि आदिवासी युवक अपनी प्रेमिका को उपहार देने के लिए जानवरों की खाल उतारने के लिए भी तैयार हो जाता है। यह सब निर्धनता तथा गरीबी के कारण ही हो रहा है। "यदि इन खालों को जतरा या मेले में न बेचकर घोरासी या रामगढ़ में बेचा जाए तो और ज्यादा रूपया मिल सकता था। जतरा मेले में बनिये जानवरों की खालें कौड़ियों के मोल खरीदते थे। और शहर में अशर्फियों के मोल बेचते थे क्योंकि आदिवासी के लिए दूर शहर जाना तीर्थयात्रा पर जाने के बराबर था। हारिल मुरमू ने लाली के लिए इस तीर्थयात्रा पर भी जाने का निश्चय किया। खालों को बेचकर जो रूपये मिलते उससे हारिल ने लाली के लिए उपहार खरीदने की योजना बना डाली।"[112]

तेजिंदर के उपन्यास 'काला पादरी' में ईसाई मिशनरी द्वारा 'उराँवों' का धर्म परिवर्तन के रूप में आर्थिक शोषणको चित्रित किया गया है। शोषण उराँवों के अस्तित्व को समाप्त करने का कारण बनता है। उपन्यास में लेखक 'जेम्स खाखा' के माध्यम से यह पूछते हैं—"क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज़ में पहाड़ थे, नदियाँ थीं, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इक्नॉमिकली एक्सप्लाइट किया, लेकिन आपने क्या किया ? यू रादर टेम्ड अस, आपने हमें फालतू बना दिया, हमारे लिये हिंदू फ़ंडामेंटलिस्टों और आपमें अब कोई ख़ास फ़र्क नहीं है। हमारी सारी इमेजेज़ छीन लीं आप लोगों ने...."[113]

---

[112]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 90.

[113]काला पादरी, पृ.सं. 45.

वर्तमान युग में हक की कमाईं माँगने पर कोड़े ही मिलते हैं। लेकिन हराम की कमाईं को कोई नहीं रोक पाता। इसी तरह का चित्रण संजीव ने 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में 'काली' नामक पात्र के माध्यम से किया है—"हक की कमाई माँगने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं हैं और हराम की कमाईं डकारनेवाले दुराचारी लुटेरे परशुराम के लिए पंद्रह हजार ! आग घुल रही है किली के मन में। क्या वह इन हरामखोरों की बेगारी करने और उनकी गाँड़ थोने के लिए ही पैदा हुआ हैं ? हतक, हतक, और हतक ! हतक के सिवा कुछ नहीं। ऐसे अन्याय पर उसे क्या करना चाहिए-यह बतानेवाला कोई न कोई देवी-देवता, न कोई साधु-फकीर, न कोई लीडर-अफ़सर ! हर तरफ अँधेरा है, हर तरफ घुटन !"[114]

कहीं शासन-प्रशासन तो कहीं साहू-जमींदार द्वारा आदिवासियों का शारीरिक और आर्थिक शोषण, उनकी आर्थिक समस्याओं को दिन-ब-दिन अधिक से अधिक गंभीर कर रहा है। तो दूसरी ओर नैसर्गिक आपत्तियों से अकालग्रस्त है।

भारत की सभी आदिवासी जनजातियाँ आर्थिक दृष्टि से घोर दयनीय जीवन यापन कर रही हैं। स्वतंत्रता के 72 वर्ष बाद भी आदिवासी-जीवन आर्थिक विसंगतियों के कारण संघर्षरत है।

2.5. 'आदिवासी' समाज की प्रकृति

आदिवासी-समाज की प्रकृति अन्य मानव समाजों से भिन्न है। आदिवासी-समाज की प्रकृति अन्य समाज से अलग होने के दो प्रमुख कारण हमें परिलक्षित होते हैं— 1. संस्कृति, 2. भाषा। अन्य मानव समाज 'एक रेखीय अवधारणा' पद्धति से अपना जीवनयापन करते हैं। एक रेखीय

[114]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 93.

अवधारणा का एक उदाहरण दृष्टव्य है— जन्म, कार्य और मृत्यु इन बिंदूओंको महत्त्व है । लेकिन आदिवासी इस एक रेखीय अवधारणा को न मानते हुए वह 'चक्रीय अवधारणा' को मानता है । वह दैनंदिन जीवन प्रणाली को महत्त्व देता है । समय, घटना और तथ्य ये उसके प्रमुख घटक तत्त्व हैं ।

आदिवासी-समाज प्रकृति के पूजक है । उन्होंने किसी हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि धर्मों को अपना धर्म कभी नहीं माना । वह तो 'आदि धरम' में विश्वास रखता है । वर्तमान समय में हमें कुछ आदिवासी अपने उदरनिर्वाह के लिए धर्म-परिवर्तन करते हुए दिखाई देते हैं । आदिवासियों में कभी जातिवाद का भाव भी नहीं रहा । क्योंकि वे जंगलों में निवास करने के कारण उन्हें मनु द्वारा रचित 'मनुस्मृति' में उल्लेखित चार वर्गों का ज्ञान ही नहीं था । तो आदिवासियों में जातिवाद की भी भावना होने का सवाल ही नहीं उठता । वे केवल उनकी अपनी 'सांस्कृतिक प्रजातियता' को महत्त्व देते हैं । जिसमें उनकी अपनी संस्कृति, अपनी अलग भाषा है । यही तो एक पहलू है जो अन्य मानव समाज से पृथक दिखाती है आदिवासियों को । प्रत्येक आदिवासी की अपनी एक स्वतंत्र बोली नहीं है ।

आदिवासी-समाज में 'घोटुल' पद्धति का महत्त्व है । उन्हें विवाह से पहले ही अपना साथी चुनने का अधिकार प्राप्त है । इसी प्रथा को हम आज 'लिविंग टुगेदर रिलेशनशिप' कहते हैं । ये आदिवासियों में बहुत पहले से प्रचलित थी । 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में रणेंद्र 'ललिता' के माध्यम से चित्रण करते हैं—"इस सुदूर वन प्रातंर में लिविंग टुगेदर की बात बड़ी अटपटी लगी । लेकिन ललिता का कहना था कि आपकी ही दुनिया के लिए नयी बात थी । और अभी-अभी फ़ैशन में आयी थी । आदिवासी-समाज में तो यह बहुत पुराने दिनों से मान्य है । विवाह में

किसी तरह की कठिनाई आ रही हो, तो लड़का-लड़की साथ-साथ रहना शुरू कर देते हैं। लेकिन बेटा-बेटी की शादी पहले शादी की रस्म निभानी पड़ती है। यह ज़रूरी है। कभी-कभी एक ही मड़वे पर माँ-बाप शादी करते हैं, बाद में बेटा या बेटी की शादी होती है।"[115]

आदिवासी-समाज में स्त्री को प्राचीन काल से ही महत्त्व दिया जाता है। स्त्री के पास अपने सभी हक सुरक्षित है। इसलिए तो आदिवासी-समाज में मातृसत्तात्मक पद्धति दिखाई देती है। 'छायावाद' में माया, ममता, करूणा, दया तथा नारी पूजा की अवधारणा इन्हीं से ली गई है। आदिवासी-समाज में 'गोत्र' (गण) का बड़ा महत्त्व है। प्रत्येक आदिवासी का परंपरा के अनुसार एक गोत्र होता है। वो उसे अपना गण चिन्ह मानता है। गण चिन्हों में केवल जीव-जंतु ही होते हैं। और वो जिस चिन्ह को अपना गण चिन्ह मानता है वह उस जीव को कभी नहीं खाएगा। इसीलिए तो आज हमें हर जीव-जंतु दिखाई देते हैं। आदिवासियों में यह धारणा इसलिए विकसित हुई की जीव-जंतुओं में संतुलन बनाए रखें। यही दुनिया को आदिवासियों की सबसे बड़ी देन है। आदिवासियों में बेचने और खरीदने की वृत्ति कभी नहीं थी। वे जिस चीज़ की आवश्यकता हो कुछ देकर कुछ पाते थे। इनमें सबसे प्रमुखबात यह है कि वे कभी संपत्ति के अधीन नहीं गये तथा संपत्ति जुटाने की कोशिश भी नहीं की। उन्होंने प्रकृति को कभी हानि नहीं पहुँचाई, प्रकृति को कभी खत्म होने नहीं दिया, वह तो उसे बढ़ावा देते हैं। यह विचारणीय बिंदु हैं।

आदिवासियों में 'पंचाग' देखने की प्रथा नहीं थी। उन्होंने किसी पंडित, पुजारी या पुरोहित से अपनी भविष्यवाणी कभी नहीं करवाई। वे तो शादी-ब्याह, मृत्यु-संस्कार, मुंडन आदि अपने सुविधा के अनुसार निकालते थे।

---

[115]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 76.

आदिवासी संस्कृति, भाषा, लोक-कथाएँ तथा लोक-गीतों में जीवित है । वे अपने समाज के द्वारा स्थापित परंपराएँ, पद्धति के साथ जीना पसंद करते हैं । संजीव ने 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में दिखाया है । बिसराम की पुत्री की साँप डसने से मौत होने पर उसे परवाह किया है—"न जलाई जा सकती है न गाढ़ी । बड़े-बूढ़े जो कहते हैं, वहीं करना होता है ।.... लाश को परवाह (प्रवाहित) कर दिया जाए । कई बार तो गंगा मइया खुद ही खींच लेती है, विष और मुर्दा जी उठता है ।"[116] अगले दिन बुजुर्गों का निर्णय होता है, तीन साल की बिटिया थी । "किरिया-करम भले न हो, पूजा-ऊजा करनी ही पड़ेगी पक्का होने के लिए ।"[117]

2.6. 'आदिवासी' जीवन के समक्ष चुनौतियाँ

मनुष्य समाज के आदिम युग से लेकर आज तक के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्ट ही कह सकते हैं कि उसका जीवन अब तक कई चुनौतियों से भरा पड़ा है । यह ऐसा इतिहास है जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व, पहचान और स्थायित्व के लिए प्रतिपल जूझता-लड़ता रहा है और यह सिलसिला अभी तक भी जारी है और भविष्य में अभी इसके खत्म न होने के संकेत सताते एवं बेचैन करते रहेंगे, इसमें कोई दो राय नहीं । ऐसी चुनौतियों के संकेत चाहे कितने ही भयानक एवं परिणामकारक क्यों न हों मनुष्य चाहे तो इनसे डटकर मुकाबला करने में जैसे आजतक समर्थ रहा है वैसे वह आगे भी रहेगा । मसलन चुनौतियाँ चाहे जिस रूप में भी हो उनका हल असंभव हो ऐसा कतई नहीं है, उनके निराकरण के उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं । नैसर्गिक समस्याएँ या आपदाएँ बिना दस्तक दिए अचानक-सी आक्रमक कर देती हैं लेकिन मनुष्य जनित समस्याएँ पहले दस्तक देती हैं और फिर उभरती हैं बस !उस दस्तक की आहट को समझना पहली शर्त है । मनुष्य द्वारा जनित ऐसी कुछ समस्याएँ आज चुनौतियाँ बनकर मजबूत दीवार

[116]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 22.

[117]वही, पृ.सं. 22.

की तरह खड़ी हैं, उन्हें तोड़कर ही राहत मिल सकती है । हर समाज के हित एवं कल्याण की बुनियादी शर्त समरस और समभाव ही है । इसी बुनियाद पर स्वस्थ समाज खड़ा रहता है । इस छोटे-से लेकिन महत्त्वपूर्ण तर्क पर ही मनुष्य समाज का उज्ज्वल भविष्य सिद्ध हो सकता है अन्यथा अराजकता की तानाशाही का ध्वज हमेशा के लिए लहराता रहेगा और मनुष्य का सिर उसके नीचे गुलामी का शिकार बना रहेगा ।

देश का प्रत्येक नागरिक यदि समरस, समभाव में जीना चाहे तो ऐसी अनुकूल स्थितियाँ मौजूद रहनी चाहिए । भारत के संदर्भ में सोचा-विचारा जाए तो इस देश में नाना धर्म, जातियाँ, उप-जातियाँ हैं । प्रत्येक धर्म, जाति, उपजाति स्वयं श्रेष्ठ होने की डिंगे मारने में कहीं भी हिचकिचाती नहीं है । ऐसे में सामाजिक समानता के बजाय सामाजिक विद्वेष एवं मतभेद, अलगाव,वैमनस्य, अहंवादिता, ऊँच-नीच, भेदभाव बढ़ जाता है । लोग हमेशा इन सबका दोष दूसरे के सिर पर ताज की तरह चढ़ा देते हैं और स्वयं को निर्दोष मान बैठते हैं । अक्सर ऐसे होते हुए हम देखते ही हैं । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि अपने धार्मिक-जातिय श्रेष्ठता-कनिष्ठता को दूर रखकर पहले यह सोचे कि हमारे समाज का विकास कैसे हुआ ? पहले समाज किस अवस्था से यहाँ तक आ पहुँचा है ? तब जबाब होगा कि मनुष्य समाज का विकास आदिम अवस्था से यानी आदिवासियों से ही हुआ । हमारे पूर्वजों में कोई न कोई आदिवासी था । उसके खून का अंश हमारे रक्त में भी प्रवाहित होता रहता है । इस सच को तो खारिज़ नहीं किया जा सकता । समाज एक निश्चित विकास अवस्था पाकर अनेक धर्मों, जातियों, उपजातियों, समुदायों, संगठनों में तो बाद में बँटा है । मसलन आदिवासीयत प्रत्येक मनुष्य के रगों में जिंदा है । इतनी जानकारी होते हुए भी आज आदिवासियों के सम्मुख जो चुनौतियाँ, समस्याएँ हैं उन पर हम नज़रअंदाज करके अपना जीवनयापन आँख मूँदकर कर रहे हैं, जैसे हममें कोई

मानवीयता ही न बची हो ! जैसे हम जिंदा पत्थर बन गए हों ! क्या यही उनके प्रति हमारा दायित्व है ? यह कतई न्यायिक और मानवीय नहीं कहा जाएगा।

आदिवासी-समाज की चुनौतियों की तुलना समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग रहनेवाले सर्वहारा वर्ग की चुनौतियों से करना मायने रखता है। ताज़ुब की बात यह है कि चुनौतियों से निश्चित व्याख्या करना भी कठिन है क्योंकि किसी के मायने में आदिवासी शब्द की जगह हरिजन, मूलवासी, वनवासी, मूलनिवासी, जंगली, अनुसूचित जन-जाति का प्रयोग अभिष्ट है। आदिवासी नाम से पहचान की जरूरत होते हुए भी संविधान में अनुसूचित जनजाति या 'Scheduled Tribe'से पहचान देना आदिवासियों के स्वाभिमान और अस्मिता को ठेस पहुँचाने जैसा है। मसलन किसी एक समाज के पहचान मात्र को लेकर इतनी चुनौतियाँ सामने हों तब निश्चित ही उनके जीवन, उनकी स्थितियों की क्या-क्या चुनौतियाँ हैं इस पर सोचने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। विश्व का कोई भी देश और उस देश का हर एक समाज ने दूसरे आतंकित शक्तियों से जूझकर ही अपने समाज की रक्षा की है और इस बात की गवाही इतिहास देता है लेकिन भारतीय इतिहास में आदिवासी-समाज के इतिहास को पन्ने मिलना मुश्किल दिखाई देता है क्योंकि आदिवासियों का कोई उल्लेख भारतीय इतिहास में मौजूद नहीं है ऐसे कई आदिवासी बुद्धिजीवियों, लेखकों का कहना है जिनमें हरिराम मीणा का नाम हम ले सकते हैं। वे कहते हैं कि अंग्रेजों ने 1500 आदिवासियों को मानगढ़ की पहाड़ियों पर गोलियों से भून डाला था पर इसे इतिहास में दर्ज़ नहीं किया गया था। इसके साथ ही वे कहते हैं कि आजकल जो शोध हो रहा है, उसके महत्त्व को समझकर अब यह दर्ज़ हो रहा है—"आज यह तथ्य सामने आया है कि मानगढ़ में जालियाँवाला बाग से भी बड़ा कांड घट चुका था, जहाँ अंग्रेजों ने

राजस्थान और गुजरात के रजवाड़ों को साथ लेकर एक रात में 1500 आदिवासियों को मानगढ़ की पहाड़ियों पर गोलियों से भून डाला था पर इसे इतिहास में दर्ज़ नहीं किया गया था।"[118]

रमणिका गुप्ता ने भारत के इतिहास की सत्यता पर शंका जताते हुए कहा है कि—"भारतीयों ने कभी अपना इतिहास नहीं लिखा, न ही गाया, न ही सुनाया। जो लिखा, जो सुनाया, जो गाया वह अतिशयोक्तिपूर्ण था। सत्य नहीं था। वह भाटों का प्रशस्ती गान भर रहा।"[119] रमणिका गुप्ता के कथन में भले ही पूर्ण सत्य प्रतिपादित न लगता हो किंतु उसमें भारतीय इतिहास की कमी जरूर नज़र आती है। रमणिका गुप्ता का आरोप जायज है। अंग्रेजों के जमाने से ही चलते आ रहे आदिवासी अस्मिता आंदोलन को भारत के इतिहास में स्थान न मिलना सचमुच आदिवासियों को नीचा दिखाने जैसा है। अंग्रेजों के खिलाफ यदि समूचा भारत उस समय खड़ा था तो आदिवासी भी अपनी ओर से न्यायिक लड़ाई लड़ रहा था फिर आदिवासी भारतीय स्वतंत्रता इतिहास में शामिल क्यों नहीं ? क्या उनके बलिदान और वीरता ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में कोई योगदान नहीं दिया ? क्या इनके विनाश और बलिदान पर भारत ने कुछ विकास ही नहीं किया ? इन प्रश्नों के जबाबों को यूँ ही टालना बहुत बड़ी भूल होगी। बिरसा का उलगुलान, झारखंड के जंगलों-पहाड़ों में अंग्रेजों के छक्के छुड़ानेवाला संथाल कोल विद्रोह जिसमें सिदो-कानू को फाँसी दी गई, 1838 में अंग्रेजों के खिलाफ लड़नेवाले महाराष्ट्र के राणोजी भंडारे को ठाणे में फाँसी दी गई यह सब इतिहास भले ही भारत के इतिहास के पन्नों पर लिखा नहीं गया हो पर आदिवासियों के दिलोदिमाग में इनका वीरता पूर्ण बलिदान हमेशा के लिए अमिट है। कहना यह है कि आदिवासियों के पहचान के संकट की चुनौती से उबारना हो

[118]आदिवासी साहित्य यात्रा, पृ.सं. 10.

[119]वही, पृ.सं. 07.

तो उनके वीरतापूर्वक बलिदान को इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए जो बिल्कुल सही मायने रखता है ।

भारत के इतिहास में आदिवासियों के बलिदान की जो उपेक्षा की गई जो कि कभी क्षम्य नहीं कही जाएगी । इतना ही नहीं बल्कि एक और चुनौतीआदिवासियों के धर्म के संदर्भ में भी देखी जा सकती है । आदिवासियों का धर्म प्रकृति पर आधारित धर्म है और प्रकृति तत्त्व सारी धरती के लिए संजीवनी तत्त्व के समान है । सांप्रदायिक विद्वेष, कट्टरता का यहाँ यत्किंचित भी स्थान नहीं है । यह धर्म एक ऐसा धर्म है जिसमें सभी मनुष्यों की धार्मिक आस्थाओं का आधार या कहिए केंद्रीय बिंदु बनने के संकेत विद्यमान हैं उन्हें जड़ से मिटा सकते हैं क्योंकि उनका रूख सांप्रदायिकता से गुजरकर अंततः आतंकवाद में बदलता है । आदिवासियों की अस्मिता पहचान से जुड़ा हुआ है आदिधरम का मुद्दा । जनगणना के दौरान आदिवासियों को हिंदू, ईसाई, मुसलमान या अन्य में डाल दिया जाता है । जबकि आदिवासी अपना धर्म तो आदिधर्म मानते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी अस्मिता और पहचान के सवाल को ही जबरदस्त धक्का या कहिए धोखा दिया जाता है । उनके विश्वासों, मानदंड़ों, रीति-नीतियों को ही उन्हीं की आँखों के सामने कुचला-मसला जाता है । उन्हें जबरन धर्मांतरित किया जाता है, उनके मौलिक धर्म का अपमान किया जाता है । विश्व के सामने जिस प्रकार ग्लोबल वार्मिंग और आतंकवाद जो सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं उसी प्रकार आदिवासियों के संदर्भ में उनके अस्तित्व एवं पहचान से संबंधित अति महत्त्वपूर्ण समस्या उनको बगैर पूछे, उनसे बिना कोई सम्मति लिए, उनके मनोभावों को बिना समझे उनका धर्मांतरण करना और उनके अधिकारों का हनन करना आदिवासियों के लिए अपने मानवाधिकारों की सुरक्षा एवं हित की सबसे बड़ी चुनौती है । इस चुनौती को यदि जल्दी ही मिटाया नहीं गया तो समस्त आदिवासी-समाज अपना पूरा अस्तित्व खो देगा । मिट जाएगा उसका सारा इतिहास और नामोनिशान जो पाँच हज़ार वर्षों से टूटते-बिखरते जैसे-तैसे सँभालते आया है ।

आदिवासी-समाज के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती विस्थापन की है । भारत में आदिवासी जन-समूहों का विस्थापन व पलायन वैसे सदियों पहले से ही किया गया है लेकिन जंगलों, संसाधनों व गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज हो गई है । इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ-साथ तथाकथित मुख्यधारा व पलायन का मुख्य कारण रहा है । हर देश में विकास नीति का लक्ष्य प्रायः यही होता है कि इसके तहत सबको विकास का समान अधिकार मिले लेकिन आज के समय में यह दिखाई देता है कि इस नीति से कुछ लोगों का विकास असंख्य लोगों की क़ीमत पर हुआ है, खासकर आदिवासियों की क़ीमत पर । राष्ट्रहित के नाम पर बहुसंख्य लोगों की जमीनें अधिग्रहण कर उन्हें न केवल विस्थापित किया गया बल्कि उनके संदर्भ में संविधान में प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का भी उल्लंघन किया गया । आवश्यकता थी कि विकास परियोजनाओं से प्रदेश अथवा क्षेत्र का आर्थिक संतुलन न बिगड़े और सभी संसाधनों का लाभ सभी वर्गों को प्राप्त हो, लेकिन ऐसा हुआ नहीं । सरकार की कुछ ऐसी ही हरकतों को रेखांकित करते हुए रमणिका गुप्ता अपने एक संपादकीय लेख में कहती है कि— “सरकार द्वारा 1998 में भूम-अधिग्रहण संशोधन विधेयक, पुनर्वास बिल, फारेस्ट बिल और बायो डायवर्सिटी बिल लाया गया । भूमि-अधिग्रहण संशोधन विधेयक तो इसलिए लाया गया ताकि शासक वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मनचाही जमीन जल्दी से जल्दी उपलब्ध करवा सके यानि विस्थापन की प्रक्रिया तेज की जा सके । छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट जैसे कानूनों के तहत आदिवासियों की जमीन लेने पर रोक थी । इसके प्रावधानों से मुक्ति पाने के लिए भी सरकार ने भूमि-अधिग्रहण अधिनियम में मनचाहे संशोधन किए, मसलन, 1894 के अधिनियम में जमीन अधिग्रहण के खिलाफ आपत्ति की अवधि 30 दिन थी, उसे घटाकर 21 दिन कर दिया गया । पहले भूमि-अधिग्रहण के नोटिस की अवधि 6 माह बीत जाने पर नए नोटिस की सीमा 3 वर्ष थी । उसे घटाकर 6 माह कर दिया । पहले डुगडुगी पिटवाकर गाँव में मुनादी कराई जाति थी ताकि सभी गाँव वालों को इसकी सूचना मिल जाए लेकिन संशोधित अधिनियम में केवल

अख़बारों और गजट से सूचित करने का प्रावधान कर दिया गया है। गजट या अख़बार गाँव के अधिकांश लोग नहीं पढ़ते।"[120]

इसी लेख में रमणिका गुप्ता सरकार की उदार नीति पर बुनियादी आरोप लगाकर कहती है कि सरकार अपनी उदार नीति के तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लाने की जल्दबाजी में जमींने लेने की हड़बड़ी में है, खासकर आदिवासियों की। क्योंकि देश के संसाधनों का बड़ा हिस्सा उन्हीं के क्षेत्रों में पड़ता है जहाँ आदिवासी बहुतायत में निवास करते हैं।

सरकार की ऐसी अनेक नीतियों के कारण कितने प्रतिशत आदिवासी समुदाय विस्थापन के चक्र में फँसे और किस प्रकार उनकी जमींने हड़प ली गई, वो भी आदिवासियों के पुनर्वास की कोई योजना न बनाए तथा उनके उदरनिर्वाह के लिए बिना रोजगार की व्यवस्था का पर्दापाश रमणिका गुप्ता इस प्रकार करती है—"सरकार की इस नीति के कारण 1951 और 1995 की अवधि में झारखंड में 50 हज़ार एकड़ भूमि पर 15 लाख लोग विस्थापित हुए हैं, जिनमें 41.27 प्रतिशत आदिवासी हैं। ये बात ध्यान देने योग्य है कि रक्षा परियोजनाओं में विस्थापित हुए आदिवासियों की संख्या 89.7 प्रतिशत है और मार्के की बात यह है कि इन परियोजनाओं में विस्थापितों को नौकरी देने का कोई प्रावधान नगण्य है। इसी तरह जल संसाधन परियोजनाओं के विस्थापन में आदिवासियों की संख्या 75.2 प्रतिशत है और इनमें भी जमीन के बदले नौकरी देने का प्रावधान नगण्य है। कोयला खदानों के लिए हज़ारों एकड़ जमीन पहले निजी मालिकों ने ली, फिर सरकार ने अधिग्रहण कर ली कोयला के लिए तो सरकार ने एक नया कानून भी बनाया— कोल बियरिंग एरिया एक्ट 1957, जिसके तहत वह अधिगृहित-भूमि को जबरदस्ती भी कब्जे में ले सकती है। इस कानून के चलते आदिवासी किसानों पर कहर बरपाया गया। उसके बाद खदानों का राष्ट्रीयकरण हुआ, तो पुरानी खदानों के साथ-साथ नई खाली पड़ी जमीन

[120]आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ.सं. 08.

भी कोयना कंपनी ने बिना नोटीस दिए, कब्जा करनी शुरू कर दी । निलहे अंग्रेजों की तरह उन्होंने ग्रामीण को बहला-फुसला कर, नौकरी के झूठे वायदे करके, बिना सरकारी नोटीस, जमींने कब्जे में ले ली और खनन कार्य शुरू कर दिया । वर्षों तक किसानों के नौकरी और परिवर्तन के मामले को नज़रअंदाज किया गया ।"[121]

आदिवासियों की विस्थापन व पलायन से मुक्ति देश की मुख्य चुनौती बनकर उभरी है । उनका विस्थापन स्वाधीनता के पहले से शुरू था, वे पहले भी खदेड़े जाते रहे हैं, आज भी खदेड़े जा रहे हैं । ये खदेड़ना सदियों से चालू है, बस केवल रूप या तरीका बदला है । वे उजड़ रहे हैं । जंगल, जल, जमीन इन तीन महत्त्वपूर्ण मूल अधिकारों से वंचित हो रहे हैं और विडंबना यह है कि ये सब हो रहा है उनके विकास या उनकी स्थिति में सुधार के नाम पर । आज जंगल में उनके प्रवेश पर रोक है । जरूरत है आदिवासियों के विकास की, न कि विस्थापन की । इसके लिए सरकार को अपनी नीतियों में बदलाव लाना चाहिए । कोई ठोस कदम उनके हितों की रक्षा के लिए उठाने चाहिए । उन्हें उनके अधिकारों के विस्थापन की चुनौती से मुकाबला करने का यह जायज उपाय या साधन नहीं कह सकते । कानूनी उपायों को सिर्फ़ कागजी घोड़ों पर सवार रखकर काम नहीं बनेगा बल्कि उनको व्यवहार में लाना जरूरी है । सरकार को ऐसी नीतियों से पेश आना नहीं चाहिए जिनके कारण आदिवासी अपनी ही जमीन के मालिक बनने की बजाए पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर और अब स्थायी रूप से कहीं बसने का ही ठिकाना न रहा । दरअसल आदिवासी जनता के हितों की सुरक्षा करना पहली शर्त है । ऐसी योजना बनानी चाहिए जिससे आदिवासी और गैर-आदिवासियों के हितों की रक्षा भी हो और कोई अपने अधिकारों से वंचित न हो ।

आदिवासी-समाज के समक्ष उपस्थित चुनौतियों की पृष्ठभूमि को गौर से देखें तो नज़र आएगा कि आदिवासियों के जंगल, जल, जमीन पर मतलब जहाँ वे बरसों से रहते आये हैं उनके

---

[121]वही, पृ.सं. 08-09.

मूल स्थान पर जब उन्हीं के विकास हेतु परियोजनाओं के प्रस्तावों को लेकर प्रवेश किया गया तब से चुनौतियों की कतार लगी हुई है । भूमंडलीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फर्जी हितों ने आदिवासियों का जीना मुश्किल कर रखा है । तभी से उनको उन्हीं की जगह से खदेड़ा गया । विकास के नाम पर विस्थापन किया गया । उनके जल, जंगल, जमीन पर कब्जा किया गया । परिणामस्वरूप उनकी जिंदगी से खिलवाड़ हुआ । अब उसी प्रदेश में उनका प्रवेश वर्जित है । आदिवासी तो बस इतना चाहते हैं कि उन्हें उनके प्रदेश में जीने दे उनके अनुसार । लेकिन उनका कहना कोई मानने के लिए तैयार ही नहीं ।बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से उन्हें अपनी ही जगह से हटा दिया गया । उसके बाद बड़े पैमाने पर जंगल काटे गये, पहाड़ों-जमीनों पर कंपनियाँ, मल्टी कमर्शियल प्लांट बसाये गए, नदियों के पानी को गंदा किया गया । उलटे जंगल के विनाश का झूठा आरोप आदिवासियों पर लगाए गये । आदिवासी जंगलों का विनाश कभी नहीं कर सकता । आदिवासियों की परंपरा में जंगलों को उजाड़ना नहीं बल्कि उनकी हिफाजत करना रहा है । वृक्षों को काटना पाप माना जाता रहा है जंगलों को उजाड़ने की परंपरा तो आर्यों से हुई । सबसे पहले कृषि योग्य भूमि तैयार करने के लिए आर्यों ने जंगलों को जलाना आरंभ कर दिया । हालांकि उस जमाने में इसकी आवश्यकता भी थी । इसके बाद अंग्रेजों के जमाने से तो जंगलों का दोहन, बड़े पैमाने पर कटाई हुई, जंगलों को नष्ट करके मोटी कमाई करनेवाले आदिवासी होते तो आदिवासी आज फटेहाल नंगे क्यों रहते ? इकोलोजिकल बेलेंस की अच्छी परख आदिवासी को ही है जो आज के तारिख की सबसे अहमियत बात कही जा सकती है । धरती पर फैली विभिन्न क्षेत्रों की हरियाली को नष्ट करके जिन्होंने कंकरिट के जंगल उगाये हैं उन्हीं के कारनामों से आज मानवजाति, प्राणी जगत, अन्य पेड़-पौधे, प्रकृति के कोप की आग में कभी न कभी जलनेवाले ही हैं ।

सवाल आदिवासियों के जिंदा रहने से है । आज जिंदा रहने के लिए उसे प्रस्थापित शक्तियों के खिलाफ शस्त्र लेकर खड़ा होना पड़ा है । कोई सत्ताधीन और कोई सत्ताविहीन पक्ष

आदिवासियों की लड़ाई नहीं लड़ रहा है। एक आदिवासी ही है जो आज तक बिना किसी की मदद लिए उसकी स्वयं की लड़ाई अपने ही बूते पर लड़ रहा है। उसके साथ अन्य कोई भी नहीं है। जो नक्सली उनके इलाकों, स्थानों में हैं सिर्फ़ उन्होंने ही आदिवासियों की समस्याओं, मुद्दों, सवालों, कठिनाइयों को सामने लाया है और वे ही आदिवासियों के ज्यादातर आस-पास हैं। लाचारी में कोई दूसरा मार्ग उनके पास न रहने से विवशता में आदिवासी उनके साथ हो गये। लेकिन राष्ट्रहित में नक्सलियों को खतरे की घंटी समझकर नक्सलियों को मारा जा रहा है जिसमें अधिकतर आदिवासियों की जान जा रही है। सरकार को पता है कि असली समस्या आदिवासियों की है न कि नक्सलियों की। सरकार सारी सच्चाई जानने के बावजूद नक्सलियों के दमन के नाम पर आदिवासियों का दमन कर रही है। राष्ट्र के विकास में खतरा बताकर नक्सलियों के साथ क्रूरता से आदिवासियों को भूना जा रहा है। नक्सलियों के साथ आदिवासी भी नक्सली कहे जाने लगे। आदिवासियों को नक्सलियों से दूर रखना एक और चुनौती है। यह चुनौती मिटने के बजाए उभर रही है। वीरभारत तलवार अपने लेख में लिखते हैं कि किस प्रकार नक्सलियों के बहाने से आदिवासियों को अपनी ही गाँवों से हटाया गया लेकिन नक्सलवाद का खतरा अभी राष्ट्र के विकास में बरकरार है। मसलन विस्थापन तो आदिवासियों का करना ही था सिर्फ़ तरीका बदला गया—“दंतेवाड़ा जिले में 264 स्कूल बंद कर दिये गये। आखिर मजबूर होकर 60 हजार आदिवासी 600 गाँवों को छोड़कर भाग गये वहाँ से। वो भाग के कहाँ गये कुछ पता नहीं। कहाँ भटक रहे हैं, भीख माँग रहे हैं, रिक्शा खींच रहे हैं, यह कोई नहीं जानता। 60 हजार आदिवासी 600 गाँवों से उजड गये सरकार की इन नीतियों के चलते ये नक्सलवाद का दमन है या आदिवासियों का दमन है ? और तो और, जब ये अपने गाँवों को छोड़कर चले गए तो इनके घरों को जला दिया गया, इनके गाँवो को जला दिया गया ताकि

नक्सलवादी वहाँ कभी पनाह न ले सकें । लेकिन क्या इन तरीकों से राष्ट्र-राज्य तथाकथित नक्सली समस्या को हल कर सकता है ?”[122]

देश में लगभग दस आदिम समूह हैं जिनकी जनसंख्या एक हजार से भी कम हैं । दरअसल आदिम आदिवासियों का सवाल बड़ी चुनौतियों में से एक है । कुछ आदिम आदिवासियों की जनसंख्या या तो स्थिर है या घटती जा रही है । आज भी बहुत सारे आदिवासी समूह अपने उदरनिर्वाह की तलाश में घूमते रहे हैं । ये घुमंतू आदिवासी जंगलों से आजीविका तलाशते हैं । वे देश के पश्चिमी घाटों के पर्वतों और जंगलों में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भटकते हैं । उनके बीच स्वास्थ्य, शिक्षा की पहुँच और कृषि आधारित जीवनयापन के प्रयास अब तक नहीं किए गए हैं । उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनकर कृषि, जीवन, शिक्षा व स्वास्थ्य की उपलब्धता पूरी सावधानी से करने की जरूरत है, अन्यथा एक दिन वे इस धरती पर से ही लुप्त हो जाएँगे । योजना आयोग ने आदिवासी की श्रेणी में उन आदिवासियों को शामिल किया है जो तीन स्तरों पर पिछड़े हैं । पहला, प्राक् कृषि प्रणाली (कृषि पूर्व का स्तर), दूसरा, स्थिर जनसंख्या और तीसरा, शिक्षा का निम्न स्तर । 21 वीं सदी में आदिवासी समुदायों को इन मापदंडों पर परखते हुए आगे बढ़ाना ही देश के सामने बड़ी चुनौती है ।

आदिवासी-समाज में शिक्षा का स्तर बहुत निचले पायदान पर है । साक्षरता आदिवासी-समाज के समक्ष चुनौती के रूप में है । रमणिका गुप्ता बताती हैं—“आम आदिवासियों के बीच साक्षरता का प्रतिशत 29 है । स्त्री साक्षरता का प्रतिशत 10 है । वहीं आदिवासी समूहों के बीच साक्षरता का प्रतिशत 10 से भी कम है । आदिवासी स्त्री के बीच 2-3 % साक्षरता है । साक्षरता

---

[122]इस्पातिका, आदिवसी विशेषांक, पृ.सं. 17-18.

की कम दर का कारण निरा घुमंतू होना, पहुँच से बाहर और प्रशासनिक तौर से विकास के प्रयास न होना है।"[123]

आदिवासी विकास एवं कल्याण हेतु अनेक योजनाओं, प्रोजेक्टों, विकास कार्यक्रमों, सुविधाओं को केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा मुहैया कराया जाता है। लेकिन इन सबका कुछ ही हिस्सा आदिवासी विकास योजना के तहत किया जाता है। शेष व्यय राशी का कोई हिसाब नहीं पाया जाता। यह विडंबना सरकारी अफसरों, कर्मचारियों के उदासीपन की उपज कही जाएगी। सरकार को इस रवैये से बचना होगा। यदि आदिवासी विकास पर सतर्क रहकर ध्यान नहीं दिया जाए तो उनकी चुनौतियाँ कम होने की बजाए बढ़ेगी ही। ऐसे ही सरकारी नीतियों पर टिप्पणी करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं—"आदिम जनजातियों के विकास संबंधी फंड की उपयोगिता संबंधी मुद्दों पर गौर करने की जरूरत है। जनसंख्या की गिरावट (कुछ आदिम जनजाति) की जाँच होनी चाहिए। आदिम जनजातियों को मातृत्व और बाल स्वास्थ्य की सुविधाओं को अनिवार्य तौर पर मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रवार या विशेष आदिम जनजाति आधारित प्रोजेक्ट्स या बहुक्षेत्रीय प्रोजेक्ट्स इनके विकास के लिए बनाए जाने चाहिए।"[124]

भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदिवासी-समाज के लिए ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनसे निजात पाना उनके लिए कठिन हो गया है। जब उन्हें अपने जल, जंगल, जमीन से बेदखल कर दिया गया तबसे ये चुनौतियाँ उन्हें पल-पल मार रही है। उनके विकास की योजनाएँ उन तक पहुँच नहीं पातीं। सरकार के ग्रीन हंट, जंगल-वन कायदे-कानून, वन्य जीव रक्षा कानून, शहरीकरण व औद्योगिकीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आतंकी होड़, सामान्य जनता की उदासीनता आदि ने

[123]आदिवासी कौन, पृ.सं. 63.

[124]वही, पृ.सं. 65.

आदिवासियों की चुनौतियों में बढ़ोत्तरी ही की है । स्वास्थ्य सेवाएँ, रोजगार, पुनर्वास, शिक्षा की सुविधाएँ आदिवासियों के क्षेत्र से कोसों दूर ही रहें । रोजगार के नाम पर आदिवासी महिलाएँ शहरों में आती हैं लेकिन गलत लोगों के चंगुल में फँस कर देह-व्यापार के जाल में जकड़ जाति हैं । आदिवासियों में निहित भिन्नता को आज पिछड़ेपन की संज्ञा दी जाति है । वास्तव में जब तक हम विभिन्न संस्कृतियों में निहित भिन्नता का आदर नहीं करेंगे तब तक हम उनके खिलाफ ही होंगे न । सबसे बड़ी चुनौती एक राष्ट्र बनाने में आती है क्योंकि हमारे राष्ट्र में विभिन्न संस्कृतियों में भिन्नताएँ मौजूद हैं । अगर भिन्नता को एकता नहीं समझेंगे तो उस भिन्नता को अनचाहे ही कुचल देंगे । दूसरों की विशिष्टता को कुचलकर, दूसरों की संस्कृतियों को कुचलकर हम राष्ट्र निर्माण नहीं कर सकते । आदिवासी भाषाओं का लुप्त होना मतलब उस भाषा को बोलनेवाले को खत्म हो जाना है । आज के समय में कई आदिवासी भाषा जाननेवाला, उसकी संस्कृति , उसके मिथक, इतिहास, परंपराएँ, उसकी कलाएँ, लोक-साहित्य, गाथाएँ सबकुछ खत्म हो रहा है । यह चुनौतियाँ भी आज कुछ कम नहीं है ।

संक्षेप में कहा जाए तो आदिवासी-समाज के समक्ष चुनौतियाँ असंख्य हैं । वे आज कल कम होने की बजाए लगातार बढ़ती जा रही हैं । सरकार को आदिवासी विकास एवं कल्याण हेतु जल्द से जल्द योजनाओं को उन तक पहुँचाना चाहिए जो अधिकारजन्य एवं अनिवार्य हैं । आदिवासियों को मुख्यधारा से जोड़कर उनके विकास के लिए हरसंभव कोशिश की जानी चाहिए । हमारे देश के नागरिक हैं ये आदिवासी इसे न भूलकर उनके अधिकार, सहुलियत उन्हें देने ही चाहिए न कि रियासतें देकर उनका शोषण किया जाए ।

तृतीय अध्याय

समकालीन मराठी उपन्यासों में चित्रित 'आदिवासी' जन-जीवन का विश्लेषण

द्वितीय अध्याय में समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन को हम देख चुके हैं। उसी तरह मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी जन-जीवन को हम देख सकते हैं। पिछले अध्याय में उनके रहन-सहन, आरोग्य, संस्कृति, लोकगीत, परंपराएँ, मिथ, अंधविश्वास, लोक-कथाएँ, लोक-गीत, आर्थिक-जीवन, आदिवासी-समाज की प्रकृति तथा आदिवासी-समाज के समक्ष चुनौतियाँ आदि को देख चुके है। इस अध्याय में हम समकालीन मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी जन-जीवन का विश्लेषण करेंगे।

शुरूआती दौर में मराठी उपन्यासों का विषय और आशय अलग-अलग था। लेकिन बाद में लिखे गए उपन्यासों में आदिवासी-जीवन के संदर्भ दिखाई देते हैं। महाराष्ट्र के कोंकण, विदर्भ, मराठवाडा, खानदेश तथा पश्चिम महाराष्ट्र में आदिवासियों की बस्तियाँ है। जंगल, वाड़ा, पाड़ी, ग्राम एवं शहर में आदिवासी समुदाय फैला हुआ है। महाराष्ट्र में जो प्रमुख जनजातियाँ हैं उसके बारे में थोड़ा-बहुत लिखा गया है और लिखा जा रहा है। ये प्रमुख जनजातियाँ लेखकों के केंद्र में है किंतु आज ऐसी अनेक जनजातियाँ हैं जिन पर अभी तक एक शब्द लिखा नहीं गया है। जैसेः— बैगा, बेरड, बावचा, भैना, भारिया, भात्रा, मेवासी, भुंजयी, बिरहोर, धाणका, धनवार, धोडिया, हलपति, गामित, कलंगा, खटोला, कोया, माना, मन्नेवार, हलबा, कमार, कांवर, खरिया, कोल, मन्नेरवारलु तथा कांध आदि। इन जनजातियों की स्थिति बहुत ही खराब हुई है। क्योंकि वे अब बढ़ते आधुनिकीकरण के दौर में ये अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, रूढ़ि-परंपराओं को बचा नहीं पा रहे हैं। उक्त सभी जनजातियाँ आधुनिकीकरण की शिकार हुई हैं। मुख्य सामाजिक धारा से कटे हुए इस समाज के बारे में नरेंद्र बोखारे की

मान्यता सही लगती है कि—“दुनिया के सारे आदिवासी-समाज के लोग मानव संस्कृति की मुख्यधारा से अलग हुए द्वीप जैसे हैं।”[125]

3.1. मराठी उपन्यासःस्वरूप एवं विकास

मराठी साहित्य में “उपन्यास (कादंबरी) साहित्य प्रकार का अंग्रेजी शासनकाल में जन्म हुआ था।”[126] 19 वीं सदी में मराठी साहित्य में उपन्यास की जड़ें मजबूत हो रही थी। अंग्रेजी में Novel या Fiction को मराठी में ‘कादंबरी’ (उपन्यास) कहते हैं। “बाणभट्ट की ‘कादंबरी’ नामक ग्रंथ से ही मराठी में इस साहित्य प्रकार को ‘कांदबरी’ नाम दिया गया।”[127] मराठी उपन्यासों के उद्भव और विकासके संबंध में मीनाक्षी मुखर्जी कहती हैं—“19 वीं शताब्दी में युरोपीय उपन्यास साहित्य प्रकार ने अपना स्पष्ट, स्वतंत्र व्यक्तिमत्त्व धारण किया था। उपन्यास रचना का पहले से ही महाकाव्य, अद्‌भूत कथा या वीरकथा में अस्तित्व था किंतु इन कथा प्रकारों के संरचना से निश्चित ही भिन्न था।”[128] मराठी उपन्यास की शुरूआत बाबा पद्मनजी लिखित ‘यमुना पर्यटन’ (1857) से होती है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में विधवा ब्राह्मण स्त्री की व्यथा को रेखांकित किया गया है। मराठी का पहला उपन्यास किसे माना जाए यह एक विवाद ही है। किंतु मराठी समीक्षक नरहर कुरुंदकर ने ‘यमुना पर्यटन’ को ही पहला उपन्यास माना है। नरहर कुरुंदकर के इस विवेचन पर डॉ. रवींद्र ठाकुर लिखते हैं—“कुरुंदकर के दावे को अगर सच माने, तो बाबा पदमनजी के समकालीन महात्मा फुले ने

[125]परामर्श, (त्रैमासिक), पृ.सं. 02

[126]प्रदक्षिणा, खंड पहिला, पृ.सं.22

[127]मराठी कादंबरीःस्त्रीयांचे योगदान, पृ.सं. 11

[128]तौलनिक साहित्याभ्यासः तत्त्वे आणि दिशा, पृ.सं.242

वेश्याव्यवसाय की ओर प्रवृत्त होनेवाली विधवा महिलाओं का चित्रण को झूठ मानना होगा और साथ ही उनके घर में पैंतीस ब्राह्मण विधवाओं का प्रसव किया था, इस सत्य को भी नकारना पड़ेगा ।"[129]

हिंदी साहित्य में जिस तरह आदिवासियों की स्थिति है उसी तरह मराठी साहित्य में भी है । मराठी साहित्य में उपन्यास लेखन की शुरूआत 1890 के आसपास हुआ है । लेकिन सौ-डेढ़ सौ साल तक आदिवासी कहीं नज़र नहीं आतें । सन् 1939 में र. वा. दिघे ने 'पाणकळा' नामक उपन्यास में सक-या भील को डाकुओं के नायक के रूप में दिखाया है । आदिवासियों के मूल विषय को नज़र अंदाज किया गया जैसे- गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा तथा अकाल आदि । इस संदर्भ में प्रादेशिक उपन्यास के अभ्यासक डॉ. भास्करराव शेळके लिखते हैं—"पाणकळा में मुख्य विषय से अधिक राया-रैना-पहाडजी के प्रणय को ही अधिक महत्त्व मिला है ।"[130]

मराठी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन को चित्रित करनेवाले उपन्यासों पर डॉ. विनायक तुमराम कहते हैं—"आदिवासी-जीवन के संदर्भ में मराठी उपन्यासों का विचार किया जाए तो 1885 से दूसरे महायुद्धपूर्व के कालखंड में निराशा ही नज़र आती है । ह.ना. आपटे, श्री.कृ. कोल्हटकर, वा.म. जोशी, ग.त्र्य.मांडखोलकर, ना.सी. फडके, खांडकर, राम जोशी तथा वरेरकर आदि के उपन्यासों में आदिवासी-जीवन चित्रण न के बराबर है..... परीणामतः आदिवासी-जीवन को उपेक्षित रखा गया । वे मराठी उपन्यास के विषय नहीं बन पाए।"[131]

---

[129]मराठी कादंबरीः समाजशास्त्रीय समीक्षा, पृ.सं.73

[130]मराठी कादंबरीतील प्रादेशिकता, पृ.सं.42

[131]आदिवासी साहित्य स्वरूप व समीक्षा, पृ.सं. 188

मराठी साहित्य में आदिवासी-जीवन चित्रन करनेवाले उपन्यास सन् 1940 के पश्चात् ही दिखाई देते हैं। सन् 1946 में श.रा. भिसे लिखित 'जंगलातील छाया' आदिवासी कातकरी जनजाति पर आधारीत है। सन् 1947 में वि. वा. हडप कृत 'गोदाराणी' उपन्यास ठाणे जिले के वारली जनजाति पर आधारित सत्यकथा है। उपन्यास में सेठ-साहूकार, जमींदार आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार करते हैं। इस अन्याय अत्याचार के खिलाफ वारली जनजाति के लोगों ने संघर्ष करके जमींदार, साहूकारों को मुँहतोड़ जवाब दिया है। गुलामगिरी की श्रृंखला को तोडने के लिए वारली समुदाय ने जो क्रांतिकारी पथ अपनाया उसका चित्रण प.त्रिं.सहस्त्रबुद्धे लिखित उपन्यास 'पहिली सलामी' (1948) में दिखाई देता है। दुर्गा भागवत कृत 'महानदीच्या तीरावर' (1953) उपन्यास में मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के गोंड जमाती का चित्रण किया गया है। गोंड जमाती में अनेक कालबाह्य परंपरा, रूढ़ि, जादूटोणा, तंत्र-मंत्र, भूतबाधा, चेटूक तथा मांत्रिक पर अटूट विश्वास इनके रगों-रगों में भरा हुआ है। इसी का वास्तविक चित्रण भागवत ने इस उपन्यास में किया है। ना.रा. शेंडे कृत 'तांबडा दगड' (1957) में आदिवासी-जीवन को रेखांकित किया गया है। प्रमुख रूप से अशिक्षा, अंधश्रद्धा को मिटाकर ज्ञानवंत, शिक्षित तथा विज्ञानवादी बनाने का प्रयास रहा है। शिक्षा के बगैर आदिवासियों का विकास असंभव है यही इस उपन्यास का मूलमंत्र है। सन् 1978 में गो.नि.दांडेकर द्वारा लिखित 'जैत रे जैत' उपन्यास में ठाकर जनजाति के जीवन गाथा को प्रस्तुत किया गया है। र.वा.दिघे ने 'सराई' (1980) नामक उपन्यास में कातकरी जनजाति के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया है। सौ. नलिनी सहस्त्रबुद्धे ने सन् 1975 में गोंड राणी दुर्गावती के जीवन को 'राणी दुर्गावती' नामक उपन्यास में दर्शाया है। शौर्यवीर तथा सौंदर्यकुमार गौंडवान- नरेश दलपतशहा की भार्या राणी दुर्गावती। दलपतशहा का अकालमृत्यु से राणी दुर्गावती अकेली हो जाति है और राजकाज की सभी

जिम्मेदारियाँ उस पर आ जाति है। ऊपर से दिल्लीसम्राट अकबर के कूटनीति का सामना करना पड़ता है। इस उपन्यास में वास्तविकता कम और कल्पना का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। 'न्यायदंड' (1982) दादा देशकर द्वारा लिखित उपन्यास है। यह उपन्यास सत्य घटना पर आधारित है। दादा देशकर चंद्रपुर के ही एक नामचीनवकील तथा लेखक हैं। अपने वकीली पेशे में उन्होंने अनेक विशेषतः आदिवासियों के पक्ष में मुकदमें, अदालत में लड़े हैं। इन्हीं मुकदमों में से एक आदिवासी खून के मुकदमें का वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में किया है। इस काल में ऐसे अनेक उपन्यास लिखें गए हैं किंतु उन सब का यहाँ कथा सारांश देना संभव नहीं है।

मराठी लेखकों ने आदिवासी-जीवन के प्रति आकर्षित होकर अपने उपन्यासों की विषयवस्तु बनायी है। उक्त परिस्थिति के बारे में सोचते हुए प्रो. सुनिल पखाले लिखते हैं— “1960 के बाद भौतिक प्रगति, आदिवासियों के प्रति सरकार की नीति, आदिवासियों के आर्थिक-लैंगिक शोषण, आदिवासी समूह में नैतिक लैंगिक स्वातंत्र्य, उनका निसर्गनिष्ठ जीवन, रूढ़ि-परंपरा, संस्कृति, आदिम कलाप्रकार, नक्सलवादी आंदोलनों में भागीदारी, आदिवासी विस्थापन, बदलते जीवनशैली में अस्तित्व का सवाल खड़ा हुआ, अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रह था। ऐसे अनेक सवालों को जो नज़दीकी से देख रहे थे वे सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में अपने उपन्यासों में आदिवासी-जीवन को चित्रित किया है।”[132]

देश की सबसे पुरानी प्रजाति (आदिवासी) है। ये समुदाय इतिहास की एक लंबी कड़ी से संबंधित है तथा इन आदिवासियों को कई नामों से जाना व पहचाना जाता है। प्रायः इन्हें आदिवासी के अलावा, वनवासी, गिरजन आदि नामों से भी पुकारते हैं। सभ्यता की दौड़ में सुसंस्कृत व्यवस्था सीमित साधनों की रही, खेती-बाड़ी करने का इतिहास कोई सदियों पुराना नहीं है। इनके गाँवों की बसावट की संरचना पर्वतीय जगहों में विस्तृत दिखाई देती है।

---

[132]आदिवासी साहित्य, स्वरूप व समस्या, पृ. सं.104

बुनियादी तौर पर आदिवासियों में भी कुछ अंतर दिखाई देता है। जैसे- पर्वतीय ढ़लाऊ स्थानों पर पाल में रहनेवाले आदिवासी और मैदानी भागों में मिश्रित जातियों के गाँव में रहनेवाले आदिवासी। पाल एक भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई हैं, ऐसे गाँव जो पहाड़ी क्षेत्र में हैं, तथा पथरीली एवं ढ़लाऊ क्षेत्र में छितरे हुए बसे हुए हैं, इन्हे पाल कहते हैं। यह इकाई कई गोत्रों के फलों से बनी होती है। पाल में रहनेवाले आदिवासियों की सांस्कृतिक रीति-रिवाज, खान-पान के व्यवहार, मैदानी आदिवासियों से अलग हैं। देश के पूरे आदिवासियों के रहने व बसावट की संरचना को ध्यान से देखें तो स्पष्ट होता है कि आदिवासियों का एक व्यापक हिस्सा इधर-उधर बस्तियों या गाँवों में निवास करता है।

समकालीन मराठी उपन्यासों में आदिवासी समुदाय में सहकारिता की भावना कई अवसरों पर देखने को मिलती है। जब कृषक आदिवासी को खेत की कटाई, बुआई करनी होती है तो वह श्रमदान के लिए गाँव के अन्य परिवारों को आमंत्रित करता है। आमंत्रित परिवार मिलकर खेती की कटाई, बुआई कर मेजमान द्वारा दिया एक समय का भोजन कर संतुष्ट अनुभव करते हैं। कई बार निर्धन स्थिति के परिवार में हल या बैल नहीं होने पर उसका खेत हांक कर उपज का हिस्सा परंपरानुसार बांट लेते हैं। यह व्यवस्था गाँव की एकता का बहुत बड़ा प्रतीक है। गाँव में मौत-मरण हो तो ढ़ोल-नगाड़े बजाकर गाँव को सूचित करते हैं। इस अवसर पर प्रत्येक हाशिया एक-एक लकड़ी और कुछ अनाज दुखी परिवार को देता है। 'टाहो' (आक्रोश) उपन्यास में ऐसे एकता के स्वर दिखाई देते हैं—"सदू चाचा हिम्मत से कहने लगा—चलाऊँगा, क्यों न चलाऊँ, यह मेरी ज़मीन है। तू कागज के टुकड़ों पर हमारा अँगूठा लगाकर हमें फँसाता है।... रमी भी जोर से कहने लगी— सदू चाचा चलाओ हल, इससे डरना मत...। ..., राघोबा, कोंडी, काश्या सब लोग प्यारेलाल पर टूट पड़ते हैं— प्यारेलाल सेठ तुमने हमें फँसाया है,

हमारी ज़मीन को लूट लिया है । तुम लुटेरे हो, हम भोले मनुष्य हैं, हम शेर का शिकार करनेवाले जंगली, किंतु तुम हमारा शिकार कर बैठे हो, अब हम आपके शिकार बन गये हैं ।"[133]

आरंभिक काल से ही आदिवासी नैसर्गिक वातावरण का प्रेमी रहा है— वृक्षों के प्रति जो सम्मान की भावना मिलती है, इसी कारण कई वृक्ष कटने से बच गये हैं । कठिन दिनों में ये वृक्षों को गिरवी रख अपना काम चलाते हैं । जंगलों में रहते हुए इनके पास जड़ी-बूटियों के उपयोग तथा विभिन्न प्रकार की व्याधियों के उपचार की गहरी जानकारी भी है । आदिमजाति की शैक्षणिक प्रबंध की अपनी जान पहचान पृथक्-सी है । उनके जीवन में वर्तमान के कारण विभिन्न परिवर्तन हो रहे हैं । फिर भी उनका परंपरागत पंचायत संगठन, सुदृढ़, सरल एवं कामयाब है ।

3.2. 'आदिवासी' जन-जीवन

जन-जीवन की आधारशिला उनकी परम्पराएँ हैं ।सह- अस्तित्व की संस्कृति का नियमन भी वहीं से होता है ।अनुशासन और मानवीय संबंध उस की छत्रछाया में पुष्पित–पल्लवित होते हैं । आदिवासी-समाज और संस्कृति के प्रति हमारे तथाकथित सुसंस्कृत समाज का रवैया क्या है? वो चाहे सैलानी–पत्रकार लेखक हों या समाजशास्त्री, आम तौर पर सबकी एक ही मिलीजुली कोशिश इस बात को खोज निकालने की रही है कि आदिवासियों में अद्भूत और विलक्षण क्या है? उनके जीवन और व्यवहार में आश्चर्य और तमाशे के लायक चीजों की तलाश और हमसे बेमेल और पराए पहलुओं को इकहरे तरीके से रोशन करने, लोगों का ध्यान आकर्षित करने और मनोरंजन के लिए ही लोग आदिवासी-समाज और सुसंस्कृति की ओर जाते रहे हैं। नतीजा हमारे सामने है । उनके यौन जीवन और रीति- रिवाजों के बारे में गुदगुदाने वाले

[133]टाहो, पृ.सं. 52

सनसनीखेज ब्योरे तो खूब मिलते हैं, पर उनके पारिवारिक जीवन की मानवीय व्यथा नहीं। उनके अलौकिक विश्वास, जादू–टोने और विलक्षण अनुष्ठानों का आँखों देखा हाल तो मिलता है, उनकी जिंदगी के हर मोड़ पर हाड़तोड़ संघर्ष की बहुरूपी और प्रमाणिक तस्वीर नहीं। वे आज भी आदमी की अलग नस्ल के रूप में अजूबा की तरह पेश किए जाते हैं। विचित्र वेशभूषा में आदिम और जंगली आदमी की मानिंद।किसी भी समाज का अतीत बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। तो भी शुद्ध अतीतजीवी होने की भी कोई तार्किकता नहीं हो सकती है। जनजातियों के संदर्भ में विचार करें तो यह सवाल और नुकीला हो जाता है कि क्या उन्हें आदिम मानव- सभ्यता के पुरात्तात्विक पुरावशेष के रूप में पुरातन जीवन-स्थिति में ही अलग-थलग छोड़ दिया जाए या विज्ञान और तकनीकी प्रगति की आधुनिक व्यवस्था में समायोजित होने का अवसर भी दिया जाए? सवाल तो यह भी उतना है महत्त्वपूर्ण है कि क्या उनके विकास के नाम उन्हें आधुनिक जटिल राज्य तंत्र और समाज–व्यवस्था के सामने टूटकर विखरने के लिए छोड़ दिया जाए या उन्हें नए परिवेश में सहज गतिशील होने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाए?

आज जब औद्योगिक विकास के लिए खनिज सम्पदा और जंगल-पहाड़ के इलाके राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्यतः उपयोगी माने जा रहे हैं और ये सारी सहूलियतें इन्हीं आदिवासी अंचलों में सुलभ हैं तो क्या क्षेत्रीय या राष्ट्रीय हितों के लिए 10 प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित कर उनकी अपनी जीवन-शैली, समाज- संरचना, सांस्कृतिक-मूल्यों में बलात् वंचित कर किया जाए? यानी आज यह सर्वोपरि आवश्यकता दिख रही है कि विकास की मौजूदा अवधारणा की एक बार फिर समीक्षा की जाए और नई आधुनिक व्यवस्था में जनजातिय समूहों के मानवीय अधिकारों की समुचित अभिरक्षा की जाए। तभी जनजातिय

जीवन, संस्कृति या उसकी परंपरा के विषय में हमारी चिंता को एक वास्तविक आधार सुलभ होगा।

आदिवासी जानवरों को अपने साहचर्य माननेवाले है, जितना मनुष्य से प्यार करते हैं उसी तरह वे जानवरों से प्रेम करते हैं लेकिन आदिवासियों को जानवरों से भी कम आँका जा रहा है । इस देश में मनुष्य से ज्यादा जानवर सुरक्षित है । क्योंकि जानवरों को सुरक्षित रखने के लिए सरकार कानून बना रही है । इसी चिंता को 'झेलझपाट' उपन्यास में व्यक्त किया है—"शेर से भी न डरनेवाला कोरकू अस्वल से डरने लगा । रात-बेरात हाथ में चिंगारी लेकर चलने लगा । जंगल का मतलब मनुष्य को भय और अस्वल..... सुअरों को अभय हुआ था । मनुष्यको मारना और शेर को बचाना ये कौनसा कानून है ? कुछ समझ नहीं आ रहा है।"[134] हर साल आदिवासी मुर्गों की लड़ाई लड़वाते थे । तो सरकार उस पर पाबंदी लगायी थी । इस पर 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में सवाल उठाया जाता है कि—"मुर्गा-मुर्गे को मारता है तो सरकार का, पुलिसवालों का क्या जाता है ? फिर सरकारी अफ़सर आदिवासियों को मारते है तो उस पर बंदी क्यों नहीं है ? हम आदिवासी मुर्गों से भी हलके हैं क्या ?"[135]

आज शहरीकरण के नाम पर जंगलों में निवास करते इन जनसमूहों को उनके जमीन से बेदखल करने की साजिश सरकार चला रही है । उन्हीं के सामने विज्ञान की बातें हो रही हैं । हजारों सालों से जिस जंगल में हम जी रहे हैं, उन्हीं के ऊपर जंगल के कानून ? जंगल सरकार का हो गया, जंगल की लकड़ी सरकार की हो गयी । 'टाहो' उपन्यास के आदिवासी कोर्ट के कठघरे में खड़े होकर अपनी व्यथा जज साहब को बताते हुए गिड़गिड़ाने लगे हैं—"साहब

---

[134]झेलझपाट, पृ.सं.13

[135]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं.15

!हज़ारों सालों से हम शिकार करते हुए जिंदा हैं। जंगल पर हमारा अधिकार है, जंगल को हमने बच्चों जैसा पाला है। अब तो जंगल काट दिया जा रहा है। वे गुनहगार हैं जो जंगल को काट रहे हैं। साहब! हम तो जंगल को बढ़ा रहे हैं। जंगल बड़ा होने के कारण यहाँ शिकार की कोई कमी नहीं है। अब इस खुले जंगल में कैसे शिकार मिलेगा? उस पर भी पाबंदी लगायी गयी। अब हम क्या खायें ? कैसे जिंदा रहें? साहब !"[136] इस संदर्भ में वरिष्ठ आदिवासी लेखक तथा आलोचक हरिराम मीणा लिखते हैं—"आदिवासियों की परंपरा में जंगलों को उजाड़ना नहीं, बल्कि उनकी हिफाजत करना रहा है। हरे वृक्षों को काटना पाप माना जाता है। औषध-वनस्पतियों के पौधों को समूल उखाड़ना प्रकृति की सत्ता के विरूद्ध अपराध माना गया है। अत्यावश्यक होने पर कोई हरी टहनी काटनी पड़े तो उससे पहले वृक्ष से क्षमा याचना करने की प्रथा आदिवासियों में रही है। ईमारती लकड़ी के नाम पर पत्तों और सूखी लकड़ियों का ही इस्तेमाल किया जाता है।"[137] सरकार की बढ़ते अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए नक्सलवादी आदिवासियों के गाँव में आने लगे और आदिवासियों को समझाने लगे कि—"तुम जिसे सरकार मानते हो, मंत्री- अधिकारी- नौकर- पुलिस वह सब इस जुल्म के पोषक है। यह चोर सरकार हमें नहीं चाहिए। हमें नयी राजव्यवस्था निर्माण करनी है। हमें अपना राज्य वापस लाना हैं।"[138] तो दूसरी ओर 'तंट्या' उपन्यास में आदिवासी अपनी मुक्त जीवन जीने के लिए बेख़बर है। इस दुनिया में वे किस लिए आए हैं यह उन्हें पता नहीं। केवल पटेल, पुलिस, पटवारी की सेवा कराना ही उसकाकाम है ? इस संदर्भ में उपन्यास का पात्र किसन्या कहने

[136]टाहो, पृ.सं. 25

[137]आदिवासी दुनिया, पृ.सं. 178

[138]हाकुमी, पृ.सं. 55

लगा—“कब ख़त्म होगा हमरा यह वनवन भटकना? एक तप से मैं जंगल-पहाड़ों में से भाग रहा हूँ । गरीब लोग मुझे सराहते इसलिए मुझे शक्ति मिलती है किंतु पाटील और साहूकार हरदम टोकते हैं । उनके नज़रों में भिल ही हूँ । उन्हें लगता है कि भिल्ल का काम चोरी करना, उनके खेतों की रखवाली करना । और वे जितना देंगे उतने में समाधान मानना ।”[139] इस उपन्यास के संदर्भ में रघुवीरसिंह राजपूत कहते हैं—“‘तंट्या’ उपन्यास कल्पना की उड़ान नहीं है, वह तो एक कभी भी नकारा नहीं जानेवाला ऐतिहासिक सत्य है ।”[140]

आदिवासी पारधी समाज अन्य जनजातियों की तरह जंगलों में न रहकर गाँव के बाहर कहीं भी अपनी पाल (तंबू की तरह) डालकर रहता हैं । और भीख माँगकर जिंदगी गुजारता है । लेकिन तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों ने उन पर चोरी की मोहर लगा दी है । शंभुनाथ वकील उपन्यास के नायक चित्र्या को बस डिपो में हमाली की नौकरी दिलाता है लेकिन वहाँ के लोग चित्र्या को देखते ही कहने लगते हैं—“अरे, जंगल का जानवर आया है , सावधानी से रहो ।”[141] उसके प्रति उत्तर में चित्र्या कहने लगा—“सच है ! मैं चोर हूँ ! हम पारधी चोर है ! लेकिन हमनेभूख मिटाने के लिए छोटी-छोटी चोरियाँ की हैं, किंतु हमें जंगल के जानवर समझकर उठाकर बाहर पटक दिए मुझे चोर कहनेवालो ने । कितना अन्याय किया है आप लोगों ने ।”[142] विश्वास और ईमानदार का उदाहरण हमें आदिवासियों में से लेना चाहिए । क्योंकि वे इतने ईमानदार होते हैं कि, किसी के लिए अपनी जान दे भी सकते हैं और धोखेबाजों की जान ले भी सकते हैं । इसलिए ‘तंट्या’ उपन्यास में भील जनजाति की विशेषताएँ बताते हुए रघुवीर कहता

---

[139]तंट्या, पृ.सं.486

[140]दै. सकाळ, पृ.सं.10

[141]पारधी, पृ.सं.68

[142]वही, पृ.सं.69

है—“ये भीलाटी जमात बहुत ही बेकार है । किसी पर एक बार विश्वास बना लिया तो उसे अपना सर काटकर देने के लिए राजी हो जाते हैं । अगर संशय आया तो आगे-पीछे न देखते हुए ककड़ी जैसा काटकर फेंक देते हैं ।”[143]

समाज से, गाँव से कोसों दूर जंगलों में रहनेवाले आदिवासियों में शिक्षा की हवा इनकी ओर कभी नहीं बही थी । वे अनपढ़, गँवार ही थे । राजनीति में तो इनकी सहभागिता न के बराबर थी । आदिवासी स्त्रियों को तो राजनीति ही पता नहीं थी । आदिवासी स्त्रियों को राजनीति में लाने के लिए महाराष्ट्र सरकार ने 1997 में ‘आदिवासी शासन कायदा’ जारी किया था । तब से कुछ ग्रामपंचायत की सिटें आदिवासी महिलाओं के लिए आरक्षित की गयी थीं । इसका अधिक फायदा आदिवासियों को नहीं हुआ था क्योंकि एक तो ये महिलाएँ अनपढ़ होने के कारण इन्हीं तथाकथित राजनैतिकों की वजह से आगे आ नहीं पाती हैं । प्रफुल्ला जब इन आदिवासी स्त्रियों को उनके अधिकारों के बारे में समझाने जाति है तो वहाँ का तहसीलदार कहने लगता है—“यह आदिवासी ऐसे ही अनपढ़ है मैडम, इनके लिए कुछ भी करो, कुछ मतलब का नहीं है । आप नये हो.... इसलिए आप इन्हें सुधारने का प्रयास कर रहे हो ।”[144] इसी तरह गोपाल गवारी कृत ‘कोळवाडा’उपन्यास में कोली जनजति के बारे में तथाकथित समाज की धारणा है कि ये आदिवासी केवल जंगल में शिकार करना, केकड़ा पकड़ना, किसी मराठों के यहाँ सालाना चाकरी करना । शिक्षा इनकी बस की बात नहीं हैं । सवर्ण समाज में कोली आदिवासियों के संदर्भ में एक मुहावरा प्रचलित है—“कोली को नहीं ज्ञान और चिटी को नहीं

---

[143]तंट्या, पृ.सं. 257

[144]ब्र, पृ.सं.106.

कान"[145] तो एक ओर माडिया जमाती के लोग ने विज्ञान से भी आगे निकल गए थे। परिस्थिति ने उन्हें अलग-अलग प्रयोग करने पर मजबूर कर दिया था। डॉ. कन्ना अपनी व्यथा सुनाता है— "नमक तो नहीं था। नमक की जगह हमारे लोगों ने लाल चिटियों का इस्तेमाल करते हैं।"[146]

सरकार, पुलिस, गार्ड, रेंजर, पटवारी आदि लोगों ने आदिवासियों पर इतना अन्याय किया कि, आदिवासियों के छोटे बच्चे भी इस आदिवासी जिंदगी से तंग आ गए थे। उपन्यास का नायक जुरू का लड़का लालसू कहने लगा—"हे भगवान मुझे अगले जनम में गधे का जन्म दिए तो चलेगा, लेकिन आदिवासी के रूप में जन्म मत देना।"[147]"फासेपारधी का जीवन क्या है ? उसका उन्हें ही पता नहीं था। वे जन्म लेते हैं इसलिए कैसे भी जीवन बिताते हैं। जैसे जंगल के जानवर जीते हैं, जैसे जंगल का कचरा तूफान में घूमता है उसी तरह इनका जीवन। इन घुमंतू पारधी मनुष्य को भगवान ने जन्म देकर गुनाह किया है। पारधी मनुष्य होकर भी उसे मनुष्य कहा नहीं जाता। इन्हें जानवर कहा जाए तो वे मनुष्य की तरह दिखाई देते हैं।"[148]

कितनी अजीब विडंबना है 'हाकुमी' उपन्यास का नायक डॉ. कन्ना मडावी जब अपने मित्रों के साथ अंग्रेजी फ़िल्म देखने जाता है तब उसके शहरी मित्र ने फिल्म में अर्धनग्न सिन देखकर विस्मित होते हुए अपने होठों को अंदर दबाते हैं। तब कन्ना सोचने लगता है, ये लोग अर्धनग्न सिनेमा देखकर ही इतना विस्मित हो रहे है। मैं तो नग्न दुनिया से आया हूँ। मेरी माता और बहनों का तो पूरा शरीर नग्न ही रहता है—"अगर मेरी नग्न दुनिया के बारे में पता चला तो, ये लोग क्या कहेंगे इसका वो अंदाज ले रहा था। और इस बारे में वह मजा ले रहा था

---

[145]कोळवाडा, पृ.सं. 29.

[146]हाकुमी, पृ.सं. 09.

[147]एका नक्षलबाद्याचा जन्म, पृ.सं. 150.

[148]पारधी, पृ.सं. 06.

।"[149] उपन्यास के शुरूआत में ही 'कन्ना' सोचने लगता है कि आज देश में अनेक संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ आदिवासियों के विकास के लिए होती हैं । जबकि इन लोगों को आदिवासियों की परिस्थिति, आदिवासियों का जीवन एक ए.सी.के कमरे में बैठकर कैसे पता चलता होगा? मैं आदिवासी होकर भी, उस समाज का हिस्सा होकर भी मैं कुछ सोच, लिख नहीं सकता — "आदिवासियों के अप्रगत प्रदेश पर आदिवासी विकास के लिए बहुत ही अच्छा भाषण देते हैं और बहुत ही अच्छा लिखते भी हैं । उनका सुनने को और पढ़ने को बहुत ही अच्छा लगता है किंतु मैं ख़ुद आदिवासी और अप्रगत प्रदेश का होने के बावजूद भी मुझे कुछ सुझता नहीं है । इस बात से मैं हैरान हूँ ।"[150]

'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास की शुरूआत ही एक बड़े ही मार्मिक प्रश्न को लेकर हुई है । उपन्यास के मनोगत में ही लेखक कहता है— "व्यक्ति के जन्म से पहले, नामकरण से पहले उसको जात, धर्म चिपका होता है । आगे चलकर वह उसी संस्कृति को अपनाता है जो जन्म से पहले चिपके हुए है ।.... नक्सलवाद तो एक विचारधारा है । नक्सलवादी कोई जन्म से नहीं होता बल्कि उसको उसकी परिस्थितियों ने नक्सलवादी बताया है । आदिवासी इलाकों या जंगलों में हर आदिवासी, नक्सलवादी है यह कहना मूर्खता है ।"[151]

3.2.1. व्यसनाधिनता

व्यसनाधिनता सदियों से जनजातियों की सामाजिक परंपराओं का एक भाग है । इस प्रकार के अव्यावसायिक समाज में मदिरा, तंबाकू को भी भूमि के अन्य उत्पादों के स्तर पर ही

---

[149]हाकुमी, पृ.सं. 09.

[150]वहीं, पृ.सं.02.

[151]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, (मनोगत)

रखा जाता है । ये जनजातियाँ अपने घरों में शराब बनाती हैं तथा इस प्रकार के अनेक पेयों में कोई विशेष नशा नहीं होता । शराब अधिकतर शक्तिवर्धक का कार्य करती है । अतः यह कहा जा सकता है कि मदिरापान इन जनजातियों के रीति-रिवाजों का एक अभिन्न अंग है जो इनकी सामाजिक परंपराओं में घुल-मिल गयी है । 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' में जब पुलिस अफ़सर उपन्यास का नायक जुरू के घर आता है तब उसकी पत्नी मैनी होशियारी करते हुए शराब पुरा फस्त कर देती है । अपने पति जुरू तथा लड़का गोलू को भी पीला देती है—"जुरू के हाथ से शराब की (थुंबा) बोतल मैनी खिंचती है और एक (द्रोण) ग्लास भरकर जुरू के हाथ में देती है। और बाकी शराब खुद घटाघट पी जाति है । बचाकुचा बच्चों को पीलाने के लिए रूपी और गोंगलू को आवाज़ देती है ।"[152]

आदिवासियों के बीच बाजरे, महुआ तथा चावल द्वारा अपने घरों में बनायी गयी शराब बहुत ही लोकप्रिय है । उत्सवों, विवाह, मृत्यु, दाह-संस्कार तथा अन्य समारोहों के समय जनजातियाँ शराब बनाती हैं तथा उनका सेवन करती हैं । कभी-कभी इच्छा होने पर भी जंगलों या घरों में इस प्रकार की शराब बनाकर मित्रों के साथ इसका सेवन किया जाता है । 'कोळवाडा' उपन्यास में सावळ्या और बाबू मुसलमान को हम देख सकते हैं—"यार बाब्या, आज मटन गले के नीचे उतरनेवाला नहीं है ।... तो... चल हम कोलीवाडे में चलते हैं और थोड़ी-थोड़ी लेकर आते हैं ।"[153]'टाहो' उपन्यास में सदूचाचा नशे में टूल होकर भी कहने लगता है—"नहीं— अभी कुछ नहीं चढ़ी है, और चढ़ने दे । हम लोग मिट्‌टी और पत्थर से खेलते हुए, पेड़ों की छाया में बड़े हुए हैं । प्रकृति ही हमारी देवता है, उसकी हम पूजा करते हैं । सदूचाचा अपनी

---

[152]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.स.68.

[153]कोळवाडा, पृ.सं.17.

लड़की को शराब के नशे में प्रकृति का तत्त्वज्ञान समझाता ।"[154] कुछ समाजकंटक लोग ने तो आदिवासियों को शराब पीलाकर उनके बहू-बेटियों का मजा चखना चाहते हैं । 'झेलझपाट' में इसी तरह का चित्रण हमें देखने को मिलता है—"पहाड़ी देवताओं को शराब की प्रसाद चढ़ाने के बाद बकरे की बलि तो चाहिए ही.... कासम फुलय के हाथ में ग्लास देने के बहाने उसके हाथ को स्पर्श करता है ।"[155]

आदिवासियों ने शराब को अपनी थकान को दूर करने की एक औषध माना है । उनके पूर्वजों से ही यह प्रथा चली आ रही है । आदिवासी स्त्री-पुरुष, बच्चे-बुड्डे, युवक-युवतियाँ सारे लोग शराब पीती हैं । 'ब्र' उपन्यास में कातकरी समाज के बारे में कहा गया है—"कातकरी समाज की स्त्रियों में शराब पीने की संख्या अधिक हैं । दिनभर के काम की थकान से महिलाएँ शराब पीकर सो जाति हैं । कई बार तो उन्हें खाने तक का सूझ न रहती । बुड्डे ज्यादा पीते हैं, युवक-युवतियाँ भी पीते हैं । काम पर जाने के लिए पीना पड़ता है यह उनका पहला बहाना होता है । काम करते हुए बीच-बीच में तलब लगी तो भी पीते हैं ।"[156]

शराब विक्रय की वर्तमान प्रणाली आदिवासियों के आर्थिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हुई है । सरकार द्वारा लाईसेन्स प्राप्त ठेकेदारों द्वारा बाहरी मदिरा के विक्रय ने आदिवासियों को बहुत सी समस्याओं के जंजाल में फँसा दिया है । मदिरा विक्रय एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से असामाजिक तत्त्व इन भोले-भाले आदिवासी समुदायों के बीच पहुँचकर अवांछनीय तथा आपत्तिजनक कार्य करते हैं । व्यसनाधिनता न केवल एक सामाजिक बुराई है बल्कि इसके सेवन ने जनजातिय समुदाय के लोगों को साहूकारों एवं महाजनों का

---

[154]टाहो, पृ.सं.13.

[155]झेलझपाट, पृ.सं. 23.

[156]ब्र, पृ.सं. 80.

कर्ज़दार भी बन दिया है । बाहरी शराब की लत जनजातियों की विभिन्न समस्याओं तथा दुर्दशा का मूल कारण है । अपनी इन समस्याओं से छुटकारा पाने तथा साहूकारों के चंगुल से बाहर निकल आने के लिए इन आदिवासियों को शराब से दूर रखना आवश्यक है । बाहरी शराब के विक्रय तथा उपभोग की बुराईंयों से आदिवासियों द्वारा स्वयं बनाई गई शराब सदियों से इनके सामाजिक और सांस्कृतिक-जीवन का विभिन्न अंग रही है । इनकी धार्मिक एवं पारंपारिक जरूरतों की पूर्ति के साथ-साथ इस शराब से इन्हें स्वास्थ्य लाभ भी होता है तथा उनके कठिन परिश्रमी जीवन में कुछ आनंद की अनुभूति भी होती है । शिक्षा के प्रचार-प्रसार आदि ने आदिवासियों के बीच मदिरापान सेवन के विरोध में आंदोलन भी हुए हैं । झारखंड के इतिहास में ताना भगत आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता मदिरापान का निषेध भी था ।

3.2.2. अंधश्रद्धा

आदिवासी-समाज अनेक क्रियाओं और घटनाओं के कारणों को नहीं जान पाता था। वह अज्ञानतावश समझता था कि इनके पीछे कोई अदृश्य शक्ति है। वर्षा, बिजली, रोग, भूकंप, वृक्षपात, विपत्ति आदि अज्ञात तथा अज्ञेय देव, भूत, प्रेत और पिशाचों के प्रकोप के परिणाम माने जाते थे। ज्ञान का प्रकाश हो जाने पर भी ऐसे विचार विलीन नहीं हुए, प्रत्युत् ये अंधविश्वास माने जाने लगे। आदिकाल में मनुष्य का क्रिया क्षेत्र संकुचित था इसलिए अंधविश्वासों की संख्या भी अल्प थी। ज्यों-ज्यों मनुष्य की क्रियाओं का विस्तार हुआ त्यों-त्यों अंधविश्वासों का जाल भी फैलता गया और इनके अनेक भेद-प्रभेद हो गए। अंधविश्वास सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। विज्ञान के प्रकाश में भी ये छिपे रहते हैं। क्योंकि विज्ञान का प्रकाश इन तक पहुँचने ही नहीं दिया । आज कल जो विज्ञान और विकास का मॉडल दिखा रहे हैं वह केवल विस्थापन करने के लिए ।

'झेलझपाट' उपन्यास में मालय देशीदारू के नशे में बेसुध होती है। तब गाँव के सब लोग अवाक् हो जाते हैं और अलग-अलग प्रतिक्रिया देने लगते हैं। कोई कहता भूमका को बुलाओ, इसे भूत पकड़ा है। भूमका को बुलाया जाता है। भूमका कहने लगता—"इसे भूत पकड़ा है। भूत से मुक्ति मिलने के लिए मंत्रों का जाप करने लगा। चावल मुट्ठी में लेकर मालय के मुँह पर मारने लगा। शराब का नशा उतरने के बाद मालय को देर रात होश आया। तब जाकर सबको लगा अब भूत भाग गया है। इसका समाधान हुआ।"[157]

मराठी उपन्यासों में यह बात प्रमुख रूप से नज़र आती है कि आदिवासी-समाज के युवक या युवती पढ़-लिखकर इन अंधविश्वासों को नकारते हैं तो ये लोग यही कहते हैं कि, क्या चार पन्ने पढ़ लिया, हमें ज्ञान बतलाने लगा। डॉ. कन्ना जब इन बातों को विरोध करता है तब लोग उसे कहते हैं—"कन्ना तुम इन बातों में ध्यान मत देना। यह भूमया का काम है उसे ही करने दे।"[158] डॉ. कन्ना इनकी मानसिकता को समझता था इसलिए वह अपने आपको संभालते हुए वह डोंबी से दबे आवाज़ में पूछता है—"बाबा (डोंबी), पेरमा (भगवान) क्या माँग रहा है। कन्ना, पेरमा बारह साल के बच्चे को माँग रहा है।"[159] उस बच्चे को काटकर उसका खून खेत में छिड़ने से फसल अच्छी होती है ऐसी धारणा इन आदिवासियों की है। इसी तहर 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। जुरू अपने लालसू (बेटा) को पाठशाला भेजने को नकार देती है। क्योंकि धान काटने के सीज़न में छोटे बच्चों की बलि चढ़ाने की प्रथा आज भी है। कई लोग तो अपने बच्चे को पैसों के ख़ातिर भेज देते हैं। इसलिए जुरू

---

[157]झेलझपाट, पृ.सं. 22.

[158]हाकुमी, पृ.सं. 83.

[159]वही, पृ.सं.83.

मैनी से कहने लगता है— “लालसू को पाठशाला भेजना है तो भेज दे, किंतु उधर उसे पकड़कर काट दिया तो मुझे कुछ नहीं कहना ।”[160]

आदिवासी-समाज में अंधश्रद्धा के अलग-अलग किस्से सुनने को मिलते हैं। ‘ब्र’ उपन्यास में अपनी ही पत्नी का कुल्हाड़ी से हाथ तोड़ देता है। क्योंकि—“अपनी पत्नी भूत (भूताली) है कहता था। उसका जवान लड़का मर गया था। तो उसकी पत्नी ही उसके लड़के को करणी (जादू) करके मार दी ऐसा उसका मानना है ।”[161] कोलीवाडा में भूत-पिशाच, जादू पर बहुत विश्वास था। अगर किसी को बुख़ार आता है तो भी वह आपसुंदे बाबा (भगत) को बुलाते हैं। यहाँ तक की इनके जानवर भी बीमार होते हैं, तो भी ये भगत को ही बुलाएँगे। इन भूत-पिशाच के चक्कर में कई बार आपस में झगड़ लेते हैं। खंड्या गुस्से में कहने लगा—“हाँ, हाँ, बच्चे को गाँव की ही भूताली ने पकड़ा होगा। भगत की ओर से उसका नाम पता चलने दे, उसके टुकड़े ही कर दूँगा ।”[162]

‘टाहो’ उपन्यास में अंधश्रद्धा का बोल बाला था। भिवसेन के पास महाद्या अपना घर कर बैठा था। महाद्या के शरीर में भगवान आता है। ऐसी अफ़वाह सारे गाँव में फैल गयी थी। बच्चों को बुख़ार आने पर बाहर की कुछ पीड़ा समझकर इस ढोंगी महाद्या के पास जाते थे। महाद्या डुलने लगता और मुँह में जो आये सो बातें बकने लगता। इसका विरोध उपन्यास का नायक भीम्या जमकर करता है। और सभी आदिवासी-समाज को समझाने में सफल रहता है। भीम्या के शिक्षा, ज्ञान का उपयोग आदिवासी-समाज को होता है। भीम्या जैसा ही सारे

---

[160]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.स.06.

[161]ब्र, पृ.सं. 106.

[162]कोळवाडा, पृ.सं. 30.

आदिवासी उपन्यासों के नायकों को करना चाहिए। भीम्या गाँववासियों को समझाने लगा— "यह सब बंद करो। आप लोग कितने दिन इन सामाजिक कुरीतियों में विश्वास रखोगे? इस लड़के को बुखार आया है, इसलिए इसकी आँखें लाल हुई हैं। लड़के को बुखार ज्यादा है, चलो उसे शहर के किसी बड़े डॉक्टर के पास ले चलते हैं। आपके इस तरह के धूपबत्ती से बच्चों की जिंदगी बरबाद हो जायेगी। आप लोगों के दिमाग में भूत-पिशच की कल्पना भर दी गयी है। तुम इनकी कल्पना के अधीन हो गये हो। मंत्र-तंत्र, जाप कुछ नहीं होता है, यह सब फालतू बातें हैं।"[163]

बाबा भांड कृत 'तंट्या' उपन्यास में तंट्या को भगवान का रूप देकर भील समाज में अंधश्रद्धा फैला रहा था, लोगों को फँसा रहा था। डर के मारे लोग भक्तिभावना से हाथ जोड़कर माथा जमीन पर टेक रहे थे। भगत मंत्र कहने लगा—

"बांस ख S कामठो, बांस ख S तीर S
खांद S राखेज, तंट्या वीर S
ले थारी कुकडी, ले थारी धार S
भग S जा भग S जा सात समुंदर पार S
मान S मान S तंट्या देवत की आण S
नदू त S लग S जा छाती म S बाण"[164]

इसी तरह कविता महाजन कृत 'ब्र' उपन्यास में जब ठाकर जनजाति की जयाबाई गाँव में पटेल के विरोध में चुनाव लड़ने का निर्णय लेती है तब पटेल उसके पति को शराब

---

[163]टाहो, पृ.सं. 60.

[164]तंट्या, पृ.सं. 19.

पीलाकर उनके बीच झगड़ा लगाता है । उसका पति कुल्हाडी से उसका हाथ काट देता है । तथा भगत के माध्यम से उसे भूतनी रूप देता है—“लोग इकट्ठा होकर भगत के पास जाते हैं । भगत ने बड़ी थाली में ज्वार के दाणे डालकर देखता तो कहता गाँव में भूतनी है । सभी औरतों को बुलाया तथा एक को गोमूत्र पीने को कहा । जयाबाई को पीते उलटी आ गयी तब भगत कहने लगा गाँव की भूतनी यही है ।”[165]

3.3. ‘आदिवासी’ सांस्कृतिक-जीवन

सांस्कृतिक-जीवन पर विचार करने से पहले यह परिभाषित कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति क्या है?जनजातिय संस्कृति और लोक-संस्कृति में भी कोई अंतर है या नहीं? विविध प्रकार की जीवन-शैलियों और सामाजिक परंपराओं में संस्कृति के जो स्थानिक और देशिक रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनके वर्गीकरण और एकीकरण के क्या आधार हो सकते हैं। संस्कृति की जो व्याख्या मानवशास्त्री देते हैं वह स्वयं संस्कृतिकर्मियों के लिए कितना अर्थपूर्ण है?

संस्कृति का सीधा- सादा अर्थ है परिष्कार या संस्कार। वस्तुतः परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. राम खेलावन पाण्डेय ने लिखा है कि—“संस्कृति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और अंग्रजी कल्चर का समनार्थसूचक। इसके संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी सीमाएँ तक ओर धर्म का स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर साहित्य को अपने बाहूपाश में आबद्ध करती हैं। संस्कृति भौतिक साधनों के संचयन के साथ ही अध्यात्मिकता की गरिमा से मंडित होती है। वेश- भूषा, परंपरा, पूजा-

[165]व्र, पृ.सं. 107.

विधान और सामाजिक रीति–विधान और सामाजिक रीति- नीति की विवेचना भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। .... प्रकृति की सीमाओं पर मनुष्य ने जो विजय चाही, उसका भौतिक स्वरूप सभ्यता, और आत्मिक, अध्यात्मिक अथवा मानसिक स्वरूप संस्कृति है। सभ्यता बाह्य—प्रकृति पर हमारी विजय का गर्वध्वज है और संस्कृति अंत: प्रकृति पर विजय-प्राप्ति की सिद्धि।"[166]

संस्कृति की ऐसी परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने उपलब्ध कराई हैं जिनमें उसके इस व उस पक्ष या कई पक्षों का समन्वय स्थापित करने की चेष्टाएँ झलकती हैं। किन्तु ऐसी परिभाषाएँ संस्कृति का खंडित अध्ययन करती हैं जबकि पिछली दो शताब्दियों में ज्ञान के विविध क्षेत्रों में कई नई परिभाषाएँ विकसित हुई हैं, जिनमें एक यह भी है कि मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। संस्कृति की व्याख्या न तो केवल अनुवांशिक जैविकता के आधार पर की जा सकती है, न सिर्फ सामाजिकता के आधार पर। इसी तरह उसे सभ्यता के अलग- अलग खानों में बाँटकर भी नहीं समझा जा सकता।

आदिवासियों में सामूहिक संस्कृति का भी दर्शन होता है । यह वह समाज है जो अपनी अलग सांस्कृतिक परंपराओं को सामूहिक रूप में वहन करता है । इस संदर्भ में प्रसिद्ध आदिवासी लेखक वाहरू सोनवने की मान्यता दृष्टव्य है—"आदिवासी संस्कृति को बहार आती है सामूहिक रूप में और भोगवादी संस्कृति व्यक्तिवाद पर निर्भर हुआ करती है ।"[167]

मराठी लोकसाहित्य एवं संस्कृति के आलोचक डॉ. सरोजिनी बाबर आदिवासी लोकसाहित्य एवं संस्कृति के बारे में अपनी किताब 'आदिवासींचे सण-उत्सव' के प्रस्तावना में

---

[166]हिंदी साहित्य कोश, पृ.सं. 611.

[167]परामर्श, (त्रैमासिक), पृ.सं. 29.

लिखती है—"आदिवासी दुनिया यह अद्भूत के पंख लगाया हुआ गंधर्वकन्या है । वह जितनी सुंदर है उतना ही मनोहर भी है ।"[168]

वस्तुत: संस्कृति विषयक, चिंतन का क्षेत्र विभिन्न मतवादों से भरापूरा क्षेत्र है। मतान्तरों की परीक्षा का स्वतंत्र अध्ययन इस पुस्तक की सीमाओं में अभीष्ट नहीं है। इस संबंध में डॉ. दिनेश्वर प्रसाद की पुस्तक 'लोक साहित्य' में इस विषय के विस्तार में जाकर विवेचन सुलभ और दृष्टव्य है।निष्पत्ति के रूप में यह कहा जा सकता है कि— "विभिन्न संस्कृतियों की तुलनात्मक सांख्यिकी यह बतलाती है कि मानव जातियाँ एक ही वास्तविकता का मूल्यांकन अलग – अलग रूपों में करती हैं। सुन्दर और कुरूप, शिव और अशिव, सार्थक और निरर्थक आदि धारणाओं और मूल्यों के संबंध में उनमें पर्याप्त मतभेद हैं। ..... भारतीय दस दिशाओं की कल्पना करते हुए। यूरोप में लाल रंग शोक का प्रतीक है' किन्तु प्लेन्स इंडियनों में विजय और उल्लास का। चीन में श्वेत रंग शोक का प्रतीक है जबकि चेरोकी जाति में दक्षिण दिशा का। भिन्नता की यह स्थिति कला संबंधी धारणाओं से लेकर में राग और लय दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन बहुत-सीअफ़्रीकी संस्कृति एकापत्नित्व को आदर्श मानती है और इस्लामी संस्कृति बहुपत्नित्व को, जबकि भारत की कुछ जातियों में बहुपत्नित्व आदर्श भी है व्यवहार भी। इस तरह प्रतिमानों की सार्थकता स्थानीय या क्षेत्रीय होती है और उसके संबंध में हर संस्कृति के अपने तर्क होते हैं जिन्हें वह अकाट्य मानती है।"[169]

संस्कृति के अध्येताओं के लिए सांस्कृतिक सापेक्षतावाद के अनेक अभिप्राय हो जाते हैं। इसी तर्क के आधार पर यह माना जाता है कि न तो किसी संस्कृति को श्रेष्ठ कहा जा सकता है

---

[168]आदिवासींचे सण-उत्सव, पृ.सं.03.

[169]लोकसाहित्य और संस्कृति, पृ.सं. 108.

और न हीन, न तो महत्त्वपूर्ण और न महत्त्वरहित। जब हम कुछ जातियों को आदिम कहते हैं तो संभवत: हमारा अभिप्राय यही होता है कि वे हमारे समकालीन जीवन की पूर्ववर्ती स्थिति के उदाहरण हैं। लेकिन यह धारणा भी तथ्याधारित नहीं ठहरती। वस्तुत: विश्व के मानचित्र पर अलग-अलग भौगोलिक परिवेश में इतनी किस्म की संस्कृतियाँ विद्यमान हैं, हर समाज की संस्कृति उसका सांचा है और सामान्य संस्कृति के लक्षणों के निर्धारण में किसी भी एक संस्कृति का सांचा सम्पूर्ण नहीं हो पाता।

आदिवासियों की संस्कृति तो उच्च श्रेणी की है किंतु अपने ही संस्कृति पर गुस्सा आता है । क्योंकि आदिवासियों के पूर्वजों के उनके हित के लिए इस संस्कृति का निर्माण किया था । लेकिन जब से ये तथाकथिक समाज उनके संपर्क में आया है । तब उनके सामने अपने स्त्रियों के अंग प्रदर्शन पर 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास के नायक जुरू को गुस्सा आता है—"मुझे माडिया रीति-रिवाज से चिढ़ आती है । माडिया रिवाज के अनुसार शादी के बाद औरत अपने छाती (स्तनों) को कपड़ों में नहीं ढंक सकती थी ।"[170]

आदिवासियों की कितनी **आदर्श संस्कृति** है कि जो जंगल में कोई एक पेड़ भी तोड़ता है तो वह घाव आदिवासियों के ह्रदय पर होता है । उस टूटे पेड़ के पास जाकर वे रो पड़ते हैं । अगर उनके झोपड़ी के लिए लकड़ी की जरूरत हो तो सारा परिवार उस पेड़ के पास जाकर पहले माफी माँगता है, पश्चाताप करते हैं और कहता है कि—"हे ! निःसर्ग देवता आपकी जिंदगी बर्बाद करने का हमें कुछ भी अधिकार नहीं है । आप ही की खातिर हमें दो जून की रोटी मिलती है, हम कितने पापी हैं जो आपको तोड़ रहे हैं । हम मनुष्य स्वार्थी हैं । तुम से ही हमें छाया मिलती है, जीवन सुखमय होता है, आप ही की वजह से बारिश होती है, फिर भी हम आपको तोड़ रहे हैं । हमें कैसे माफ करोगे वृक्ष देवता? हे वृक्ष देवता ! हम आपको तोड़ रहे हैं,

[170]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 08.

लेकिन हम आपसे एक वादा करते हैं कि आपको काटने से पहले एक पेड़ लगायेंगे, उसे बड़ा करेंगे, यह हमारा वादा है।"[171]

इसी तरह की आदर्श संस्कृति हमें 'एका नक्षलवादयाचा जन्म' में भी देखने को मिलती है। उपन्यास का नायक जुरू सोच रहा था कि, अगर उसकी पत्नी मैनी का देहांत हो गया तो उसका बेटा गुगलू किसका दूध पिएगा? गाय-बकरी का? नहीं क्योंकि—"हम अपने माता का दूध किसी और को तो देते नहीं है फिर गाय-बकरी का दूध निकालने का या पीने का हक हमें नहीं है। यहीं परंपरा हमारे पूर्वजों से चली आ रही है। उनका दूध निकालना पाप है।"[172]

वर्तमान समय में हम देख सकते हैं किलोग किसीअनजान व्यक्ति को खाने की बात तो दूर पानी तक नहीं पिलाते हैं। किंतु आदिवासी-समाज में इसके विरुद्ध दिखाई देता है। आदर्श संस्कृति का ब्यौरा 'हाकुमी' उपन्यास में मिलता है। "घर पर आए हुए व्यक्ति (महमान) को भूखा भेज देना पाप है। और खाने का प्लेट सामने रखने के बाद भी उसे ठुकराकर जाना महापाप है।"[173]

3.3.1. लोक-कथाएँ

लोककथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोककथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण है। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं। लोकगीतों की भाँति लोककथाएँ भी

---

[171]टाहो, पृ.सं. 14-15.

[172]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 04.

[173]हाकुमी, पृ.सं. 23.

हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त हैं। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाति है, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है।जनजातिय समाज में प्रचलित कथाएँ, लोक-कथाएँ कहलाती हैं । पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती हैं । वैसे देखा जाए तो लोक-कथा और आदिवासी का शुरूआती से ही संबंध रहा है । आदिवासियों के लोक-कथाओं में से ही उनकी प्राचीनता, सांस्कृतिक हालचाल का प्रतिबिंब दिखाई देता है । उनका गत जीवन, व्यवहार, आचारधर्म, नीतिशास्त्र, कुलगोत्र, जीवनविषयक दृष्टिकोण, भाव-भावना, आशा-आकांक्षा, प्राणी कथाएँ, निसर्गनिर्मित संबंधी कथाएँ (चंद्र, सूर्य, धरती, वृक्ष, धान, खेती), दैवत्कथा, शौर्यकथा, अद्भूतकथा आदि बिंदुओंका दर्शन उनके लोक-कथाओं में से ही प्राप्त होते हैं । आदिवासियों के लोक-कथाएँ जैसे रोचक एवं भावपूर्ण होती है उसी तरह गंभीर एवं बोधपरक भी होती है ।

लोक-कथाओं की हजारों वर्षों की परंपरा रही है । इस लोक-साहित्य को समृद्ध करने में— अलेक्झांडर क्रॉप, पास्कर क्रूक, मेरी पॉक्टर, लीच मारिया, सर रिचर्ड टेंपल, डॉ. वेरिअर एल्विन, डॉ. दिनेशचंद्र सेन, डॉ. सत्येंद्र, दुर्गा भागवत तथा प्रभाकर मांडे आदि विचारवंतों के नाम प्रमुखता से लिया जाता है । लोक-कथा के बारे में डॉ. विनायक तुमराम लिखते हैं— "आदिवासी लोक-कथाएँ, आदिवासी लोक-साहित्य के महानगर के एक भव्य गगनचुंबी एवं चित्तवेधक मीनार है ।आदिवासियों के लोकसाहित्य रूपी राजवाड़ा में ये जो नक्षीदार स्तंभ ही लोककथा, लोकगीत, लोककथागीत, वाक्प्रचार, मुहावरे, पहेलियाँ जो है वह आदिवासी लोकसाहित्य के अंतःप्रवाह है । उनमें एक सशक्त एवं प्रभावी अंतःप्रवाह आदिवासी लोक-कथा ही है ।"[174]आरंभिक लोक कथाओं एवं लोक गीतों की जानकारी हमें भारतीय वैदिक साहित्य में उपलब्ध होती है जो कि मौखिक साहित्यिक परंपरा के प्राचीनतम और प्रस्थान बिंदु माना जाता है । "सन् 1846 में डब्ल्यू. जे. थॉमस द्वारा 'लोक साहित्य' शब्द की खोज की गयी थी । उनसे

[174]आदिवासी लोककथा, पृ.सं. 09.

पहले लोक साहित्य को लोकप्रिय पुरावशेष के रूप में जाना जाता था ।"[175] जब "रॉयल एसिएटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना ई. 1774 में हुई थी तब उसमें लोकगीत एवं लोककथाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ ।"[176]लोक-कथा के संबंध में पाश्चात विचारवंत एवं अभ्यासक **बोआस** लिखते हैं—"Folktale is the autobiography of the tribe"[177]उसी तरह हर्टलँड कहता है—"The folktales cannot be separated from the folksong with which is its origin and development, it is closely connected"[178]

हजारों वर्षों से आदिवासी-समाज लोकगीत तथा लोककथाओं में जीवित हैं। उनके भाषा की लिपि न होने के कारण उनके साहित्य को लिपिबद्ध नहीं किया गया। समकालीन मराठी उपन्यासों में लोककथाओं को हम देख सकते हैं।

'झेलझपाट' उपन्यास में मधुकर वाकोडे ने कोरकू जनजाति में प्रचलित लोक-कथा का वर्णन किया है। कोरकू जनजाति में होली का बहुत ही महत्त्व है। तो पूर्वजों ने होली के पहले दिन जंगल में जाकर लकड़ी जमा करते थे। "जांगडीयों जैसी अपनी भी होली जलनी चाहिए। इसलिए कोरकू के पूर्वज जंगल में लकड़ी जमा करने दोपहर को ही जाते थे। अधिक लकड़ियाँ जमा करने से थकान महसूस होगी इसलिए वे साथ में शराब की हांड्डी रखते थे। दोपहर से शाम तक लकड़ियाँ जमा किए। वहा वापस निकलने से पहले थकान महसूस हो रही थी तो सब ने मिलकर शराब पीनी शुरू की। गटा...गटा... शराब को पस्त कर दिए। नाचना, हँसना शराब के नशे में अधिक बढ़ गया। नशा इतना चढ़ गया था कि जमा की हुई लकड़ियाँ ले जाने की किसी को सूध नहीं थी। जब होश में आए तो आधी रात बित चुकी थी। इधर कोरकू वस्ती

---

[175]भारतीय जनजातीय संस्कृति, पृ.सं. 275.

[176]भारतीय जनजातीय संस्कृति, पृ.सं. 275.

[177]आदिवासी लोकसाहित्यातील लोककथा-मानवनिर्मिती संबंधी दृष्टिक्षेप, पृ.सं. 22.

[178]लोकसाहित्य संपदा, पृ.सं. 46.

पर अपने-अपने शौहर का इंतजार करते, चिंतित महिलाएँ राह देख रही थी। सुबह सवेरे सब लोग लकड़ी लेकर कोरकू बस्ती पहुँच ही गए। गाँव का मुखिया होली जलाने का आदेश देते ही दूसरे दिन होली जलायी गयी। तब से यह होली दूसरे दिन जलाने की प्रथा रूढ़ हो गई ऐसी कहानी कोरकू जनजाति में प्रचलित है।"[179]

महाराष्ट्र के 47 जनजातियों की उत्पत्ति कथा हमें देखने को मिलती है। भील, गोंड, वारली, कोंकणा, कातकरी, ठाकर, गावित, कोलाम, परधान, थोटी, दुबळा, कोरकू, आंध, मल्हार कोली, माडिया गोंड इन प्रमुख जनजातियों का समावेश है। इन जनजातियों ने अपने मनोरंजन के लिए, कुछ लोककथाएँ समाज के नियमों को प्रचलित रखने के लिए या अपने पूर्वजों के इतिहास को जीवित रखने के लिए इन लोक-कथाओं का निर्माण किया होगा। कोंकण में जिस तरह नारियल के पेड़ को कल्पवृक्ष कहकर संबोधित किया जाता है। उसी तरह आदिवासी-समाज में 'महुआ' के पेड़ को कल्पवृक्ष के रूप में संबोधित करते हैं और उसकी पूजा भी करते हैं। क्योंकि वह पेड़ एक ही वर्ष में दो बार फ़सल देता है। और उसका उपयोग औषधी निर्माण करने के लिए किया जाता है। अगर कोई व्यक्ति बीमार हुआ तो उस पेड़ के जड़े उबालकर उस पानी से बीमार व्यक्ति को नहलाया जाता है। 'महुआ' के फूल केवल शराब बनाने के काम ही नहीं आते उसे अकाल में पकाकर भी खाते हैं। यह पेड़ जंगल की शोभा भी बढ़ाते हैं और जंगल को समतोल भी रखने का काम करते हैं। इसलिए आदिवासी लोग इस पेड़ की ओर संकटसमय का एक विश्वासी मित्र की तरह देखते हैं।

'ब्र' उपन्यास में कविता महाजन ने वारली जनजाति के लोगों में प्रचलित लोककथा का विवरण दिया है—"वारली समाज के पुरुष न पल्हेरी नामक देवी का उपवास करते हैं। क्योंकि

[179] झेलझपाट, पृ.सं. 48.

उनकी पत्नियाँ अपना घर छोड़कर मायके न, भाग जाए । और हमेशा के लिए अपने संग बनी रहे ।"[180]

3.3.2. लोक-गीत

लोक-गीत आदिवासी जनजातियों में अलिखित एवं मौखिक होता है । यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होता है । इन जनजातियों का जीवन लोक-गीतों के बिना अधूरा है । आदिवासी लोकसंस्कृति एवं लोक जीवनपद्धति का दर्शन हमें लोकगीतों के माध्यम से ही होता है । इसलिए लोकगीतों का अधिक महत्त्व है । आज विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में लोकगीतों पर अभ्यास करनेवाले शाखाएँ निर्मित हुई हैं । जैसेः—अमेरिका, रूस, इंग्लंड, फ्रांस, जापान आदि । भारत में अनेक उच्च शिक्षा देनेवाले संस्थानों में भी लोकसाहित्य का शास्त्रीय दृष्टिकोण से अनुसंधान जारी है ।

सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे (वर्तमान समय में) गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक को समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है,वही लोकगीत है । प्राय: सभी क्षेत्रों में माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए लोरी तथा प्रात: उन्हें जगाने के लिए प्रभाती गाया करती हैं। बालक, बालिकाएँ भी कुछ खेलों में गीतों का सहारा लेते हैं। बहुत से ऐसे खेल भी हैं जिनमें वयस्क स्त्री-पुरुष गीत गाया करते हैं। लोकप्रचलित भजन और श्रमगीत तो सभी क्षेत्रों में गाए जाते हैं। लोकगाथाओं में ऐसी बहुत सी गाथाएँ भी हैं जो कई क्षेत्रों में बीच-बीच में गाई जाति हैं।

---

[180]ब्र, पृ.सं. 58.

लोकगीतों के संदर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं । जो निम्न रूप में हैं—

1. **ग्रीम—**

"अकृत्रिम होते है । वह सहज एवं स्वयंनिर्माण होते हैं तथा संगीत का रूप धारण करके जीवन में आनंद निर्माण करते हैं ।"[181]

2. **वासुदेवशरण अग्रवाल—**"लोकगीत, लोकसमूह संस्कृति के चित्र होते हैं ।"[182]
3. **डॉ. तेजनारायण लाल—**"लोकगीत हमारे जीवन विकास का इतिहास है ।"[183]
4. **डॉ. सत्येंद्र—**"जिस गीत में लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है । उस गीत को लोकगीत कहा जाता है ।"[184]
5. **एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका—**"लोकगीत आदिकालीन स्वयंस्फूर्ती संगीत है ।"[185]

उपर्युक्त विद्वानों के परिभाषाओं से हमें लोकगीत को समझने में मदद होती है । लोकगीत को हमे आदिकालीन स्वयंस्फूर्त संगीत जिसमें लोक-समूह संस्कृति के भावनाओं का प्रतिबिंब दिखाई देता है तथा यह गीत निरक्षता में से उपजे हुए होते हैं ।

समकालीन मराठी उपन्यासों में चित्रित विभिन्न आदिवासी समाजों में प्रचलित लोक-गीतों की अभिव्यक्ति क्षेत्रीय भाषा में हुई है । विभिन्न पर्वों-उत्सवों तथा अपनी व्यथा-कथा

---

[181]मराठी लोकगीत स्वरूप-विशेष, पृ. सं. 03.

[182]लोक साहित्याचे स्वरूप, पृ.सं.227.

[183]लोक साहित्याचे स्वरूप, पृ.सं.228.

[184] मराठी स्त्री गीते, पृ.सं.29.

[185]लोक साहित्याचे स्वरूप, पृ.सं.227.

या घटना व अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों की भाषा भले ही अलग-अलग हो किंतु सभी गीतों में अनुभूति एक सी होती है ।

समकालीन मराठी उपन्यासों में लोकगीतों को देखने से पहले वारली जनजाति का एक गीत उद्धृत करना उचित होगा ।

“बामण के घर जन्म लेगा
तो लिख-लिख कर मर जाएगा,
मारवाडी के यहाँ जनमेगा
तोल-तोल कर मरेगा
चमार होगा
तो जूते जोड़कर मरेगा
लेकिन वारली के घर जन्मेगा
तो जंगल का राजा होगा ।”[186]

उपर्युक्त गीत के माध्यम से ‘वारली माय’ (वारली माता) अपने नन्हा को कुछ सबर और होशियारी की सलाह देती है । किसी के भी बंधन में न रहते हुए पंछी की तरह, हवा की तरह या फिर निसर्ग की हर हालचाल की तरह उन्मुक्त एवं स्वछंद जीवन जीने की सलाह इस गीत के माध्यम से वारली माय अपने बच्चे को देती है ।

कोरकू जनजाति के जीवनपर आधारित ‘झेलझपाट’ उपन्यास में कोरकू ढाणा (वाडा/पाडा/इलाका) में होली के दिन चंद्र को साक्षी मानकर शराब के नशे में नृत्य करते हुए

[186]जंगलचे राजे, कुसुम नारगोळकर, पृ.सं. 03.

गीत गा रहे थे । खासकर उपन्यास की नायिका 'फूलय' तथा अन्य युवतियाँ सूर पकड़ी थी । उपन्यास का नायक 'केरू' ने ढोल बजाते ही फूलय ने होली गीत शुरू किया—

"सीटे बाई डो S, गांगो लगा SS

डंडा नवा खेले !

डंडा नवा खेले !!

आज को डंडा, तारूबांढा गेलीन डो SS

डंडा नवा खेले !

सीटे बाई डो SS,डंडा नवा खेले !!"[187]

कविता महाजन कृत 'ब्र' उपन्यास में ठाकर आदिवासियों के लोकगीत हैं । इस लोकगीत के माध्यम से ठाकर स्त्रियाँ अपनी व्यथा अपने पिता को सुनाती हैं । कहती हैं, माँ-बाप ने मुझे इस घर में ब्याह कर, कुछ अच्छा नहीं किया । यहाँ मेरी अवस्था ऐसी हो गई है कि- चील की तरह मुझे हमेशा घूमना पड़ता है । कौए की तरह कर्कश्य-झगड़ा करना पड़ता है । पिंजरे में कैद पंछी की तरह रह रही हूँ मैं । कोकिल जैसी थी मैं- अब संसार की जाल में अटक गयी हूँ ।

"आईबापानी दिलां मलां बरां नाही केलां जे

घारीचे वानी मलां फिरायेला इलां जे

कावल्याचे वानी मलां काकायेलां इलां जे

पाखेरूचे वानी मलां झुरायेलां इलां जे

[187]झेलझपाट, पृ.सं.49.

कोयेलाचे वानी माजा जंजालु जालां जे”[188]

गीत, संगीत एवं नृत्य एक दूसरे के पूरक होते हैं । इसीलिए ढोल, मांदर, बांसुरी, अलगोजा, झाल, मिट्टी के बरतन, जानवर के सिंग आदि आदिवासी लोक वाद्य विभिन्न पर्व एवं उत्सवों पर किये जाने वाले एकल, समूह एवं युग्म नृत्य लोकगीतों का सान्निध्य पाकर वातावरण और मन को और अधिक अल्हादित एवं सरस बना देते हैं।

3.4. 'आदिवासी' आर्थिक-जीवन

अधिकांश आदिवासी-समाज की अर्थव्यवस्था निसर्ग संपत्ति पर ही निर्भर है । आदिवासी-समाज में कमाल की गरीबी दिखाई देती है। कुछ आदिवासियों के जमीन के पट्टे तो होते हैं किंतु वह उनके नाम के नहीं होते। अगर नाम पर भी होते हैं तो वह उतनी उत्तम प्रती के जमीन नहीं होती। “स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की रचना वर्ग पर आधारित रही। सत्ता हाथ में आते ही भांडवलदार वर्ग को अपने साथ में रखा ।जमींदार तथा भांडवलदार वर्ग का विकास करने के लिए जनता का शोषण किया जा रहा है । यह तो तय है कि जो निचला तबका है- आदिवासी। उसके हिस्से में तो अधिक तीव्र गति से भूखमरी, गरीबी तथा दरिद्रता आ गई।”[189] सेठ, साहूकारों ने आदिवासियों की जमीन हड़प ली। सरकारने जंगल काटकर खेती करने पर प्रतिबंध लगाया। इसलिए जंगल में रहनेवाले आदिवासी खेती करने लगे। खेती में फसल ठीक से नहीं आने के वजह से उन्हें जंगल में जो भी काम मिलता था उसे वह करते थे। जैसे— लकड़ी तोड़ना, शहद जमा करना, गोंद जमा करना, तेंदू पत्ता, महुआ के फूल जमा करना आदि व्यवसाय में आदिवासियों को मिलनेवाला उत्पन्न बहुत ही अल्प होने के कारण उन्हें अपने उदरनिर्वाह के लिए सेठ, साहूकार के पास से कर्जा लेने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता।

---

[188]व्र, पृ.सं. 77.

[189]आदिवासी विकासाची साम्यवादी संकल्पना, पृ.सं. 123.

भारत में आदिवासियों को लूटने की मुहिम आज भी जारी है। ब्याज से पैसे देकर उनकी जमीन हड़पना शुरू है। आज अनेक आदिवासी भूमिहीन हो गये हैं। उनकी आजीविका के साधन को छीन लिया गया है। आदिवासियों के भोलेपन का फायदा सेठ, साहूकार तथा सरकार उठा रहे हैं। उन्हें ब्याज के चक्रव्यूह में फँसाया जा रहा है। इसी तरह का चित्रण बाबाराव मडावी कृत 'टाहो' उपन्यास में प्यारेलाल सेठ के माध्यम से दिखाई देता है—"सरकार मेरी बेटी की शादी तय हुई है, कुछ पैसे चाहिए थे।..... ठीक है— लेकर जाओ, किसने तुझे नहीं कहा ? आप ही के लिए तो हमारा जन्म हुआ है। ..... कितने चाहिए ?.... पाँच सौ रूपए मालिक। .... ठीक है—अगर जरूरत हो तो और अधिक लेकर जाओ। ..... इतने ही चाहिए सरकार। .... कौन तुझे रोक रहा है जितना चाहिए उतना लेकर जाओ। लेकिन सदू तेरी ज़मीन मेरे नाम से करवाना होगा। .... जी मालिक आप जैसा कहें, आपकी आज्ञा। ... सदू तू पैसे समय पर लौटाया नहीं, तो हमारा ब्याज तुझे खा जायेगा देख। ... ठीक है मालिक, समय पर लौटा दूँगा।"[190]

निर्धनता परिवार को दयनीय बना देती है। यदि घर में कमानेवाला कोई न हो, कमाई करें तो कैसे ? सेठ, साहूकार काम तो करवालेते हैं किंतु उसका पैसा नहीं देते। इसलिए इन आदिवासियों को हर वक्त सेठ, साहूकारों के पास से पैसे उधार लाने पड़ते हैं। और जिंदगीभर उस कर्जे को चुकाना पड़ता है। ईमानदारी से पैसा लौटाने के पश्चात् भी इन आदिवासियों को लूटा जाता है। इसी का उदाहरण हमें विलास मनोहर कृत 'झेलझपाट' उपन्यास में देखने को मिलता है। अपनी लड़की मालय तथा दामाद को कपड़े लेना था तो बूढ़ा हिराजी के पास पैसे नहीं थे। वह रहिमसेठ के पास जाकर पैसों के लिए गिड़गिड़ाने लगा—"पिछला पैसा दिया क्या

[190] टाहो, पृ. सं. 27-28.

तूने ? हाँ... हाँ... दिवाली के टेम दिया था रे सेठ। .... साठ रूपया लेना है तेरेसे.... समझा। हमने तेरा पैसा दिया सेठ। .... तो सुअर के बच्चे हम क्या झूठ बोलता है क्या...?"[191]

अर्थ जीवन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उसके प्रभाव से जीवन सार्थक बनता है तो अभाव से निरर्थक। समकालीन समाज जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला महत्त्वपूर्ण कारक अर्थ को मानना होगा। बिना अर्थ के जीवन अर्थहीन हो जाता है। आर्थिक समृद्धि का महत्त्वपूर्ण भाग माना गया है। समकालीन जीवन के अभिन्न अंग के रूप में जितने भी अव्यवहार, अनाचार, भष्टाचार, दुराचार और अनैतिक कार्य दिखाई देते हैं, वे सब अर्थ के कारण ही ।

विलास मनोहर कृत 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में भास्कर साहूकार की दुकान थी और अन्य चार-पाँच दुकानें उस गाँव में थीं। वे चावल, नमक, मिर्ची, गूड़, तंबाकू एवं तेल माडिया आदिवासी लेते थे। बदले में महुआ देते थे। किंतु साहूकार लोगों ने इन आदिवासियों को वहाँ फँसाते थे। "धान लेते समय वे माडिया आदिवासियों का माप बड़ा रखते थे। और देते समय माप छोटा। कोपा ने चुड़ा, गूड़, लिया था। जूरू को भी भूख लगी थी तो उसने भी गूल और चूड़ा लिया और लालसू एवं रूपी के लिए बिस्कूट लिया। नोट में से कुछ पैसे सावकारणी ने वापिस दिया लेकिन किसीको हिसाब नहीं आता था तथा किसी के पास उन्हें हिसाब माँगने की भी हिम्मत नहीं थी।"[192] इसलिए इन आदिवासियों का आर्थिक विकास नहीं हो पाया।

आदिवासी स्त्रियों में आभूषण प्रियता नहीं हैं । निसर्ग निर्मित जो भी मिलते हैं वे उसे ही पहनती हैं। इसका उदाहरण हमें शंकरराव खरात कृत 'पारधी' उपन्यास में मिलता है—"खारी

[191]झेलझपाट, पृ.सं. 44.

[192]एक नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं.35.

के गले में पाले, लाल, हरे काँच के मणके की लड़ी थी। हाथ में कथिल के कंगन थे। उसके पैरों में कथिल के अनवट (जोडवे) थे। कानों में भी कथिल के झुमके थे।"[193]

'ब्र' उपन्यास में कविता महाजन ने कातकरी जनजाति के आर्थिक-जीवन को दर्शाया है। बहुतांश कारतरी समाज के लोग अपने उदरनिर्वाह के लिए ईंट भट्टी पर काम करते हैं। ज़मीन से मिट्टी खोदना, उस मिट्टी को रौंदना, उसका ईट बनाना तब जाकर—"एक हज़ार ईंट के 120 रू. मिलते हैं। छः महिने काम करने के बाद चार से पाँच हज़ार रूपये मिलते हैं। अधिक लोग तो बेकार दिनों में पेट भरने के लिए 100-200 रू. एडवॉन्स लेते थें, अगले साल ईंट भट्टी पर काम करके वापस देने के करार पर। किंतु यह पैसे अगले छः महिनों तक पर्याप्त नहीं थे। ऐसा ही चक्र सालों से चलते आ रहा था।"[194]

आधुनिक आदिवासी समुदाय में सबसे बड़ी एक समस्या रही है—पैसों को सँभालने की। आदिवासी युवाओं का आर्थिक विकास होते ही वे गलत रास्ते अपनाने लगते है। हम सभी आदिवासी युवाओं को नहीं कह सकते किंतु कुछ गिने-चुने युवा इस तरह के कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। गोपाळ गवारी कृत 'कोळवाडा' उपन्यास में इस तरह का चित्रण देखने को मिलता है—"शिवज्या गाँव में रहते समय शराब पीता था। किंतु नौकरी लगने के पश्चात् बहुत पीने लगा। तनख़ा पूरा पीने पर खर्च करने लगा। शराब पीते हुए रंडियों का शौक करने लगा। इसलिए पत्नी की ओर ध्यान कम हो गया। रखैल के घर ही रहने लगा। उसी के पास खाना खाने लगा और वहीं से डयूटी पर जाने लगा। उसकी पत्नी और बच्चे भूखे मर रहे थे।"[195]

---

[193]पारधी, पृ.सं.17.

[194]ब्र, पृ.सं. 176.

[195]कोळवाडा, पृ.सं. 38.

निर्धनता मनुष्य को किस हद तक ले जाति है। इनको हम इस उपन्यास में देख सकते हैं। आज सबसे सस्ता नमक है। किंतु इन आदिवासियों के नसीब में नमक भी नहीं है। तो ये नमक की जगह चिंटियों का इस्तेमाल करते हैं। सुरेश द्वादशीवार कृत 'हाकुमी' उपन्यास में इसका चित्रण देखने को मिलता है—"नमक तो रहता ही नहीं। फिर हमारे लोगों ने नमक की जगह लाल चिंटियों का इस्तेमाल करते हैं। बरसात में आग के ईर्द-गिर्द जमा होनेवाले तितलियों को जमा करके अकाल की बेगमी (गुलामी) करनी पड़ती हैं।"[196]

आदिवासी भी संपत्ति जमा करने के चक्कर में नहीं पड़ते थे। क्योंकि उन्हें कभी किसी चीज की कमी नहीं थी। जब भूख लगे तब पेड़ से महुए के फल-फूल तोड़कर खाते थे। जब प्यास लगे तो नहर का पानी पीते थे। वह कहते थे—"कल की चिंता नहीं करने का। आज, अभी का समय खुशी से मनाने का।"[197]

अंततः हम कह सकते हैं कि हिंदी उपन्यासों की तरह मराठी उपन्यासों में आर्थिक-जीवन परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में अर्थ के बिना जीवन जीना असंभव है। चाहे मध्यवर्गीय समाज हो, निम्नमध्यवर्ग या दलित-आदिवासी। जैसे तैसे जीवन बिताते हुए सेठ, साहूकार, पुलिस, पटवारी आदि लोगों का अन्याय-अत्याचार सहन करना पड़ता है। इससे जीने की मुश्किलें और बढ़ जाति हैं। समकालीन मराठी उपन्यासों में इन सभी बातों का विवेचन मिलता है। निष्कर्षतः स्पष्ट है कि समकालीन मराठी उपन्यासों में आदिवासियों के आर्थिक-जीवन की सुदृढ़ अभिव्यक्ति हुई है।

3.5. आदिवासी-समाज की प्रकृति

मानव और संस्कृति का गहरा संबंध है। चाहे वह सुदृढ़ समाज हो या आदिवासी, पिछड़ा समुदाय अपनी संस्कृति को भली-भाँति संभालते हैं। आदिवासी-समाज की संस्कृति

---

[196]हाकुमी, पृ,सं. 09.

[197]तंट्या, पृ.सं. 46.

अन्य समाज की संस्कृति से अलग होती है। अन्य समाज की संस्कृति कालानुरूप बदलती रहती है। किंतु आदिवासियों की संस्कृति परंपरानुरूप तथा निसर्ग पर निर्भर करती है।

आदिवासी-समाज में युवक-युवतियों को अपने जीवनसाथी चुनने का अधिकार है। अगर लड़का-लड़की अपने जीवनसाथी को लेकर शादी से पहले ही घर आता है तो उसका स्वागत किया जाता है। या फिर घोटुल में भी रह सकते हैं। सुरेश द्वादशीवार कृत 'हाकुमी' उपन्यास में घोटुल संस्कार केंद्र का चित्रण दिखाई देता है। स्त्री-पुरुष संबंध पर शहर आयी हुई अनिता माडिया जमात की युवती पवरी से वार्तालाप करती है। तब शहर से आयी अनिता अवाक् रह जाति है। उसे पता चलता है अन्य समाज की संस्कृति और आदिवासी संस्कृति बिल्कुल भिन्न है। पवरी एवं अनिता के बीच का यह संवाद—"पवरी- शादी के बाद सिर्फ़ अपने शौहर से ही सब कुछ कर सकते हैं। हमारे समाज में...... अनिता- हमारे समाज में इस विषय पर ओपनली नहीं बोलते।.... पवरी- क्यों ?.... अनिता- उसे गलत मानते हैं।.... ऐसा कहकर बात को टाल रही थी।..... पवरी- जो सब लोग करते हैं तो उसमें क्या गलत है? अनिता- अगर उस लड़के साथ नहीं पटती तो क्या करते ? पवरी- काडीमोड (तलाक)... अनिता- हमारे समाज में तलाक इतनी आसानी से नहीं होती। हमें मनमारकर वैसे ही रहना पड़ता है। हमारे समाज की अधिकांश लड़कियाँ मनमारकर ही जीवन बिताती है।"[198]

उक्त संवाद को देखते हुए ऐसे परिलक्षित होता है कि तथाकथित समाज केवल आधुनिकता, नैतिकता के बड़े-बड़े बातों का दिखावा करता है। किंतु आदिवासी-समाज में इतनी आदर्श संस्कृति होते हुए कभी दिखावा नहीं किया। यहाँ मनुष्य को स्वच्छंद जीने का अधिकार दिया हुआ है।

---

[198]हाकुमी, पृ.सं. 99-100.

इतनी आदर्श संस्कृति होते हुए भी कुछ तथाकथित समाजकंटकों ने इस घोटुल को व्यभिचार, स्वैराचार का केंद्र माना है । ऐसी दूषित मानसिकता के प्रत्युत्तर में कवि कुसुम आलम लिखती हैं—

“तुम भड़वेगिरी की,
बलात्कार, छेड़छाड़ की...
‘गोटुल’ बोलेतो क्या ?
व्यभिचार, स्वैराचार का केंद्र ?
‘वह’ भड़वनेगिरी हम कभी नहीं करनेवाले
हो सके तो हज़ारों सालों का इतिहास के
पन्ने उलट-पुलटकर देख लो जरा ।”[199]

आदिवासी-समाज में लड़का जब लड़की देखने जाता है तो उसकी वहाँ परीक्षा ली जाति है । उस परीक्षा में पास हुआ तो ही उसके साथ वह लड़की ब्याह करती है । यह परंपरा दुनिया से अलग है । बाबाराव मडावी कृत ‘टाहो’ उपन्यास में पहाड्या जब सदू चाची की लड़की पारू को देखने जाता है तो गाँववाले पहाड्या की परीक्षा लेते हैं—“सदूचाचा उसे बड़ा-सा पत्थर उठाने के लिए कहता है । पहाड्या पत्थर उठाने की कोशिश करता है, पर वह पत्थर अपने भुजाओं के ऊपर नहीं उठा पाता । पहाड्या पूरी ताकत लगाकर उस पत्थर को जोर का झटका देकर अपने हाथों के ऊपर उठाता है । सब लोग ताली बजाते हुए उसका स्वागत करते हैं, पारू भी चुपके से ताली बजा रही थी । पहाड्या को देखकर पारू प्रसन्न हो रही थी । अब पहाड्या की दूसरी परीक्षा शुरू होती है । सदू चाचा कहता है- लाठी घुमाकर दिखाना ।... पहाड्या लाठी को उठाकर चकई की तरह घुमाता है ।”[200]

---

[199]रामआसवांचे तळे, प्रस्तावना.

[200]टाहो, पृ.सं. 26.

आदिवासी-समाज में स्त्री को देवी का रूप दिया हुआ है । किंतु अन्य समाज में स्त्री, पुरुष की जूती समझी जाति है और वह पूरी तरह पुरुष पर निर्भर रहती है । लेकिन आदिवासी-समाज की स्त्री को समान हक प्राप्त है । इसी तरह का हक हर स्त्री को मिलना चाहिए । आदिवासी-समाज के पुरुष ने केवल अपनी स्त्री के बारें में ही नहीं सोचते तो अन्य समाज की स्त्रियों के बारे में भी सोचते हुए उनका सम्मान करते हैं । विलास मनोहर कृत 'एका नक्षवाद्याचा जन्म' उपन्यास में जुरू अपने भगवान को याद करते हुए याचना करने लगा—"जमादार को क्या बीवी, बच्चे (लड़की) बहन नहीं क्या ? दोनों के भगवान अलग-अलग होते हैं । अपने और जमादार के दोनों के भगवान को याचना करने लगा कि, हे भगवान जमादार के बीवी, बच्चे, बहन को सलामत रखना । मैं तुझे मुर्गे की बलि चढ़ाऊँगा । कम-से-कम मेरे माँ, बहनों जैसे इज्जत उनका न जाएँ ।"[201]

आदिवासी-समाज में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसलिए लड़केवालों ने लड़की को दहेज (वधूशुल्क) देने की प्रथा है । और खास बात यह है कि दुनिया के किसी भी आदिवासी-समाज में बालविवाह की प्रथा नहीं है । भारत के आदिवासियों में बालविवाह की प्रथा न के बराबर है । किंतु तथाकथित समाज के संपर्क में आने के पश्चात् आदिवासियों की सामाजिक संरचना, संघटना एवं समाजव्यवस्था पर उसका बुरा असर हुआ है । दहेज प्रथा का एक उदाहरण हमें मधुकर वाकोडे कृत 'झेलझपाट' में देखने को मिलता है—"मालय बुढ्डा हिराजी की लड़की है । दो साल से अपने पति के साथ मायके ही रहती है । इस होली को उसके पति का दहेज का कर्जा सिफ़र (Nil) होनेवाला था । लड़की दहेज सिफ़र होने तक वह बुढ्डा हिराजी के घर काम करने का तय किया था ।"[202]

---

[201]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 61.

[202]झेलझपाट, पृ.सं. 11.

कितनी अजीब संस्कृति हैं कि, बाबा भांड कृत 'तंट्या' उपन्यास में भाऊसिंग अपनी पत्नी को मारता है तो वह कहती है पति की मार सुखदायक होती है। "बिरडा गाँव के पटेल तंट्या के पिताजी (भाऊसिंग) को मारता है। भाऊसिंग घर आने के पश्चात् पटेल का गुस्सा अपनी पत्नी (जीवनी) पर निकालता है। जीवनी को जंगली सुअर की तरह मारता है। तंट्या अपने माँ को देखते हुए कहता है— कितने दिन ऐसे मार खाओगी ? मारनेवाले के हाथ क्यों नहीं पकड़ती? इसपर उसकी माँ कहती है— तुझे नहीं समझता बेटा ! पति के पास गर्मी होती है। गर्मीवाला पति औरत को मारेगा नहीं तो क्या पूजा करेगा क्या उसकी ?"[203] वास्तव में आदिवासी भील स्त्री पति के मार को कभी सुखदायक नहीं मानती। पति का मार सहन भी नहीं करती। किंतु उपन्यास में जीवनी मार खाने का जो समर्थन दर्शाती है वह गलत प्रतीत होता है।

आदिवासी-जीवन की एक विशेषतः यह रही कि, आदिवासी समुदाय का अधिकतर लोकजीवन वन्य या पर्यावरण या प्रकृति पर आधारित है। किंतु अज्ञान, रूढ़िवादीता, अशिक्षा के कारण सेठ, साहूकार, पुलिस, पटवारी आदि ने उन्हें मनुष्य की तरह जीने नहीं दिया। इनके साथ जानवर से बदतर व्यवहार किया गया है। इसलिए इन्होंने अपने उदरनिर्वाह के लिए चोरी, डाका, लूटमार करने का काम किया है। गोपाल गवारी कृत 'कोळवाडा' उपन्यास में देख सकते हैं। "कोली लोग चोरी करते थे अपने पेट भरने के लिए। लेकिन चोरी आखिर चोरी ही है। हाँ, सब बराबर है किंतु कोली लोगों को तब पेटभर ने के लिए कामधंधा भी नहीं मिलता था। इसलिए लोग चोरी करते थे। चोरी करते समय किसी से मारपीट नहीं करते थे इतना तो सच है।"[204]

---

[203]तंट्या, पृ.सं. 35.

[204]कोळवाडा, पृ.सं. 48.

इसी तरह का चित्रण शंकरराव खरात कृत 'पारधी' उपन्यास में चित्रित किया गया है। पारधी आदिवासियों पर ठप्पा लगाया गया है कि, पारधी समाज केवल और केवल चोरी करता है। किंतु उपन्यास पठन के बाद परिलक्षित होता है कि पारधी समाज के लोग भी मेहनत, मजदूरी करने को तैयार रहते हैं लेकिन यह तथाकथित समाज उन्हें काम करने नहीं देता। बार-बार कोसते रहते हैं कि- तुम चोर हो, तुम चोर हो। "समाज ने इन पारधियों पर अविश्वास जताया है। उन्हें मनुष्य जाति में से बाहर किया गया है। वे जंगल में जानवर की तरह जैसे-तैसे जीते हैं। उनके जीवन का कोई मतलब नहीं था।"[205]

3.6. आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियाँ

सभी जाति, धर्मों को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। एक समस्या का समाधान करने तक दूसरी समस्या का निर्माण होता है। शहरी लोगों की जिस तरह समस्याएँ होती हैं उसी तरह ग्रामीण एवं आदिवासी-समाज की भी समस्याएँ होती हैं किंतु उसका स्वरूप अलग-अलग होता है। इस अध्याय में हम 'आदिवासी-जीवन के समक्ष चुनौतियाँ' का अध्ययन करनेवाले हैं। इससे समकालीन मराठी आदिवासी उपन्यासों में आदिवासी-समाज की समस्याओं का चित्रण स्पष्ट होगा।

आदिम जातियों की विभिन्न प्रकार की समस्याएँ हैं और उनसे निजात पाने के लिए संपूर्ण राष्ट्र में उनके रहने की संख्या बराबर नहीं है कुछ-कुछ राज्यों में आदिवासी ज्यादा संख्या में बसे हुए हैं। कुछ में इनका प्रतिशत थोड़ा है और कुछ राज्यों में ये नगण्य हैं। मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान और गुजरात ऐसे राज्य हैं जिनमें आदिवासियों की संख्या अधिक है। उत्तर-पूर्व के छोटे-छोटे राज्य नागालैण्ड, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर ऐसे राज्य हैं जिनमें अपवाद रूप में गैर-आदिवासी रहते हैं। कर्नाटक, तमिलनाडु ऐसे राज्य हैं जिनमें आदिवासी की संख्या अपेक्षित रूप से थोड़ी कम है। केरल जैसे राज्य में आदिवासी नगण्य हैं

[205]पारधी, पृ.सं. 118.

इन सभी आदिवासियों के बारे में यह स्पष्ट है कि ये सब विकास की विभिन्न अवस्थाओं में है। जहाँ उत्तर भारत में भोटिया खानाबदोश हैं, खाद्यसंग्राहक अवस्था में है, वहां धनबाद (बिहार) के आदिवासी समूह औद्योगिक क्षेत्र में काम करते हैं। महाराष्ट्र में माडिया महुआ की शराब निकालते हैं तो पारधी अपने उदरनिर्वाह के लिए चोरी को अपना कार्य मान बैठे हैं। इन आदिवासियों के लिए विकास की विभिन्नता है। इसी कारण इनकी समस्याएँ भी विभिन्न हैं एवं चुनौतियों का आकार भी असमान है।

आदिवासी-समाज की समस्याएँ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक हैं। साधारणतः आदिवासी-समाज की कुछ समस्याएँ उनके पारंपरिक जीवन पद्धति में से उत्पन्न होती है। लेकिन कुछ समस्याएँ मात्र विकसित समाज के संपर्क में आने के पश्चात् निर्मित होती हैं। सभी आदिवासियों की समस्याएँ एक जैसी नहीं होती हैं। अलग-अलग जनजाति की अलग-अलग समस्याएँ हैं। ऐसे होते हुए भी कुछ समस्याएँ समान भी होती हैं। भारत के सभी आदिवासी-समाज में प्रमुख रूप से दरिद्रता, आरोग विषयक समस्या, कर्जा, शोषण तथा अशिक्षा आदि समस्याएँ समान रूप में दिखाई देती हैं।

किसी भी समाज की प्रगति उसके शैक्षणिक स्थिति पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में विचार किया जाए तो आदिवासी-समाज में शिक्षा का अभाव दिखाई देता है। आदिवासी मराठी उपन्यासों के कुछ लेखकों ने शिक्षा को महत्त्व दिया है। और उन उपन्यासों के नायक भी उच्च शिक्षित हैं। जैसे— टाहो उपन्यास का 'भीम्या', हाकुमी उपन्यास का 'कन्ना मडावी', एका नक्षलवाद्याचा जन्म उपन्यास का 'लालसू' आदि।

आदिवासी-समाज की सबसे बड़ी समस्या भाषा की है। प्रत्येक आदिवासी-समाज की अपनी-अपनी स्वतंत्र बोली है। जब यह पाठशाला जाते हैं तो उन्हें भाषा की समस्या का सामना करना पड़ता है। उन्हें अध्ययन करने में जितनी रूचि आनी चाहिए उतनी नहीं आती इसलिए वह बीच में पाठशाला को सलाम करते हैं। और अपना जंगली जीवन जीते हैं। इसी

तरह की भावना व्यक्त करता है मधुकर वाकोडे कृत 'झेलझपाट' उपन्यास का नायक केरू— "थोड़े-बहुत लड़के-लड़कियाँ वह भी गवली के। चौथी कक्षा के आगे कोई नहीं जाता था और अध्ययन में किसी का मन नहीं लगता था। पूरे कोरकू समाज में मैट्रिक तक तो केवल केरू ही पढ़ा था। लेकिन अंत में वह भी मैट्रिक फेल हो गया। केरू को किताब सामने लेते ही भाषा का सवाल सामने आता था। अपने वस्ती के लोग आपस में कोरकू बोलते हैं। अन्य लोगों से टूटी-फूटी हिंदी में और जब किताबे खोलता हूँ तो संबंध आता है मराठी से। सबकुछ अपरिचित, ऐसा क्यों ?"[206]

इतने समस्याएँ होते हुए भी राष्ट्र में आदिम जातियों की उन्नति विविध पथों पर है। जैसे— मैदानी प्रदेशों के मीणा आदिवासियों ने पिछले चार-पाँच दशकों से बड़ी संतोषजनक तरक्की की है। आज उनमें कई राजपत्रित सेवाओं में हैं, कई अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में कार्यरत हैं। महाराष्ट्र में मन्नेरवारलू समाज के कई लोग प्रतिष्ठित पद पर कार्यरत है। यदि सभी आदिवासियों के विकास की तुलना की जाये तो जमीन-आसमान का अंतर मिलेगा। मतलब यह कि भारत के आदिवासियों के विकास की अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं। इसी विभिन्नता के होते हुए भी कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जो सभी आदिवासियों पर लागू होती हैं।

आदिवासी-समाज के सम्मुख़ एक ओर विकास के आयाम हैं और दूसरी ओर इनकी सांस्कृतिक धरोहर, परंपराएँ और रीति-रिवाज हैं। आदिवासी सभ्यता के लाभ को पूरी तरह लेना चाहता है, वह जानता है कि यदि उसने अपनी संस्कृति को जो इन्हें शिनाख्त देती है भुला दिया तो इनकी बुनियादी चुले हिल जायेंगी। इन चुनौतियों के होते हुए भी सरकारी आदिवासी नीति स्पष्ट है और परंपराएँ पूर्ण स्वतंत्रता देती है कि वह अपनी परंपरागत पहचान को बनाये रखें। जनजातियों की देश के प्रजातंत्र, समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता में सक्रिय भागीदारी हो, इसके लिए आवश्यक है कि आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच विषमताएँ दूर हो।

---

[206]झेलझपाट, पृ.सं. 14.

आदिवासी-जीवन-निर्वाह जहाँ एक ओर चुनौतीपूर्ण है तो सुनियोजित विकास कार्यक्रम आदिवासी-जीवन के लिए नई चुनौतियों के रूप में जानीजाति हैं । कुछ लोगों का तर्क है कि इन्हें विकास पर होने वाली धनराशि बाँटकर इनके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता तो भी विकास हो जाता । शायद यह सही नहीं और तर्क संगत भी नहीं । आदिवासियों का विकास केसंदर्भ बुनियादी परंपराएँ हैं जिनके कारण मानवीय गुणों का विकास हो सके । जनजातियों की मुख्य समस्याओं में जंगल, जमीन, कृषि, सिंचाई, गरीबी तथा बेरोजगारी हैं । इस संदर्भ में बाबाराव मडावी अपने उपन्यास 'टाहो' में कहते हैं—"विकास की परिभाषा को आदिवासियों के जीवन से जोड़कर क्यों नहीं देखा जाता ? कितने दिन हम यह बंजर जीवन जीते रहेंगे ? पानी के बाँध तो सरकार तैयार कर रही है । इधर 'सेव वॉटर' की मुहिम चलायी जा रही है । आदिवासियों के जंगलों में भी बाँध बनाये जा रहे थे । उस बाँध के नीचे आदिवासियों की ज़मीन जाने लगी थी, उनके घर भी जाने लगे थे । विकास के लिए पुनः विस्थापित का प्रश्न निर्मित होनेवाला था । आदिवासियों के जमीनों में बाँध, लेकिन उस बाँध का पानी मात्र ज़मींदार, सेठ, साहूकारों के खेतों में । विकास का मतलब उन्हें विस्थापित करना है क्या?"[207] जंगल का संरक्षण, उसका विकास और रख-रखाव आदिवासियों के लिए चुनौतिपूर्ण कार्य है जो इनके सहयोग एवं भागीदारी के बिना हो नहीं सकता है । बदली परिस्थितियों में जंगल के लाभ की अपेक्षा जंगल के पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए ।

आदिवासी समाजों में धर्मपरिवर्तन एक महत्त्वपूर्ण चुनौति के रूप में उभरकर सामने आया है । ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार लगभग ब्रिटीश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही हो गया था । संघर्षपूर्ण भौगोलिक स्थितियाँ, विषमताएँ एवं विसंगतियों से ग्रस्त सामाजिक-जीवन, आर्थिक बदहाली, भ्रष्ट राजनीति से शोषित, धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों में जकड़े तथा आधुनिक शिक्षा से वंचित भोले-भाले आदिवासी ईसाई पादरियों द्वारा दिये जानेवाले शिक्षा,

---

[207]टाहो, पृ.सं. 85.

स्वास्थ्य एवं आर्थिक लाभ के लोभ में फँसकर ईसाई धर्म ग्रहण करते पाए जाते हैं। इसका उदाहरण हमें सुरेश द्वादशीवार के उपन्यास 'हाकुमी' में मिलता हैं—"देश अन्य सभी आदिवासी इलाकों में ईसाई मिशनरी प्रस्त थे। आदिवासी-जीवनपर चर्च का नियंत्रण मजबूत था।"[208]

आज के परिवर्तित समय के दौर में आदिवासी नौकरी में आरक्षण के परिणाम स्वरूप सरकारी तथा सार्वजनिक उपक्रमों में प्रतिष्ठित है एवं पूर्ण रूप से आनंदमय हैं। लेकिन बहुत बड़ी संख्या गरीबी में पैदा होती हैं एवं जीवनभर गरीबी में खटती हैं। इनकी गरीबी पहले से सीखी हुई, विकास में विषमता बढ़ी है। आज की ज्वलंत समस्याओं में आदिवासियों की गरीबी और बेरोजगारी सबसे कड़वाहट भरी समस्या है।

[208]हाकुमी, पृ.सं. 51.

चतुर्थ अध्याय

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी-जीवन की समस्याएँ

4.1. समस्याओं की प्रकृति

हिंदी और मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की अनेक समस्याएँ हैं। जैसे— सामाजिक-समस्या, आर्थिक-समस्या, राजनीतिक चेतना का अभाव, नेतृत्व का अभाव, शिक्षा का प्रसार न होना और मुख्यधारा के समाज के साथ एकीकृत सोच का न मिलना। इन समस्याओं में से उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ हैं— भूख, दरिद्रता की विकराल समस्या, अंधविश्वास, प्राकृतिक-आपदाएँ, जल-जंगल-ज़मीन पर अतिक्रमण और विस्थापन की समस्या, व्यसनाधिनता, बेरोजगारी, निर्धनता, स्त्रियों पर अत्याचार, प्रशासकीय समस्या—पुलिस, रेंजर, पटवारी, अधिकारी, गार्ड, तथा सेठ, साहूकार, ठेकेदार, जमींदार, भूमंडलीकरण की समस्या, अन्य गैर-आदिवासियों द्वारा शोषण आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है।

4.1.1. सामाजिक-समस्या

सभी हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सामाजिक समस्या में भूख का प्रादुर्भाव दिखाई देता है। भूख का मूल कारण आदिवासियों की दुःख और दरिद्रता ही है। हिंदी के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कदमबाई, जंगलिया, राणा, अल्मा का दुःख परिलक्षित होता है। समाज उन्हें किस तरह अपमानित करता है और राणा को बालपन से ही उच्च समाज का शिकार बनना पड़ता है। राणा को नाजायज औलाद के रूप में समाज ने जो वेदनाएँ पहुचायी हैं और जब वह स्कूल में जाता है तो मास्टर उसे नल का पानी तक पीने नहीं देता। कहता है—"तू नल को नहीं

छुएगा । नल के आसपास भी देख लिया तो... याद रखना, यहाँ सिपाही आते हैं, पकड़वा दूँगा ।”[209]

इसी तरह की समस्या मराठी के ‘पारधी’ उपन्यास में दिखाई देती है । चित्र्या की बीवी खारी जब बर्तन माँजने तथा पीने का पानी भरने के लिए सामाजिक नल पर जाति है तब एक उच्चवर्ग की स्त्री उसके बर्तन नाली में फेंककर उसे लातों से मारती है और कहने लगती कि—“ऐ भीखारीन, चोरी के बर्तन, यहाँ माँजने लायी है क्या ? तू नल को नहीं छू सकती ।”[210]

4.1.2. भूखमरी की समस्या

भूखमरी का चित्रण हिंदी के ‘काली पादरी’ उपन्यास में आया है । बिरई लकड़ा की मृत्यु के पश्चात् हाहाकार मच जाता है । राज्य में पैलेस विरोधी सरकार है तो आपको पूछेगी नहीं, पर पैलेस का कोई आदमी आपको अस्पताल पहुँचाएगा । और अख़बार वाले, टी.वी. वाले, रेडियो वाले राजनीतिक फायदा उठाने पहुँच जाते हैं । अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए धर्म की नक़ाब ओढ़कर मानवता का पाठ पढ़ाया जाता है । जैसे—“सुनो, बिरई लकड़ा का परिवार अगर कन्वर्ट होता तो इस तरह भूख से नहीं मरता ।”[211]

मराठी के बहुतांश उपन्यासों में भूख की समस्या दृष्टिगोचर हुई है । प्रमुख रूप से ‘एका नक्षलवाद्याचा जन्म’ में भूख की समस्या का विस्तृत विवेचन हुआ है । इस उपन्यास में सरकार के दमनकारी नीतियों से जंगल पर कब्जा करना, आदिवासियों को जंगल से बेदखल करना तथा

---

[209]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 82.

[210]पारधी, पृ.सं. 124-125.

[211]काला पादरी, पृ.सं. 26.

जंगल कानून के तहत शिकारी पर पाबंदी लाने के वजह से ही भूख इनकी मुख्य समस्या बनी हुई है । भूख का चित्रण 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में इस तरह से किया—"सकाळी एक द्रोण आंबील तो प्यायला होता. त्यावर दिवस काढावा लागणार होता. घरात काहीच नव्हते थोडीशी आंबील होती ती मुलांसाठी ठेवली होती. (वो सुबह एक द्रोण (पत्ते की कटोरी) आंबील (गेंहू और ज्वार के आटे में ईमली तथा दही मिलाकर उसे पकाया जाता है उसके बाद जो पेय तैयार होता है उसे अंबिल कहते हैं ।) पीया था । उसी पर उसे दिन निकालना था । घर में कुछ भी नहीं था थोडीसी आंबील थी तो वह बच्चों के लिए रखी थी ।)"[212]

भूख का चित्रण 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में दिखाई देता है—"लोग सरेआम भूखे मर रहे हैं । पर हमारी सरकार के लिए यह ख़बर भी टाप-सिक्रेट है ।"[213] इसलिए 'हाकुमी' उपन्यास के उपन्यासकार ने भूख की व्याख्या एक लाईन में करते हुए कहा है कि—"भूख हे इथलं सार्वत्रिक वास्तव आहे. (भूख यहाँ का सार्वजनिक वास्तव है ।)"[214]

4.1.3. अंधश्रद्धा की समस्या

अंधश्रद्धा की समस्या आदिवासी-समाज में कूट-कूटकर भरी हुई है । आदिवासी-समाज अज्ञानतावश अंधश्रद्धा अपना लेते हैं । हिंदी के 'ग्लोबल गाँव के देवता' तथा मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' तथा 'हाकुमी' उपन्यास में खेत में फसल बहुत अच्छी आने के लिए मनुष्यों की बलि दी जाति है । जैसे—"दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि

---

[212]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 18.

[213]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 30.

[214]हाकुमी, पृ.सं. 102.

धान को आदमी के ख़ून में सानकर बिचड़ा डालने से फ़सल बहुत अच्छी होती है। इसलिए इस सीजन में मुड़ीकटवा लोग घूमते हैं।"[215]

इसी तरह की अंद्धश्रद्धा मराठी के 'हाकुमी' उपन्यास में दिखाई देता है—"शेतात धानाचे भरघोस पीक येण्यासाठी देवीला लहान मुलाचा बळी देण्याची प्रथा त्यांच्या जमातीत आजही होती काहीवेळा पैशासाठी बापच आपली मुले मोठ्या शेतक-यांना देत असत. धानकापनीच्या वेळी मुले पळविणा-या टोळया फिरत असत (खेत में भरघोस फसल आने के लिए देवी को छोटे बच्चों की बलि देने की प्रथा आज भी दिखाई देती है। कईं बार पैसों के लिए अपने बच्चों को बड़े किसानों को बेच देते हैं। धान कटाई के सीजन में बच्चें भगानेवाले टोळी पनपने लगती है।)"[216]"जंगलालगतच्या जबरनच्या शेतात नेऊन त्या पोराचा पेरमानं बळी घेतला होता त्याच रक्त पिकाच्या आशेनं त्या शेतात शिंपडलं होतं. त्या रक्तात भिजवून घेतलेले लोखंडाचे खिळे गावो गावच्या कास्तकरांना विकले होते. असले खिळे शेतात पुरले तर पिक वाढतात असा लोकांचा समझ होता. (पेरमा ने जंगल में जबरन के खेते में लड़के को ले जाकर उसकी बलि दी थी। फसल अच्छी आने के लिए उसका खून खेत में सनाया (शिंपडने) था। उस खूनि में भिगोये हुए लोहे के कीले गाँव के कातकरों के बेचा था। वह कीले खेत में गाड़ने से फसल अच्छी आती है ऐसी लोगों की धारणा थी।)"[217]"हजूर, बनस्पती देवी हैं, भटका रही हैं। डाकुओं की देवी हैं। कभी कोई रूप धर लेती हैं, कभी कोई। और ऊ दिन भी ऊ लड़की लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की

[215]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 12.

[216]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 06.

[217]हाकुमी, पृ.सं. 84.

माया थी । आँखों पर परदा न डाल देती हैं मैया !"[218] इस तरह से आदिवासी लोग अंधश्रद्धा में फंसे हुए हैं । लगभग सभी उपन्यासों उनकी में अंधश्रद्धा का जिक्र किया गया है ।

4.1.4. व्यसनाधिनता

व्यसनाधीनता आदिवासियों के लिए एक अभिशाप है । भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय है उनमें व्यसनाधीनता की समस्या व्याप्त है । इस व्यसनाधीनता को मिटाने के लिए 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गोविंद गुरू पाँच-सात किशोरों को लेकर समझाता है । पढ़ने-लिखने पर अधिक जोर देता है । किंतु वहाँ के लोग कहते है कि, राज के आदमी हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं और जागीरदार हमसे बिना मेहनताना बेगार कराते हैं । इसकी चिंता को जताते हुए वे कहते हैं—"हमारे आदमी दारू पीकर शरीर व माथा खराब करते हैं । अपनी औरतों व बच्चों को आये दिन तंग करते रहते हैं । यह बुरी आदत है । इनका विरोध हमें करना चाहिए ना ?"[219] इसी तरह व्यसनाधीनता की समस्या मराठी के 'ब्र' उपन्यास में दिखाई देती है । किंतु इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री सैनाबाई व्यवसनाधीनता के कारण दूबारा शादी करने से इन्कार करते हुए कहती है—"आता दुसरेपणीचा म्हणजे डोकरा नाहीतर दारूड्याच मिळणार त्याला दारूला पैसे द्या आणि वर त्याचा मार खा कशाला पाहिजे ?(अब दूसरी शादी करने का मतलब है एक तो बुढ्ढा नहीं तो शराबी ही मिलेगा । उसे शराब के लिए पैसे दो और ऊपर से उसका मार खाओ । काहे चाहिए ?)"[220]

---

[218]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 21.

[219]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 25.

[220]ब्र, पृ.सं. 116.

4.1.5. स्त्रियों पर अत्याचार

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सबसे बड़ी कोई समस्या हैं तो वह है स्त्री–अत्याचार । एक ओर तो स्त्री को देवी, माता, धरती, जननी के रूप में दिखाया गया है और दूसरी ओर इन्हीं देवी, माता पर अन्याय, अत्याचार, बलात्कार के किस्से देखने, सुनने को मिलते हैं । इसी अन्याय, अत्याचार तथा बलात्कार का चित्रण करते हुए रजनी तिलक अपनी कविता 'औरत-औरत में अंतर है' में कहती है—

"शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटो पर ।
छेड़ी जाति हैं दोनों ही बेशक
एक कार में, सिनेमा हॉल व सड़को पर
दूसरी खेतों, मुहल्लों में, खदानों में "[221]

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में उच्च वर्ण के लोग आदिवासी लड़कियों से अपनी वासना की भूख मिटाते हैं । एक ओर उन लड़कियों की शादी होने नहीं देते । जब मुश्किल से शादी हो भी गयी तो दो-चार साल में ही तलाक हो जाता है या फिर विधवा बन जाति है । जैसे—"घाँसी टोले में परित्यक्ता और विधवा बेटियों की बाढ़-सी आ गयी है । कसाइयों के हाथ में पड़ी गाय-सी ये बेटियाँ बार-बार पेट गिराने से असमय ही बूढ़ा जाति हैं । ये नवयुवती-वृद्धाएँ दुख-विषाद से स्याह चेहरा-देह ले जहाँ गुज़रती हैं, एक उधारी-सी छा जाति है ।"[222] इसी तरह का अन्याय, अत्याचार मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास

---

[221]हम सबला, पृ.सं. 07.

[222]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 50.

में मिलता है। माडिया गोंड आदिवासी के सामने जान बूझकर कोई समस्या खड़ा कर दी जाति थी और उस समस्या को निपटाने के लिए आदिवासी स्त्रियों तथा बेटियों को पुलिस तथा रेंजर का बिस्तर गरम करते हुए रात गुजारनी पड़ती थी। जैसे—"…. नकरी रात्री कोठे गेली असावे ? जमादाराखाली झोपण्यासाठी नाही ? (नकरी रात में कहाँ गई होगी ? जमादार के नीचे सोने के लिए तो नहीं ?)"[223]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में खूमा कामी के बदन को देखने के बाद अपने आप को रोक नहीं पाता और उसके बदन पर कीचड़ पोतने लगता है। कामी उससे बचने की कोशिश करती है, चिल्लाती है लेकिन—"खूमा ने कीचड़ लगाते-लगाते उसे निर्वस्त्र कर दिया। मादरजात नंगी कामी फिसलकर उसके हाथ से बाहर आई और चिल्लाती भागने लगी। पर कितना भागती ? बाँसों की झुरमुट तक आते-आते खूमा ने उसे दबोच लिया।"[224] इसी तरह मराठी के 'कोळवाडा' उपन्यास में शिरप्या फशी को फंसाता है और अपना सिर ऊँचा करके गाँव में घूमते रहता है। लेकिन फशी जिंदगी से उठ जाति है। और इस समाज की एक धारणा है कि शादी से पहले किसी लड़के साथ जुगलबंदी कर ले तो वह समाज चरित्रहीन ठहराता है। जैसे— "फशीची मात्र कायम ची इज्जत गेली. तिला कोणी करीना (लग्न होईना) कारण काय तर म्हणं तीनं लफडं केलं व्हतं. (फशी की हमेशा के लिए इज्जत चली गयी थी। उससे शादी करने के लिए कोई तैयार नहीं है। क्योंकि वह लफड़ा की थी।)"[225]

---

[223]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 60.

[224]जहाँ बाँस फूलते है, पृ.सं. 89-90.

[225]कोळवाडा, पृ-.सं. 147.

4.1.6. शोषण की समस्या

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में एक बड़ी समस्या यह भी रही है कि सेठ, साहूकार, जमींदारों ने आदिवासियों की लूट, जमीन से बेदखली, उनके स्त्रियों पर अत्याचार, बलात्कार तथा रखैल के रूप में उनको रखा है । इसी तरह की समस्या 'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में दिखाई देती है । दादूसिंह के यहाँ जंगलियाँ की तीन पीढ़ियाँ मजदूरी करने में जाति है । जंगलिया, उसका बाप तथा उसके दादा ने दादूसिंह के यहाँ बीस रूपये कर्जा चुकाते आ रहे थे । "दादूसिंह ने इन सभी 'जंगलियों' को छुटपन से गुलामी करते देखा था । उसकी नज़र में ये लोग इन्सान नहीं थे । गुलामी करने पैदा हुए थे और गुलामी करने के ही लायक थे ।"[226] इसी तरह की समस्या मराठी के 'तंट्या' उपन्यास में दिखाई देती है । साहूकार एवं जमींदार के पास अपनी जमींन छुड़ाने के लिए तंट्या, तंट्या का बाप-भाऊसिंग तथा तंट्या का दादा इन साहूकारों के पास गुलामी करते रहे है । "पोखरला भाऊसिंगचा बाप राहायचा. सावकाराकडं त्याचा वावरं गहाण पडलं होतं. ते सोडविता-सोडविता त्याचा बापाचा आयुष्य गेलं. सावकारानं मारलेल्या फटका-यानं भाऊसिंगचा बाप पाणी-पाणी करत मेला । (पोखर में भाऊसिंग का बाप रहता था । साहूकार के पास उसकी जमीन गिरवी थी । वह छुड़ाते-छुड़ाते उसकी जिंदगी चली गयी थी । साहूकार के फटकारों से भाऊसिंग का बाप पानी-पानी कहते हुए मर गया ।)"[227]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में पुलिस, दरोगा, गार्ड, रेंजर, पटवारी, अंग्रेज तथा अधिकारियों ने आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार किया है । इस संदर्भ में बी. एम. शर्मा लिखते हैं—"कल्याणकारी राज्य में पुलिस की भूमिका एक समाज सेवी संगठन

---

[226]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 09.

[227]तंट्या, पृ.सं. 24.

की होती है । उसे कानून तथा व्यवस्था बनाएँ रखने तथा अपराधों की रोकथाम करने वाली बुनियादी भूमिका निभानी होती है ।"[228]

लेकिन वर्तमान स्थिति में पुलिस व्यवहार तथा भ्रष्टाचार से आम आदमी का उन पर से विश्वास उठ गया है । विवेच्य उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में पुलिस बिसराम के घर तलाशी लेने आती है । बिसराम ने कोई अपराध नहीं किया है, उसकी गलती डाकू काली का भाई होना है । पुलिस की दहशत तथा उनके व्यवहार का पता इस कथन से लगता है—"कहाँ छुपा रखा है, उस मादरचोद कलिया को ?... चोप साला । अगवार-पिछवाड़ सर्च करो । न मिले तो एक-एक घर छान मारो कहाँ जाएगा साला ।"[229] इसी तरह मराठी उपन्यास 'झेलझपाट' में मन्यारवाला कासम सेठ पुलिस की सहायता से केरू को फँसाने का जाल बिछाता है । उस पर लालपरी (नशे की गोली) बेचने के झूठा इल्जाम लगाता है । "स्साला कंद ले रहा था ! लालपरी बेचता था सुअर का बच्चा ! चल पोलीस चौकीमें !"[230]

उक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि, आदिवासियों को सेठ, साहूकार, जमींदार, पुलिस, तहसीलदार, दरोगा, गार्ड, रेंजर तथा अन्य गैर-आदिवासी, आदिवासियों को फंसाते हैं इस तरह के प्रसंग हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में कई जगहों पर आए है ।

---

[228]वर्ग विचारधारा एवं समाज,पृ.सं. 243.

[229]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 123.

[230]झेलझपाट, पृ.सं. 64.

4.2. संवाद

उपन्यास में पात्रों के आपसी बात-चीत को कथोपकथन अथवा संवाद कहते हैं। वैसे देखा जाय तो 'कथोपकथन' नाटक का प्रमुख तत्त्व है, किंतु साहित्य की अन्य विधाओं में भी इसका बखूबी प्रयोग किया जाता है । इसका संबंध उपन्यास की कथावस्तु तथा पात्र दोनों से हैं । संवादों के माध्यम से जहाँ एक ओर कथा का विकास होता है, वहाँ दूसरी ओर उपन्यास के पात्रों का परिचय मिलता है तथा उसके चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है । "जो वार्तालाप कथानक को अग्रसर नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता, वह चाहे कितना भी सजीव क्यों न हो, उपन्यास में उसका मूल्य दो कौड़ी का भी न होगा । उपन्यास के इसी तत्त्व के कारण ही उसे जेबी-थियेटर कहा गया है । इसके कारण उपन्यास में सहजता एवं स्वाभाविकता आती है ।"[231] कई बार लेखक कथोपकथन के सहारे कई ऐसी घटनाओं का उल्लेख कर देता है, जिसे वह अपनी मूल कथा में विस्तार से नहीं दिखा सकता । "उपन्यास कथोपथन के माध्यम से अपने न होने की क्षति-पूर्ति भी करते हैं ।"[232]

उपन्यास को अपने उद्देश्य तक पहुँचाने के लिए पात्रों का आंतरिक स्वरूप एवं संवाद बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। कथा को आगे बढ़ाने के लिए संवाद का होना अत्यावश्यक होता है । अर्थात् बिना संवाद के कथा आगे बढ़ ही नहीं सकती अतः संवाद योजना उपन्यास का प्राण तत्त्व समझा जाता है । कथोप कथन में संक्षिप्तता, रोचकता, स्वाभाविकता, सहजता, आकर्षक एवं सुबोधता आदि गुण होने चाहिए । इसके अलावा देश-काल, परिस्थिति एवं घटना को ध्यान में रखकर ही संवादों की रचना होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो कथोपकथन का प्रयोग सोद्देश्य एवं विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए । हिंदी और मराठी के उपन्यासों में

---

[231]हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.सं. 29-30.

[232]वही, पृ.सं. 30.

जनपदीय जीवन को प्रस्तुत करनेवाले संवादों का सुंदर अंकन किया है । संवादों का मुख्य ध्येय विषय-वस्तु का विकास करना, घटनाओं में सजीवता का समावेश करना होता है । वार्तालाप के द्वारा पात्रों की अंतर्द्वन्द्वता का भी उद्‌घाटन होता हैं ।

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों के संवाद, संक्षिप्त, भावानुकूल, सरस, प्रभावी, यथार्थ, सजीव, मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक, पात्रानुकूल, उपयुक्त एवं नाटकीय होने चाहिए । उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त हैं ।

5.2.1.संक्षिप्त-संवाद

'गाथा भागनपुरी' उपन्यास में आदिवासियों की ठेकेदार के अत्याचार का चित्रण देखने को मिलता है । उन्हीं के खेत में वे पराया लग रहे थे । कोर्ट का आदेश होते हुए भी ठेकेदारों ने रातों रात हरी फसल काट के ले जाते हुए कहता है जो कुछ कहना है सरकार से कहो । उसी वक्त बँगडू ब्लाक दफ्तर में जाता है । वहाँ पर भी उसे नाना प्रकार के सवाल करते है—

"का नाम है ?"

"बँगडू आ, सिरकार !"

"बाप का नाम ?"

"घिसटुआ रहा, सिरकार !"

"का काम करत है ?"

"मजूरी, सरकार !"

"कितने लड़का-लड़की हैं ?"

"दुई लड़का, एक लड़की !"

"किसके यहाँ काम करते हो ?"

"दादूसिंह के यहाँ, सिरकार !"

"दादू सिंह कौन है ?"

"मालिक है, जिमीदार है, सिरकार !"[233] इतने सारे सवाल करने के पश्चात् रखुलआ ग्राम के बँगडिया आदिवासी को ग्रामविकास अधिकारी रामअधार ने बंधुआ मजदूरों की सूची में शामिल करता है। उपन्यासों को संवाद में भोजपुरी भाषा का अधिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

'जहाँ बाँस फूलते है' उपन्यास में मिजो विद्रोह के साथ-साथ वहाँ की अकाल परिस्थिति को भी दिखाया गया है। अपनी भूख मिटाने के लिए झा के झूठे पपीता के छिलके एक व्यक्ति चाट रहा था। इस स्थिति में सरकार तथा सरकारी लोग इनके प्रति निरागस दिखाई देते हैं। झा, कप्तान जाधव को कहता है—

"भुखमरी फैल रही है। समय रहते हमें चेत जाना चाहिए अभी-अभी कपू....."

हायस्कूल का हेडमास्टर चोङ्खूमा बोला- "सरकार फर्जी मदद की बात करती है। नहीं तो यह नौबत कत्तई न आती।"

---

[233]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 73.

कप्तान की भौंहें चढ़ गई, “आप ऐसी बात नहीं कह सकते। सरकार ने इस इलाके के लिए क्या नहीं किया है ?”

बी.डी.ओ. लालम्हुआका बोल, “फोरन वायरलेस भेजिए दिल्ली। इस स्थिति में हेलीकाफ्टर से राहत सामग्री ड्राप होनी चाहिए।”

कप्तान चीख उठा, “इन्हें मुफ्त की खाने की लत पड़ गई है। बिना स्वयं कुछ किए, अपने पाँवों पर खड़ा हुए पेट भरता, चाहे बाहर से कितना ही सप्लाई क्यों न आए। और करो भारत सरकार को ब्लाकमेल।”[234]

रूआलखूमा को जवानों ने जब हथकड़ी पहनाकर घसीटते हुए जंगल में लाया था वह धैर्य और गंभीरता से काम लिया। मिजो आदिवासियों की यही विशेषता रही कि वे मौत सामने खड़ी हो तो भी वे डरते नहीं, उसका स्वागत करते है। उसे कहा जाता है अपने आपको बचाने के लिए आपको जो करना है आप कर सकते हो। खूमा कोई हलचल नहीं करता है। इन आदिवासियों को जानवर से भी बदत्तर मार दिया जाता है।

खूमा काँपती हुई आवाज में बहुत धीमे से कहा, “मेरा हाथ खोल दो।”

“क्यों ?”

“ एक मुक्त प्राणी की तरह मरने दो।”

“नहीं।”

---

[234]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 30.

“क्यों ?तुम वाई तो जानवर का भी पगहा खोल देते हो मारने से पहले ।”

“लेकिन तुम जानवर नहीं ।”

“उससे बदत्तर हूँ ।”[235]

‘जहाँ जंगल शुरू होता है’ उपन्यास में थारू जनजाति पर पुलिस द्वारा की जानेवाली अन्याय, अत्याचार का ब्यौरा है । इस उपन्यास में हिंदी के साथ-साथ थारू बोली, अंग्रेजी के संवाद परिलक्षित होते हैं । थारूओं के प्रति पुलिसवालों की नज़रिया कुछ ओर हैं । वे हमेशा इनको शक की नज़र से ही देखते है । जब थारू स्त्री-पुरुष नाव में जा रहे थे तब जवानों ने उनकी तलाशी लेते हैं । गर्भवती महिला को नग्न होने तक नहीं मानते उसकी साड़ी उतारते हैं—

“इस लालटेन का शीशा बता रहा है कि यह रात-भर जलती रही है ।” कुमार ने कहा ।

“आपका अनुमान सही है ।”

“नाव में गठरियों, थैलों, पगड़ियों की जाँच कर ली ।” सिंह ने पुछा ।

“जी सर ।”

“गर्भवती औरतों की ?”

“बैठला पे पता नहीं चलता कि के...।”

---

[235]वही, पृ.सं. 313.

औरतें भरभराकर खड़ी हो गई। सिंह ने एक-एक औरत को घूरा। हठात् पलटकर एक की साड़ी खींच ली। पेट पर बँधा गट्ठर नीचे आ गिरा। औरत अपनी नग्नता को भूल गिड़गिड़ा उठी, "हमरा के छोड़ देई हजूर।"[236]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में जनपदीय जीवन को प्रस्तुत करनेवाले संवादों का सुंदर अंकन किया है। संवादों का मुख्य ध्येय विषय वस्तु का विकास करना, घटनाओं में सजीवता का समावेश करना होता है।

"यार यह बच्चा है।"

"हाँ ?"

"देख पतली डंडी से छोटे-छोटे हाथ-पाँव। मुँह और आँखे सो रहा है ?"

"जमुना मर गई भीख।"

"कैसे ?"

"जैसे बुलबुल मरी थी।"

"बच्चा ?"

"तोते की तरह मर गया।"

"चोंच खोलकर पंखों के ढ़ेर की तरह।"[237]

---

[236]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 228.

अल्मा और धीरज के प्यार का संवाद भी हम देख सकते है ।

"क्यों करती है पूजा ?"

"तुम्हारे लिए ।"

"मैं तुम्हें बचा नहीं पाऊँगा ।"

"दोनों संग मर जाएँ ? यही तो मेरी प्रार्थना ।"

"मर नहीं जाएँ, भाग जाएँ ।"[238]

'काला पादरी' उपन्यास में धर्म और राजनीति एक सिक्के के दो पहलुओं का दर्शाया गया है । राजनीतिक पार्टियों की पोल-खोल जेम्स खाखा तथा उपन्यास का नैरेटर आदित्य के संवाद से होता है ।

"हाँ, इट्स पिटी, और तुम्हें पता है कि इनमें सभी राजनीतिक दलों के लोग शामिल हैं, सिवाय यह जो कुछ नयी पार्टियां बनी हैं उनके....।"

"कौन सी ?"

"यही कांशीराम की बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी वगैरह, कुछ हद तक वामपंथी भी, इनके अलावा बाकी सब तो एक ही सिक्के दो पहलू हैं ।"

---

[237]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 174

[238]वही, पृ.सं. 288

"कांग्रेसी भी !"

"हां, दुर्भाग्य ।"

"किसका दुर्भाग्य ?"

"हम सबका, और क्या ?" उसने कहा ।[239]

धर्म परिवर्तन करने के बाद इन ईसाईयों ने उराँव आदिवासियों को जीवन भर धूल का कीड़ा समझ बैठते हैं । जेम्स कहता है कि, जब हम लोग पढ़-लिख गये हैं, प्रार्थना का काम करते हैं, पूरी चर्च सम्हालते हैं, तो वे बार-बार हमारी बेगार के दिनों की जुगली क्यों करते हैं—

उसने सोजेलिन के माथे पर हाथ रख दिया और फिर पूछा, "तुम मेरे साथ हो न ?"

सोजेलिन ने सिर हिला कर स्वीकृति देते हुए आँखें बंद कर लीं ।

"अब हम और बर्दाश्त नहीं करेंगे । न बेगार और न प्रार्थना," उसने कहा ।

सोजेलिक चौंक गयी ।

"प्रार्थना क्या बर्दाश्त भी की जाति है ?" उसने पूछा ।

"हाँ, कई बार बर्दाश्त करने का ही दूसरा नाम प्रार्थना कर दिया जाता है,"[240]

---

[239]काला पादरी, पृ.सं. 86.

[240]वही, पृ.सं. 110.

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में मुंडा आदिवासियों धैर्य की, शौर्य की संवाद सुनाई देती है । जब ललमुँए के साथ युद्ध की तैयारी करते है तब हारिल मुरमू आकर बता है कि ललमुए के पास बहुत सारा गोला-बारूद है । वे युद्ध जितने के लिए अपनी जान देने तक भी पीछे नहीं हटते । इस संदर्भ में लखीराम कान्हू का संवाद—

"हमने मैदान छोड़ा तो हमारे पीछे पडेंगे ललमुँहे ।"

"तो करें का ?" कान्हू ने पूछा ।

"कुछ लड़वइयों को सूबा ठाकुर के लिए अपनी बलि देनी होगी रे कानू ।"

"हम देंगे अपनी बलि ।"[241]

हारिल मुरमू जब चार पैसे कमाने के लिए ललमुहें के पास जाने का सोचते हुए शंख को बताता है कि, लोहे का रास्ता तथा उस पर चलने वाली लोहे की भैंस तब शंख उसका मज़ाक उड़ाने लगता है—

उधर लोहे का रास्ता बना रहा है । "सो काहे को... लोहे का ?" शंख ने पूछा ।

"लोहे का रास्ता होगा तभी तो उस पर लोहे का भैंसा गाड़ी खींचेगा ।"

"लोहे का भैंसा....!" चकित हुआ शंख ।

"हाँ रे । कोयला खाता है लोहे का भैंसा । पानी पीता है । एक नई दस-दस गाड़ी एक साथ खींचता है ।"

---

[241]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 268.

“का जानें गुरू ! तुम तो देस-देस घूम के अलबत्त-अलबत्त चीज देख आये हो.... हम तो जंगल में ही जीते-मरते रहे।”

“अभी लोगे का भैंसा नई देखा हमने रे... बस रस्ता देखे हैं। उधर ललमुँहि जो बतियाते हैं वही सुने हैं।”[242]

‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में जब मानगढ़ ऑपरेशन में आदिवासी नायकों को गिरफ्तार किया जा रहा था। उन अफ़सरों को लगा अब सब कुछ अपने नियंत्रण में हैं। तभी हारिया ने सुबेदार की कुल्हाड़ी से एक ही वार से गर्दन धड़ से अलग कर देता है। तब अंग्रेज अफसरों की संवाद—

“लड़ाई का अंत मानकर हमने गलती की। ” मेजर वेली इतना ही कह पाय। उसकी आवाज भिंची हुई थी।

“इट्स ब्रूटल !” कहते हुए कैप्टेन स्टॉक्ले इधर-उधर झांका। उसके पैर कांप रहे थे। लगा, जैसे वह लड़ाई हार गया।

“ट्रेस हिम एण्ड किल ! नाऊ, बी अलर्ट !!” वह जोर से चिल्लाया।

“दल्ली ....! मेंई बैर लेइ ली दो !!”[243]

नीचे घाटी से हरिया कि बुलंद आवाज सब को सुनायी दी। हारिया अपना महाभारत जीत गया।

---

[242]वही, पृ.सं. 374.

[243]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 373.

आदिवासियों के रोजमर्रा के जीवन में शराब, बीडी, हुक्का, तंबाकू को महत्त्वपूर्ण स्थान है । किंतु गोविंदा यह सब शरीर नश्वर करनेवाले लगते है । इसलिए वह उपन्यास इन चिजों का विरोध करते हुए दिखाई देता है । इसी तरह कुरिया का पिताजी सांवता तथा गोविंदा का संवाद—

"रे छोरा, कहाँ रोता फिरता रहा दिन भर ? अंधेरा हो गया, अब आया है । चल सुलफी में तंबाकू भर कर ला ।"

गोविंदा ने सोचा दारू पिये आदमी से क्या बात करनी । उसने वापस जाने का मन बनाया, मगर वह कुरिया से मिलने को बेताब था । यह बात मन में रखे हुए उसने हिम्मत कर सांवता से पूछ लिया- "कुरिया नहीं है क्या ?"

काका, मैं तो गोविंदा हूँ, बेसर बनजारा का छोरा ।

"या बिगित तू कहां से आ टपका ? अरे, तू ही तो बिगाड़ रहा है मेरे कुरिया को ।"

"उपर टापरी की बारी के ऊपर आले में सुलफी और तंबाकू रखी है । सुलफी सुलगा कर मुझे पकड़ा दे ।"

"काका, तू जानता है मैं पुजारी बाबा का चेला हूँ । पुजारी बाबा मरते दम तक यह सीख देता रहा कि दारू और तंबाकू से आदमी का शरीर व मन दोनों खराब होते हैं । मैं भी इस तरह की आदत को अच्छी नहीं मानता ।"[244]

हिंदी और मराठी उपन्यास में संक्षिप्त संवाद निम्न है—

[244]वही, पृ.सं. 28.

“सर बात”

“अरे बातें तो तुम खूब बनाते हो। केक लेकर तुरंत पहुँचो।”

“सर मेरी बात तो सुनें”

“क्या खाक सुनें ?”[245]

“वो कौन थे, डाकू या पुलिस....?”

“एक ही सवाल कै बेर पूछोगे देवर !”

“फिर से बता दो न !”

“पुलिस !”[246]

“तो क्या आप को ऐसा कह कर भेजा है ?”

“हाँ, आप ऐसा ही समझ सकते हो।”

“तो फिर क्या इसे मैं शर्त समझूं ?”[247]

“कौनो जिनावर खींच लाया है।”

---

[245]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 197.

[246]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 83.

[247]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 93.

“यहाँ काहे को खींचकर छोड़ेगा जिनावर ?”

“जिनावर का काम नहीं है यह ।”

“और क्या ? गठरी की नोंच-चोंथ नहीं करता जानवर ?”

“किसी आदमी का काम है ?”

“किसका ?”[248]

“तुम कुछ लिख-पढ़ रहे थे ?”

“नहीं तो ।”

“मैंने देखा है । लिखों पढ़ो, इसमें बुराई क्या है ?”

“बस ऐसे ही । नींद आ रही थी न ।”[249]

हिंदी उपन्यासों में संक्षिप्त संवादों के माध्यम से कथा आगे बढ़ते हुए पाठक की रूचि निर्माण करती हैं । इसी तरह के संक्षित संवाद मराठी उपन्यासों में भी परिलक्षित होते हैं ।

“काका, गुल चाय पत्ती उधार देता क्या ?”

“देता हूँ । लेकिन बजार के दिन पैसा देना !”[250]

---

[248]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 309.

[249]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 104.

“मग देज (दहेज) लिया की नहीं ?”

“हाँ लिया। देज, कपड़े.... सब हो गया।”

“तुम्हारा शिक्षण कहाँ पर हुआ ?”

“शिक्षण ?”[251]

“इतनी देर ?”

“देर नहीं तो ?”

“लेकिन तुम तो सवेरे ही गयी थी।”

“उसे निकालना मुँह का काम है क्या ? उसे उपले, लकड़ी गिली होने के वजह से जल नहीं रहे थे।”

“तो फिर निकलके आने का न।”

“बोलने को तुझे क्या लगा, जब अपनी पेट को आग लगती है तो वह कौन बुझाएगा?”[252]

“बाई मैं स्नान करती हूँ !”

“हाँ, कर। लेकिन तुझे ठंडा पानी चलेगा न?”

[250]झेलझपाट, पृ.सं. 34.

[251]ब्र, पृ.सं. 75.

[252]कोळवाड़ा, पृ.सं. 55.

“हाँ चेलगा। मैं स्नान करती हूँ।”[253]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में संक्षित संवादों का साम्य दिखाई देता है। अधिकतर मराठी उपन्यासों में संक्षिप्त संवाद दृष्टिगोचर होते है किंतु हिंदी के कुछ उपन्यासों में संक्षिप्त संवाद दिखाई नहीं देते। जैसेः— ग्लोबल गाँव के देवता तथा गाथा भोगनपुरी आदि।

4.2.2. पल्लेदार (लंबे) संवाद

हिंदी तथा मराठी कुछ उपन्यासों में पल्लेदार संवाद ही अधिक मात्रा में दिखाई देते है। जैसेः— ग्लोबल गाँव के देवता, गाथा भोगनपुरी तथा कोळवाडा आदि।

“जाइए !कोशिश कीजिए। बच्ची लोग आएँगी तो काहे नहीं एडमिशन लेंगे। ज़रूर लेंगे। बाक़ी हॉफ ईयरली परीक्षा होनेवाली है। सबका टेस्ट होगा। टेस्ट के रिजल्ट के हिसाब से क्लास एलॉट होगा। आप लोग के कहने या उम्र देखकर क्लास एलॉट नहीं होगा।”[254]

इसी तरह के पल्लेदार संवाद मराठी के कोळवाड़ा उपन्यास में भी दिखाई देते है। जैसेः—

“अरे तुझे खाना नहीं मिलेगा। खामोशी से पेड़ को छोड़ दे। नहीं तो तुझे जिंदा नहीं छोडूँगा। बाळू ऐसा कहते हुए उसके पीठ पर जुते से मारता है।”

“नको रे..... नको रे..... छोड़... मारो मत.... मैं क्या तेरी बीवी हूँ क्या ?”

---

[253]पारधी, पृ.सं. 26.

[254]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 21.

"बीवी तो नहीं.... नहीं तो क्या हुआ ? मैं तेरा पति होता हूँ । वैसे भी तेरे पति को तूने अघोरी विद्या सिखने के लिए नर बलि दिया है । तब तुझे पति चाहिए ? तेरी इच्छी पूरी करते हुए तुझे गर्भवती भी बना दूँगा ।"[255]

4.2.3. भाव प्रधान संवाद

हिंदी तथा मराठी के उपन्यासों में आदिवासियों पर पुलिस, सेठ, साहूकार, रेंजर, गार्ड, पटवारी आदि के अत्याचार किसी न किसी रूप में हमें दिखाई देते हैं । ऐसे में भावनिक संवादों का लाक्षणिक प्रयोग दिखाई देता है । जैसे कि—

" महिना-भर से जियादा हुआ, ऊ ठीकादार साहब के हियाँ काम पर गया था, तब से भेंट नहीं हुआ ।"

"पैसा नहीं भेजता था तुम्हें ?"

"भेजा था एक दफे बीस रूपैया ।"

"झूठ ?"

"नहीं साहेब, किरिया ले लेईं ।"

"पैसा कौन लाया था ?"

"ऊ एक गो मियाँ जी हैं, का तो नाम है ।"

---

[255]कोळवाड़ा, पृ.सं. 60.

"याद करो।"

"उनका नामवे तो नहीं मन पड़ रहा है।"

"अच्छा यह बताओ कि काली डाकू हो गया है-यह खबर तुम्हें कैसे मिली ?"

"एक ठो आदमी, का तो नाम है, हाँ जोगी, वो ही बताया।"

"कहाँ का आदमी है ?"

"ई तो न मालूम है साहब।"[256]

"आखिर हवालदार खो....खो... हँसने लगा।"

"अरे यह तो सिर चोरी सीना जोरी।"

"तुम ऐसे कैसे कह सकते हो ?"

"अरे, तू पाल में रहनेवाला फासेपारधी है न ?"

"हाँ।"

"पाल में रहनेवाला पारधी घर में कैसे रह सकता है ?"

"क्यों ? वह मनुष्य नहीं है क्या ?"

---

[256]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 126.

"अरे, वह समाज के बाहर पहाड़ पर जंगल में रहनेवाला जंगली मनुष्य है।"[257]

"सोनापुर में है सिदो"

"कब तक रहेगा उधर ?"

"भोर तक।"

"सिडो के साथ और कौन हय ?"

"चारों भाई वहीं जुटेंगे।"

"तीन सौ से ऊपर लड़वइया।"

"सोनापुर में ठीक जगह मालूम ?"

"नदी के किनारे।"

"शिपोय !"

"यह झूठ बोलता हय। सिडो का जासूस हय।"[258] ""

"क्या कह रहा है रे ?"

"कुछ नहीं पानी चाहिए।"

---

[257]पारधी, पृ.सं. 133.

[258]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 319.

"साले यहाँ जंगल में कहाँ पानी मिलता, भोसडीका।"[259]

4.2.4. नाटकीय-संवाद

हिंदी और मराठी उपन्यासों के संवादों में नाटकीय संवाद भी है। जैसे—

"उसके घर में कल का पैदा हुआ छोकरा भी आग ही मूतता था। वैसे इस इलाके में यह कहावत मशहूर थी कि घटले खेरवार और बढ़ले राजपूत। यानी कि खेरवार के घर संपत्ति आ जाए तो वह राजपूत हो जाता है और संपत्ति घट जाए तो फिर निरीह खेरवार आदिवासी बन जाता है।"[260]

"हाला.... जा, आमा ईज जापाय ? लुबू बाकी खिकड़ी ?" ("नहीं... जाओ, मैं तुम्हारी बीवी लगती हूँ क्या मेरा पल्लू खिचने ?")

"इयान लांबजाना बान् हो ना" ("मुझे घरजमाई होना नहीं है, हाँ।")

"डोगे, इंज आम खे ढेगाटे ठेचा कि मी बा...."("देख भला मैं कंकड़ से मारूगी भला....")[261]

"अपने आगे किसी और को भी देखते हो ?"

"बाकी क्या बचा है ?"

"क्या देख लिया ?"

---

[259]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 128.

[260]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 35.

[261]झेलझपाट, पृ.सं. 39.

“तुम्हें ! तुम्हें, देख लिया। तुम चल सकती हो मेरे साथ।”

“हाँ, पर अभी नहीं। अभी वह समय नहीं।”

“ठीक है तब चलना, जब बाप ईनाम की रकम बाँटकर आ जाएँ या मुझे....”

“राणा।”

“हाँ, क्या ? पौर में मोघिया गुरू सोया है, धीरे बोलो।”[262]

“अरे चित्र्या ! तू वकील क्यों नहीं हुआ रे।”

“अरे, हम वकील होने के बाद तुम्हारा वकील का धंधा कैसे चलेगा।”[263]

हिंदी उपन्यास ‘काला पादरी’ तथा मराठी उपन्यास ‘हाकुमी’ में पात्रों के संवाद अंग्रेजी भाषा में आए हुए है। जैसे—

“व्हेन डिड यू केम टू इंडिया, फादर ?”

“नाईनटीन हंड्रेड एंड थर्टी टू।”[264]

हाकुमी में— “वुई शॉ हँव टु थिंक, डॉक्टर”

“यू बेटर थिंक, अँड थिंक फास्ट।”

---

[262]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. Check it.

[263]पारधी, पृ.सं. 08.

[264]काला पादरी, पृ.सं. 43.

“येस डॉक्टर ।”[265]

‘काला पादरी’ उपन्यास में पात्रों के मुख से अधिकतर अंग्रेजी संवाद ही आए है किंतु मराठी उपन्यासों के जो सुशिक्षित पात्र या उपन्यास के नायक है वही अंग्रेजी का इस्तेमाल करते हुए दिखाई देते हैं ।

इस तरह हिंदी और मराठी उपन्यासों में संवादों के माध्यम से कथा को गति देते हुए पाठक की रूचि निर्माण करने का प्रयास रहा है । इन संवादों से पाठक आनंद की ही अनुभूति लेता है । किंतु कुछ हिंदी और मराठी उपन्यासों में संवाद पल्लेदार होने के कारण पाठक को थोड़ासा नीरस लगने लगता है । लेकिन सभी उपन्यासों के कथा एवं संवाद पाठक को आनंद देने वाले हैं ।

4.3. देश, काल और वातावरण

उपन्यास की कथावस्तु के विकास में देशकाल अथवा वातावरण की प्रमुख भूमिका होती है । इसके अभाव में किसी भी उपन्यास की रचना करना मुश्किल हो जाता है । उपन्यास में इसका चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में होता है । वातावरण की परिभाषा देते हुए श्री प्रखर लिखते हैं—“कथानक की गतिविधि, पात्रों का व्यक्तित्व, कहानी का देशकाल (अर्थात् वह जिस स्थान पर और जिस समय घटना होती हुई बताई गई है), कहानी की भाषा और शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य को पाठक तत्कालिक रूप में अर्थात् कहानी पढ़ते-पढ़ते जिस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है, उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है ।”[266]

---

[265]हाकुमी, पृ.सं. 78.

[266]कहानी दर्शन, 311.

देशकाल या वातावरण के अंतर्गत किसी घटना का स्थान, समय, तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, वहाँ के लोगों के रीति-रिवाज़, खान-पान, उनका आचार-व्यवहार, उनकी मान्यताएँ, उनकी श्रद्धा-अंधश्रद्धा, पहनावा आदि सब कुछ आता है । इन सबका उपन्यास में किसी न किसी तरह का चित्रण अवश्य होना चाहिए । इससे उपन्यास और भी अधिक यथार्थ लगने लगता है ।

देश, काल या वातावरण उपन्यास की कथा का केंद्र बिंदु होता है । यही तत्व समसामायिक जीवन की विसंगतियों को अपने समयानुसार रेखांकित करके रचना को अपने लक्ष्य तक ले जाता है । रचनाकार अपनी रचना को परिवेशगत स्थिति को यथार्थ रूप से पाठकों के सामने रखना चाहता है । हिंदी और मराठी के आदिवासी कथा साहित्य में वर्तमान समय की मानवीय संवेदनाओं के साथ जुड़ा होने के कारण आज हमें अधिक प्रासंगिक लगता है । प्रासंगिकता की सच्चाई के कारण उसका साहित्य विशेष रूप से देश-काल से ऊपर सार्वदेशिक और सर्वकालिक सार्थकता सिद्ध करता है । दूसरे शब्दों में कहें तो इन कथाकारों ने देश के विविध अछूत अंचलों की टोह ली है । हिंदी और मराठी लेखकों ने सिर्फ साहित्य के माध्यम से ही नहीं बल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उन सभी स्थितियों को देखा, परखा और अनुभव किया है । इन उपन्यासों के देश, काल, वातारण को हम निम्न रूप में देख सकते हैं—

'टाहो' उपन्यास के आदिवासियों का गाँव जंगल से ढका हुआ है । उपन्यास में महाराष्ट्र के डोंगरगाँव नामक गाँव के परिसर का वर्णन किया गया है इसमें आदिवासी देश की परछाई दिखाई देती है । "पहाड़ के पीछे से सूरज धीरे-धीरे ऊपर आगे लगा । पंछियों की चहचहाट शुरू हुई । डोंगर गाँव की घाँस की झोपडियाँ कोमल धूप में चमक रही थी । झोंपड़ी की घाँस धीरे-धीरे गरम होती गई । पिंजरे की मुर्गियाँ अपनी भूख मिटाने के लिए भाग निकली । छोटे-छोटे नंगे बच्चे आँख मलते उठ बैठे । सारा डोंगरगाँव जाग गया था । कुछ औरतें नज़दीकी नहर पर मटके लेकर कतार में खड़ी थी । नहर के पानी में छोटे-छोटे कंकर टकरा रहे थे । ......

डोंगरगाँव में औरत, मर्द, बच्चे सभी को महुए की शराब पीने की आदत थी। शराब पीना और शिकार करना इस डोंगरगाँव की दिनचर्या थी।"[267] इससे यह दृष्टिगोचर होता है कि, आदिवासियों के गाँव, रहन-सहन, वातावरण तथा दिनचर्या सभी निसर्ग निर्मित हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' में देश, काल,वातावरण के लिए लेखक ने बरवे जिला तथा कोयलबीघा का भौंरापाट नामक गाँव के जंगल-पहाड़ों पर रहनेवाले असुर जनजाति का चित्रण किया है। जैसे—"यह अद्‌भुत हथेलियों की छापवाले चित्र न केवल दरो-दीवार पर बल्कि खेतों-खलिहानों, जंगल-बगानों, खानों, नदी-नालों, चुआँ, पझर, सोतों, सितारे, कई-कई सूरज, कई-कई चाँद, हमारा पूरा ब्रम्हांड, हमारी अपनी आकाशगंगा और पूरे कायनात की लाखों-करोड़ों आकाशगंगाओं के अनंत ब्रम्हांड।"[268]

'टाहो' एवं 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में वातावरण निर्मिति झोपड़ी से लेकर काँक्रेट के घरों तक की है। किंतु 'टाहो' उपन्यास में महाराष्ट्र के आदिवासी बहुल क्षेत्र का उल्लेख हुआ है लेकिन 'ग्लोबल गाँव के देवता' में झारखंड के अतिबहुल क्षेत्र का वर्णन है। 'टाहो' में डोंगरगाँव का ही चित्रण है किंतु 'ग्लोबल गाँव के देवता' में पाथरपाट से लेकर आफ्रिकाके खंडहरों का चित्रण मिलता है।

गाथा भोगनपुरी, झेलझपाट, जहाँ बाँस फूलते हैं, हाकुमी, एका नक्षलवाद्याचा जन्म, अल्मा कबूतरी, तंट्या, जो इतिहास में नहीं है, पारधी, जहाँ जंगल शुरू होता है, कोळवाडा तथा 'ब्र' उपन्यास के वातावरण में आदिवासियों के रहन-सहन, पर्व-त्यौहार, कामकाज तथा

[267]टाहो, पृ.सं. 12.

[268]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 23.

झोपड़ियों का चित्रण हुआ है ।'गाथा भोगनपुरी' में रखलुआ गाँव का चित्रण है तो झेलझपाट उपन्यास में तारूबांद्या गाँव का चित्रण है । इन दो उपन्यासों के वातावरण में बहुत-सी समानताएँ दिखाई देती हैं । जैसे—"गाँव का तीसरा हिस्सा, जोकि इन दोनों हिस्सों से काफी दूर था, आदिवासियों का हिस्सा था । यहाँ मकान नाम की कोई चीज नहीं थी । सब झोंपड़े थे । इन झोंपड़ों की संख्या घटती-बढ़ती रहती थी क्योंकि ये आदिवासी एक जगह ज्यादा दिन टिककर रहने के आदि नहीं थे ।..... जंगल की लकड़ी बीनना, शहद इकट्ठा करना, जंगली जानवरों का शिकार, तेंदू की पत्ती, कहीं-कहीं खेती । बस यही सब था जो ये लोग किया करते थे । जब से जंगल विभाग ने जंगलों का विकास करने का बीड़ा उठा लिया था, तब से इन लोगों के जीवन में तब्दीली आ गयी थी । अब ज्यादातर गाँवों में आदिवासी बस्तियाँ बस गई थीं । रखलुआ गाँव की इस बस्ती का दिन सूरज छिप जाने के बाद शुरू होता था । मर्द लोग भट्टी की खिंची महुए की देसी दारू की चुस्कियाँ लगाते थे । दारू पीने के बाद ये लोग बोलना शुरू करते थे ।"[269] फिर गीत-संगीत नृत्य का आयोजन किया जाता था ।

'झेलझपाट' उपन्यास में भी वातावरण का चित्रण कोरकू जनजाति के संदर्भ में आया है । जैसे—"पहाड़ के माथेपर तीस-चालीस घाँस के झोंपड़ों में कोरकू ढाणा (वाडा) झोंपड़े आमने-सामने दो कतारों में । बीच में बड़ा-सा रास्ता, सागवान के पत्ते तथा घाँस से ढके हुए झोंपड़ों के आगे-पीछे ऐसे दो तरफ ड्योढ़ी । इन आदिवासियों को ताला-चावी से नफ़रत था । नितांत मनुष्य पर भरोसा था । झोंपड़ियों के आगे आंगण में चबूतरा जो गोबर से लिपने से सुबक

[269]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 14.

दिखाई दे रहा था। मिट्टी के दो चबुतरे बना कर उनपर सागवान के लकड़ियाँ डालकर उसी का बेंच बनाते।"[270]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में वातावरण का चित्रण इस तरह हुआ है कि—"तुईवाइ (मिजोरम की प्रमुख नदी) पर इस मौसम की रातें बहुत गहरी होती हैं। दमनकारी खामोशी लिए स्लेट जैसे काले आसमान में जब कोई सितारा टूटता है तब धूसर जंगल सुनहरी बिजली की तरह चमकता है, जिसका प्रतिबिंब निर्मल जल के बहाव में भागता-सा दिखता है। ढलानों से चिरती सर्द सूखी वायु में भाटिन, निबुठा और बुढियागुच्छ के फूलों की खुशबू गुरिल्लों के इक्का-दुक्का टाट-टप्परों में भरे जाति है।"[271]

मराठी के 'हाकुमी' उपन्यास का नायक कन्ना आदिवासियों के रहन-सहन के बारे में अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहता है कि—"यहाँ के झोंपड़पट्टियों के लोग भी मेरे कांदोड़ी गाँव से अधिक श्रीमंत दिखाई देते है।"[272]'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में वातावरण निर्मिति लेखक शुरू में ही करता है—"ग्यारह झोपड़ियों की बस्ती। वह गाँव खुर्द (बड़ा) हो या बुद्रुक (छोटा) यहाँ कोई सुविधा नहीं थी। जहाँ पर बावड़ी न हो तो वहाँ अन्य सुविधाएँ कहाँ होगी।"[273] इसी तहर 'जो इतिहास में नहीं' है उपन्यास की वातावरण निर्मिति दिखाई देती है। लेखक ने हारिल के माध्यम से वातावरण का ताना-बाना बुना है—"जब बाँसुरी की तन से मन संतुष्ट हुआ तो हवा कुछ और तेज हो चली थी। फगुनहट पवन के झोंके खाते जागे-जागे खेत,

---

[270]झेलझपाट, पृ.सं. 04.

[271]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 24.

[272]हाकुमी, पृ.सं. 05.

[273]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 01.

हारिल को लगा फसलों के भी कान होते हैं । कई-कई कानों से सुन रही थी प्रकृति झुनझुनवाँ पहाड़ की तराई में बजती बाँसुरी की टेर । सुर-सरिता में नहा रही थी धानी रंग चूनर रहने, पीली घूँघट डाले सरसों की जवान फसल ।"[274]

'जहाँ जंगल शुरू होता है' उपन्यास का वातावरण बाल्मिकीपुर के जंगल-पहाड़ों के बीच रहनेवाले थारू जनजाति के लोगों के रहन-सहन, सांस्कृतिक चित्रण, नृत्य आदि के रूप में किया गया है । लेखक उपन्यास के शुरूआत में ही वातावरण निर्मिति करता है—"किसी सुहाने सुबह को, जब सारा आलम सँवलाया-सँवलालया हो... एक परिंदा मंथरा गति से अपने डैनों को हिलाते हुए उड़ चले, उगलनेवाले सूरज के लाल कैनवस पर एक काला-काला रेखाचित्र-सा छा जाए- कुछ इसी तरह की यात्राओं की कल्पना ।"[275] इसी तरह का वातावरण मराठी के 'तंट्या' उपन्यास में भी दिखाई देता है । जैसे—"नाला-नहर का खिलखिलाता हुआ पानी घर-झोंपड़ियों के दिवारों से ट्करा रहा था ।"[276]

'पारधी'उपन्यास में वातावरण का चित्रण करते हुए उपन्यास का नैरेटर कहता है कि—"पारधियों के पाल में उसका संसार पारधी जैसा ही फटा-नंगा ।"[277] इसी तरह हिंदी के 'काला पादरी' उपन्यास में वातावरण निर्मिति करते हुए उपन्यासकार ने नैरेटर के माध्यम से अंबिकापुर शहर का चित्रण किया है—"अंबिकापुर कुल जमा एक सड़क की बस्ती थी । देवीगंज मार्ग । इसी के आसपास दो सड़कें और निकली थीं । ब्रम्ह रोड, जिसकी एक गली में हमारा बैंक

[274]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 34-35.

[275]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 07.

[276]तंट्या, पृ.सं. 11.

[277]पारधी, पृ.सं. 11.

था और सदर रोड । इसके अलावा गुरूद्वारा रोड और जोड़ा-पीपल के दो जुड़वां पेड़ एक साथ थे । दोनों के नीचे एक ही चबूतरा था ।"[278]

कोळवाडा उपन्यास में नायक पिता अपने झोपड़ियों का उल्लेख करते हुए कहता है कि, "अरे बाबा पहले ही कोळीयों की गन्ने की पत्तियों की झोपड़ी और ऊपर से बारदान भिगोकर गिला कर रहा है ।"[279]

हिंदी उपन्यासों में आदिवासियों के झोंपड़ियों का चित्रण तो हुआ है किंतु इन झोंपड़ियों को वे नक्षीदार कैसे बनाते हैं उसका उल्लेख नहीं हुआ है । वहीं मराठी उपन्यासों में झोंपड़ियों का नक्षीदार वर्णन किया गया है । मराठी उपन्यासों में आदिवासियों के झोंपड़ियों की संख्या बीस-तीस या ढाणा, वाडा, पाल, पोड तथा पाडा का उल्लेख है किंतु हिंदी उपन्यासों में आदिवासियों के झोंपड़ियों की संख्या मराठी उपन्यासों से कई अधिक हैं । इसी तरह के वातावरण चित्रण हिंदी तथा मराठी के अधिकतर उपन्यासों दिखाई देता है ।

[278]काला पादरी, पृ.सं. 17.

[279]कोळवाडा, पृ.सं. 03.

पंचम अध्याय

समकालीन हिंदी और मराठी आदिवासी उपन्यासों की कथावस्तु और पात्रः तुलनात्मक अध्ययन

समकालीन हिंदी और मराठी के विभिन्न अंगों में से उपन्यासों को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है, उतनी अन्य किसी विधा को नहीं । साहित्य जगत में उपन्यास का प्रादुर्भाव क्रांतिकारी सिद्ध हुआ है । उपन्यास की लोकप्रियता के अनेकविध कारण हैं । पद्य का चरमोत्कर्ष महाकाव्य है और गद्य का चरमोत्कर्ष उपन्यास है । उपन्यास वर्तमान युग के वास्तविक जीवन को दिखानेवाला एक सच्चा प्रतिनिधि है । समाज जो रूप धारण कर रहा है उपन्यासकार उसका चित्रण ही नहीं करता, बल्कि समाज में सुधार तथा परिवर्तन की चेतना जगाता है ।

उपन्यास में हमें मनोविज्ञान की सबसे बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है । महाकाव्य सुनिश्चित सामाजिक व्यवस्था की देन था और उपन्यास औद्योगिक युग की देन है । प्रारंभ में उपन्यासों की रचना केवल मनोरंजन के लिए ही की जाति थी, किंतु आज व्यक्ति, समाज और उनकी बौद्धिकता तथा नैतिक धारणाओं के विश्लेषण के लिए ही उनकी रचना हो रही है ।

हिंदी और मराठी में आदिवासी-जीवन को केंद्रीय विषय बनाकर स्वाधीनतापूर्व काल में उपन्यास का अभाव नज़र आता है । यह निश्चित ही स्वीकारणीय है कि आदिवासियों तथा जनजातियों को लेकर उपन्यासों का लेखन स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद ही हुआ है । साहित्य जगत में जिस तरह समकालीन उपन्यासकारों ने सर्वहारा वर्ग को केंद्रीय विषय के रूप में चित्रित करना आरंभ किया उसी तरह आदिवासी लोगों के जीवन पर भी लेखन शुरू किया । समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की जीवन प्रणाली को अत्यंत संवेदना के साथ अभिव्यक्ति मिली है । विगत तीन-चार दशकों में आदिवासियों का जीवन हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में अत्यंत यथार्थता के साथ अंकित हुआ है । स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद

विकास के अलग-अलग अभियान शुरू हुए और देश के विभिन्न वर्गों के लोग इससे लाभान्वित हुए लेकिन यह सच है कि सबसे अधिक उपेक्षित रूप में आदिवासी ही रहे । यह वही समाज है जो यहाँ का मूलनिवासी है लेकिन उनका निवासस्थान जंगलों, पहाड़ों तथा दुर्गम भागों में होने के कारण विकास की शायद ही कोई योजना उन तक पहुँची है ! अज्ञान और अशिक्षा का साम्राज्य इस देश में सबसे अधिक आदिवासी-समाज में ही फैला हुआ है । शासकीय स्तरों पर तो योजनाएँ बनती रहीं लेकिन आदिवासी-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इससे वंचित ही रहा है । शासक चुप बैठता हो तो बैठे लेकिन संवेदनशील रचनाकार कैसे चुप बैठता? समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासकार निश्चय ही सजग है । हिंदी और मराठी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है ।

उपन्यास साहित्य का मुख्य अंग है । मानव जीवन की गंभीर अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना तथा मानव के अंतःस्थल को स्पर्श करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य होता है । रचना की दृष्टि से विद्वानों ने इनमें छः निम्नलिखित तत्वों का उल्लेख किया है ।

5.1. कथावस्तु या कथानक

कथावस्तु उपन्यास का प्राण होता है, इसकी कथावस्तु जीवन से संबंधित होते हुए भी अधिकतर काल्पनिक होती है । किंतु काल्पनिक कथानक स्वाभाविक एवं यथार्थ प्रतीत हो अन्यथा पाठक उसके साथ तादात्म्य नहीं कर पाएगा । उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से संबंधित केवेल विश्वसनीय और संभव घटनाओं को ही अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहिए तथा तथ्यों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए यही गुण उपन्यास को कहानी से अलग करती है । उपन्यास में एक कथा मुख्य होती है अन्य कथाएँ गौण है । मुख्य कथा, उपन्यास को गति देते रहती है किंतु गौण कथाएँ मुख्य कथा की सहायक तथा विकास करनेवाली होनी चाहिए ।

कथानक के संदर्भ में विनोदशंकर व्यास लिखते हैं—"उपन्यास में कथानक का वही स्थान है जो शरीर में हड्डियों का। जिस प्रकार शरीर के लिए माँस-पेशियों आदि की आवश्यकता आवरण के रूप में होती है, उसी प्रकार भाषा, शैली और चरित्र-चित्रण की उपन्यासों में। बिना हड्डियों के जैसे मांस-पेशियाँ स्थिर नहीं रह सकती, वैसे बिना कथानक के किसी भी उपन्यास का ढाँचा नहीं खड़ा किया जा सकता।"[280]

किसी भी उपन्यास की मूल कथा या कहानी को उसकी कथावस्तु कहते हैं। डॉ. रामलखन शुक्ल ने उपन्यास के कथानक को दो भागों में बाँटा है- 1. सरल और 2. गुम्फित। इस संदर्भ में वे कहते हैं—"सरल कथानक में एक ही कहानी होती है, उसमें सहायक कहानियाँ नहीं होती। गुम्फित कथानक में एक से अधिक कहानियाँ होती हैं। प्रधान कहानी को आधिकारिक और गौण को प्रासंगिक कहते हैं। सरल कथानक के निर्माण में लेखक को अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता, पर गुम्फित कथानक के निर्माण में उसे अधिक सावधान रहना पड़ता है। एक से अधिक कहानियों को एक सूत्र में इस प्रकार गुम्फित करना पड़ता है कि वे आपस में मिलकर एक हो जाए। ऐसा न हो कि किसी कहानी का सूत्र ऊपर से चिपकाया हुआ प्रतीत हो। दो या अनेक कथाओं को इस रूप में रखना पड़ता है कि ऐसा प्रतीत हो कि आधिकारिक कथा के भीतर से ही प्रासंगिक कथा का विकास अनिवार्य रूप में हो गया है।"[281]

लेखक अपनी इच्छानुसार अतीत या वर्तमान कहीं से भी कथानक का चुनाव कर सकता है। वह समाज या मानव जीवन के किसी भी पक्ष को केंद्र बिंदु मान सकता है, जो संभव है, जो स्वाभाविक है उसी का चित्रण ही उपयुक्त है। उपन्यास को विशिष्ट रूप देने में कथानक का विशेष योगदान रहता है। कथानक या कथावस्तु में मौलिकता, स्वाभाविकता, रोचकता,

---

[280]उपन्यास कला, पृ.सं. 110.

[281]हिंदी उपन्यास कला, पृ.सं. 21.

संबंद्धता, आस्वाद्यता तथा सुसंगठन आदि गुण होने चाहिए । उपन्यासकार दो प्रकार के होते हैं— एक कल्पनापर आधारित उपन्यासकार दूसरा वास्तविक जीवन पर आधारित उपन्यासकार । इस बात पर कुछ आलोचकों का कहना है कि, जिस विषय पर लेखक लिखना चाहता है, उस विषय पर लिखने से पहले उपन्यासकार को उन विषयों को अनुभव लेना चाहिए । किंतु लेखक जीवन में इतने सारे अनुभव नहीं ले पाएगा । लेखक की इच्छाशक्ति अगर तीव्र हो तो अज्ञात वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सजीव चित्रण कर सकता है । 'रोबिंसन क्रुसो' डैनियल डेफॉ द्वारा रचितउपन्यास है । यह पहली बार सन् 1719 में प्रकाशित हुआ था और इसे अंग्रेजी का पहला उपन्यास माना जाता है । इस "उपन्यास के लेखक ने समुद्र तक नहीं देखा था । वह इस संदर्भ में ज्ञान प्राप्त किया था ।"[282]इससे यह स्पष्ट होता है किउपन्यासकार को आकर्षक एवं सजीव कथानक के लिए कल्पना का आधार लेना पड़ता है । इसी तरह हिंदी तथा मराठी उपन्यासों के काल्पनिक तथा वास्तविक कथानक का तुलनात्मक अध्ययन देख सकते हैं ।

गाथा भोगनपुरी उपन्यास में किशोर कुमार सिन्हा ने 'कोल' आदिवासी तथा बंधुआ मजदूरों को केंद्र में रखा है । स्थापित व्यवस्था सदियों से अत्याचारित एवं पीड़ित समाज की बलि देती आयी है । यह एक ऐसा उपन्यास है जो आदिवासियों के जीवन को प्रस्तुत करता है उपन्यास का नायक बँगडू और उसकी पत्नी रमई, दादूसिंह के पास चाकरी करते हैं । जो उनके पूर्वजों ने 20 रूपए का ऋण लिया था, उसके सूद देने में ही उसकी तीन पीढ़ियाँ चाकरी करने में बिताती हैं । दादूसिंह उनसे केवल चाकरी ही नहीं करवाता बल्कि रमई के शरीर सुख भी लेता है । जब रमई का बदन ढीला पड़ जाता है तब अन्य आदिवासी महिलाओं के साथ अपनी वासनापूर्ति करता है—"चार-पाँच साल पहले तक रमई काफी तंदुरूस्त थी, नौजवान थी । ऊपर से नीचे तक काली जरूर थी, लेकिन उसका बदन किसी तराशी हुई मूर्ति की तरह था ।

[282]साहित्य-साधना, पृ.सं. 162.

दादूसिंह रमई के बदन के हर हिस्से का नाप बता सकता था। आखिर पूरे दस साल उसने उसे ऊपर से नीचे तक नापा था। बहुत-सी आदिवासी औरतें उसकी जिंदगी में आई थी, लेकिन रमई सबसे देर तक टिकी थी। तीन-चार बच्चे हो जाने के बाद से उसका बदन कुछ ढीला पड़ गया था।"[283]

दादूसिंह आदिवासी औरतों का तो मजा चखता था किंतु जो सेठ, साहूकार, ठेकेदार या रेंजर साहब गाँव में आते थे उन्हें भी चकने के लिए देता था। जब कल्लू पाण्डे ठेकेदार गाँव में आता है दादूसिंह रमई को अंदर जाने के लिए कहता। तब कल्लू पाण्डे टोकता है—"अरे... हमसे ही दूर भगाते हो इसे। इब तो कुछ बचा ही नहीं ससुरी में का बात है दादू...।"[284] उन्हें मजदूरी के बदले में एक पसेरी अनाज मिलता था। इसके अलावा दादूसिंह ने बँगडू को ढाई बीघा जमीन भी दी थी। बँगडू की जिंदगी दादूसिंह के इशारे पर चलती थी। कब खेत में काम करना है, कब तेंदू पत्ते तोड़ना है, कब जानवर चराना है सब दादूसिंह तय करता था। उसकी अपनी मर्जी नाम की कोई चीज नहीं थी। रमई से उसकी शादी भी उसकी अपनी मर्जी से नहीं हुई थी। रमई को दादूसिंह गाँव के दूसरे ठेकेदार कल्लू पाण्डे के यहाँ से जुए में जीतकर लाया था। वैसे ये गुलाम रखने का जमाना तो नहीं था, लेकिन रमई कल्लू पाण्डे के जंगली की लड़की थी। जुए में हारने के बाद कल्लू पाण्डे ने उसे दादूसिंह के यहाँ काम करने के लिए भेज दिया था। गाँव के मालिकों के यहाँ मजदूरी करने वाली सभी औरतों की तरह रमई भी दादूसिंह की सेवा करने लगी थी। एक दिन रमई के पेट में दादूसिंह का बच्चा पल रहा था। ठकुराईन ने दादूसिंह को आँखें दिखाई तो दादूसिंह ने रमई की शादी बँगडू से करने का फैसला कर लिया। अब बँगडू दिन में मजदूरी करता और शाम को दादूसिंह की नाजायज औलाद को अपनी औलाद समझकर खिलाता था। गाँव के सभी जंगलियों के लिए यही दस्तूर था।

---

[283] गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 05.

[284] वही, पृ.सं. 06.

उपन्यासकार नेआदिवासी-जीवन के साथ-साथ दलितों का भी चित्रण किया है । आदिवासी अपनी पेट की भूख मिटाने के लिए जंगल मौं शिकार करते हैं । उसी का फायदा दादूसिंह जैसे हरामियों ने लिया हैं । जब गाँव में रेंजर साहब आनेवाले होते हैं तब दादूसिंह आदिवासियों को बुलाकर जबरदस्ती खाल देता है । और आदिवासी टोली में जाँचने के लिए भी कहकर उन्हें फँसाया जाता है—"लो, ये खाल भी तुम रख लो । अब की पेंठ में अच्छे दाम मिल जायेंगे । माई-बाप दुहाई हो कहकर वे अपने झोंपड़ों में चले गये ।.... आदिवासी टोले में तलाशी हुई । पाँच चीतलों की खालें झोंपड़ों से निकलीं । छः आदिवासियों को रेंजर साहब पकड़कर ले गये, और थाने में बंद करवा दिया । डी.एफ.ओ. साहब खुश हुए, महिनों बाद शिकार का कोई केस पकड़ में आया था ।"[285]

आदिवासियों को सरकार, पुलिस, प्रशासन, तहसिल कार्यलाय, सेठ, साहूकारों द्वारा फँसाने का चित्रण उपन्यास में जगह-जगह मिलता है । एक ओर सरकार की ओर से आदिवासियों को बचाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई जा रही हैं और दूसरी ओर से उन्हें फँसाया जा रहा है । विकास के नाम पर आदिवायियों को बेदखल किया जा रहा है । उपन्यास में बँगडू को सरकार की ओर सेजमीन उसे मिली थी लेकिन ठेकेदार अपना दावा छोड़ने को तैयार नहीं थे—"कुछ वर्ष पहले पट्टा अभियान में सरकार से उसे तीन बीघा जमीन मिली थी । ये जमीन, गाँव के चौकीदार के खेतों में से काटकर उसे दी गयी थी । पिछले तीन सालों से वो इस खेत को बोता था, लेकिन हर साल फसल चौकीदार काटकर ले जाता था । तहसिल में कई दरखास्तें दीं लेकिन कभी कुछ हुआ नहीं ।"[286]

---

[285]वही, पृ.सं. 43-44.

[286]वही, पृ.सं. 60.

आदिवासियों को जंगल से बेदखल कर दिया जा रहा था। रखलुआ तथा टिकरिया गाँव में सब मालिकों ने अपने-अपने जंगलियों को नौकरी से निकाल दिया और उन्हें खेतों से बेदखल कर दिया। तेंदू पत्ती तोड़ने के लिए भी मजदूर दूसरे गाँव से बुला लिया था। रखलुआ गाँव के आदिवासियों को कोई काम नहीं दे रहा था। मालिक लोगों ने आदिवासी बस्ती का पानी बंद कर दिया था। इनके विरोध सिकारों कई बार तहसीलदार साहब से मिले। तहसीलदार और थानेदार साहब आकर पानी खोल दिए किंतु फादर सिकारों को धमकियाँ आने लगे—"अगर खैरियत चाहते हैं तो ज्यादा दखलंदाजी न करें।"[287] फादर सिकारों को वहीं रहना था इसलिए चुप हो गये। धीरे-धीरे आदिवासियों की बस्ती उजड़ गयी। वहाँ की झोपड़ियों पर बाहर से आए हुए मजदूरों ने कब्जा कर लिया था।

उपन्यास के अंत में भी आदिवासियों के जीवन मे कोई खास बदलाव नहीं आया था। बँगडू अपना घर, खेत, खोने के साथ-साथ अपना होश-हवास भी खो बैठा था। वह अक्सर कचहरी के आस-पास घूमते रहता और मुकदमे की तारीख पूछता है। ग्रामविकास अधिकारी रामअधार इन भोले-भाले आदिवासियों का हितचिंतक रहता है। वह मानवता के दृष्टिकोण से आदिवासियों का भला चाहता है। आदिवासियों के दुख-दर्द को अपना मानकर इन्हें सलाह देते रहता है किंतु पंडित शिकमसिंह तबादला करवा लेने की धमकी देते हुए कहता है—"देख भाई रामअधार, बंधुआ मजदूरों का उद्धार तो तुमने कर लिया, अब अपने उद्धार की बात भी सोचो। मुझे पता लगा है कि तुम्हारे पीछे कुछ लोग पड़े हुए हैं। जान को खतरा है। रात-बिरात तुम दफ्तर से घर जाते हो। पत्ता नहीं कौन पीछे से लाठी-बल्लम मार दे। चिड़िया की तरह चीं हो जाओगे और किसी को पता भी नहीं लगेगा। अपने बीवी-बच्चों का ख्याल करो और तबादला

[287]वही, पृ.सं. 119.

करवा लो भला।"[288] डर के मारे ग्रामविकास अधिकारी रामअधार अपनी तबादला करवा लेता है। इसी से उपन्यास समाप्त होता है। समाज में मानवीयता को जो जीवित रखनेवाले हैं उन्हें ही ये सेठ-साहुकार नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

झेलझपाट उपन्यास में कोरकू जनजाति के जीवन का चित्रण किया गया है। कथानक में केरू तथा फुलय की प्रेम कहानी है। उपन्यास का नायक केरू मैट्रिक तक पढ़ा-लिखा युवा कोरकू है। इसलिए नायिका फुलय उससे बहुत प्यार करती है और अंत में अपना जीवन न्यौछावर करती है।

कथानक के शुरूआत में लेखक कोरकू तथा गवळी जाति का चित्रण कर तारूबंद गाँव का परिचय देता है। एक ही गाँव में रहनेवाले दो भिन्न जाति के लोगों की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक भिन्नता को दर्शाता है। अन्य आदिवासियों के तरह ही कोरकू जनजाति में दरिद्रता, भूखमरी, गरीबी आदि व्याप्त है। वर्तमान समय में मनुष्य ने मनुष्य पर की विश्वास खो बैठा है। किंतु आदिवासी-समाज में आज भी वह विश्वास बरकरार है। इसी का चित्रण करते हुए लेखक कहता है—"माथे पर कोरकू ढाणा (बस्ती)। दो लाईन आमने-सामने तीस चालिस घास की झोपड़ियाँ। बीच में बड़ा-सा रास्ता। झोपड़ियों को आगे पीछे से दो दरवाजे थे। मनुष्य पर विश्वास होने के कारण इन्होंने कभी चावी-ताला नहीं देखी थी। हर झोपड़ी के सामने बड़ा आँगन, घोबर से लिपने के बाद सुबक एवं सुंदर दिखाई दे रहा था। आँगन में दो सागवान के लकड़ियों से बनाया हुआ बेंच।"[289]

गवळी लोगों के पास धन, दौलत, शौहरत, संपत्ति है किसी भी चीज की कोई कमी नहीं है। उसी तारूबंद गाँव में कोरकू के पास कुछ भी नहीं। लेकिन इस बात का कोरकू कभी ईर्ष्या

---

[288]वही, पृ.सं. 120.

[289]झेलझपाट, पृ.सं. 04.

या द्वेष नहीं किया । वह केवल शराब और नाचने के शौकिन थे । कभी संपत्ति जुटाने के फिराक में नहीं रहते थे । उन्हें कल की चिंता नहीं थी । इसलिए गरीबी एवं दरिद्रता में जीवन बिता रहे थे । फुलय का बाप मोपा पटेल दिन रात शराब पीता है । उसे कंपनी देने के लिए विठू, संपत रहते थे । फुलय महुआ के फूल तोड़कर लाती और उसी से उदरनिर्वाह करती है । मोपा की पत्नी चैतुला को जंगली भालू ने फाड़ दिया था । फुलय की उम्र बढ़ती जा रही थी किंतु मोपा को उसकी चिंता नहीं थी । इसलिए फुलय कोरकू जनजाति का ही तुमला पटेल के बड़े लड़के केरू को पसंद करती है । केरू ने चिंचोण्या आश्रम पाठशाला में मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी इसलिए वह धोती कुर्ता न पहनते हुए शर्ट-पँन्ट पहनता है । फुलय केरू को मन ही मन अपना लेती है और उसको चाहने लगती है । कासम मण्यारीवाला शराबी मोपा का फायदा उठाते हुए फुलय को जाल में फँसाने के लिए मोपा को खिलाता-पिलाता है । किंतु केरू और फुलय का प्रेम उसे बाधा डालनेवाला था । तब कासम मण्यारीवाला ने केरू को लालपरी (नशे की गोली) बेचने के झूठे केस में फँसाता है । कासम का फुलय के घर में आना-जाना केरू को पसंद नहीं था वह फुलय पर संशय करने लगता है और फुलय से बात करना बंद करके उससे दूर-दूर रहता है । फुलय अपने प्रेम के खातिर कासम मण्यारवाले को मरे हुए शेर की मूँछ खिलाकर मार डालती है । फिर भी फुलय को केरू पास आने नहीं देता । अंत में केरू मछली पकड़ने कुंडी (नहर) पर जाता है और उसी में डूबकर उसकी मृत्यु हो जाति है । इसी सदमे से फुलय भी उसी कुंडी में कूदकर अपनी जान दे देती है ।

लेखक ने केरू और फुलय की प्रेम कहानी के साथ-साथ गवळी समाज का भी चित्रण किया है । गवळी समाज अपनी गाय को बचाने के लिए शेर को मार भगाते हैं । इसलिए नए कानून (प्रोटेक्ट टायगर) के तहत उन्हें गाँव से भगाया जाता है । कोरकू समाज निसर्गावलंबी होने का कथानक में दिखाई देता है । शेर को डरानेवाला कोरकू अब भालूसे भी डरने लगा था । कोरकू समाज डोंगरदेव, वाघदेव की पूजा करते हैं । उन्होंने गाँव के नज़दीक एक बड़ा-सा इमली

के पेड़ के नीचे मुंडाघर बनाते हैं । मुंडाघर का महत्त्व बताते हुए कहता है—“आस-पास नाग प्रतिमा.... नाम का मतलब कोरकूओं के पूर्वज.... माथेपर सूर्य का प्रतीक.... पीछे चंद्रकोर.... घोड़े पर सवार तथा नृत्य करते हुए पूर्वजों की नक्षीदार आकृति दिखाई देती है ।”[290]

कोरकू समाज में शराब का महत्त्वपूर्ण स्थान है । महुआ के फूल जमा करना, जंगल से लकड़ी काटकर नजदीकी तालुका में बेचना । दिन भर मेहनत करके रात शराब और नाच-गाने में बीता देते हैं । कोरकू समाज के अज्ञानता के कारण उन्हें खंडेलवाल मारवाडी, सामान गिरवी रख लेता है और उन्हें फँसाता है । उसी तरह रहीमसेठ भी महुआ फूल खरीदकर भाव कम देते रहता है । साथ ही कोरकू जनजाति की महिलाओं के लिए सरकार साड़ियाँ देती है उन साड़ियों के पंद्रह रूपये में लेकर वह उन साड़ियों को दोगुने दाम पर बाहर बेचता है । सरकारी संस्था के अधिकारी भी कोरकू स्त्रियों के अंगूठे कोरे कागज़ पर लेकर उन्हें दो रूपए देकर उनकी अज्ञानता का फायदा उठाते हैं । खंडेलवाल, मारवाडी, मुकादम, रहिमसेठ, कासम मण्यारीवाला कोरकू समाज का शोषण करते हुए दिखाई देते हैं ।

उपन्यास के कथानक में लेखक ने कोरकू समाज में होली त्यौहार के महत्त्व को स्पष्ट किया है । कोरकू समाज में होली त्यौहार का युवक-युवतियों के लिए विशेष महत्त्व है क्योंकि इस त्यौहार में युवक-युवतियों के शारीरिक संबंध पक्के होते हैं । कुछ युवक-युवतियाँ भागकर शादी कर लेते हैं तो कुछ युवतियाँ युवकों के घर घुसती हैं । कोरकू समाज होली के दिन ‘सगाई बाजार’ लगते हैं । इस त्यौहार का महत्त्व तथा वर्णन इस प्रकार मिलता है—“वे सज-धज कर कमर हिला रही थी । कभी झुककर.... कभी उलटा.... कभी सीधा... मुँह घुमाते हुए... महिलाएँ.... युवतियाँ नाच रही थी । नदी में पानी की लहरे जैसे डुलती है उसी तरह महिलाएँ

---

[290]वही, पृ.सं. 02.

तथा युवतियाँ डुल रही थी ।"[291] इसी तरह के होली में रमोती, सोमा पटेल के घर में घुसी थी और बुढ़ा हिराजी की लड़की मालय ने हरिसाल (गाँव) के लड़के को लांबजाना को (घरजमाई) लाया था । इन्हीं परंपराओं को, मान्यताओं को, संस्कृति को आदिवासियों ने आज तक बरकरार रखा है । इसलिए आदिवासी संस्कृति का वर्तमान समय में भी महत्त्व अबाध है ।

'हाकुमी' उपन्यास में माडिया गोंड जनजाति का चित्रण है । उपन्यास का नायक कन्ना मडावी है । कन्ना चंद्रपूर जिले के कांदोडी गाँव से मेडिकल (एम.बी.बी.एस.) की शिक्षा पाने हेतु पुणे जाता है । वहाँ कॉलेज के पहले दिन ही सीनियर छात्रों ने कन्ना की रँगिंग लेते हैं । अश्लील तस्वीर दिखाकर पूछते हैं—'तेरी बहन ऐसी ही है क्या?' कन्ना उस तस्वीर दिखानेवाले छात्र को जोर का धक्का देकर खिड़की से बाहर फेंकता है । और सब हकीक़त डीन को बताता है । तब कन्ना की दोस्ती शहर के सारंग के साथ बढ़ती है । सारंग की बहन अनिता से कन्ना प्यार करने लगता है । अपनी मेडिकल की पढ़ाई ख़त्म होते ही कन्ना अपने गाँव कांदोडी आकर लोगों की विनामूल्य सेवा करने लगता है ।

अनिता आदिवासियों में सुधार लाने के सेमिनार, वर्कशॉप ऑर्गनाईज करती है । आदिवासियों के जीवन पर व्याख्यान देती है । किंतु इन सेमिनारों का वर्कशॉपों का कन्ना के दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं था । अनिता को लग रहा था कि वह समाज में उपेक्षित लोगों के लिए कार्य कर रही है किंतु कन्ना अनिता के कार्य को देखकर अचंभित होते हुए कहने लगता है—"अनिता तुम उपेक्षित समाज नहीं देखीं हो । जब देखोगी तो पता चलेगा तुम्हारे सेमिनार और वर्कशॉप से कितना परिवर्तन होगा ।"[292]कन्ना शहरी दोस्तों के साथ अंग्रेजी फिल्म देखने जाता है । शहरी

[291]वही, पृ.सं. 10.

[292]हाकुमी, पृ.सं. 07.

लड़कों ने फिल्म में स्त्रियों के बदन पर अधूरे कपड़े देखकर स्तब्ध रह जाते हैं । तब कन्ना सोचने लगता है—"ये लोग अगर मेरी दुनिया देखेंगे तो क्या कहेंगे इसका अंदाजा लगा रहा था ।"[293]

कन्ना की समाजकार्य में रूचि थी । इसलिए वह डॉक्टर बनने के पश्चात निःस्वार्थ भावना से समाज सेवा करते हुए दिखाई देता है । किंतु कन्ना की यह निःस्वार्थ सेवा कांदोडी के भूमया को पसंद नहीं थी । इसलिए भूमया तथा पेरमा उससे द्वेष करते हैं । गाँव में तल्लोई तथा दूसरे छोर पर पोच्चम अव्वल (देवी) है । उसी देवी के ये दो भगत है । लोगों में अंधश्रद्धा फैलाकर नरबलि लेते हैं । गाँव के बुजुर्ग इनके चंगुल में फँसते हैं । कन्ना का पिताजी डोबा भी गाँव का पटेल होते हुए भी इन भगतों को सहकार्य करता है परंतु इस अंधश्रद्धा, अघोर प्रथा को तोड़ने का काम कन्ना करता है ।

गोंड जनजाति में पहले घोटुल विवाह पद्धति थी । लेकिन अब घोटुल की जगह रेलॉ ने ले ली । युवक-युवतियाँ इस रेलॉ में रात-रात नाचते हैं और लड़की अपनी पसंदीदा लड़के का हाथ पकड़कर जंगल में ले जाति है और उसके साथ संग (संभोग) करती है । बाद में विवाह करते हैं । कोई लड़की किसी लड़के के घर पानी का घड़ा लेकर घर में घुसती है तो उसके परिवार वाले घर में लक्ष्मी आयी कहकर उसको स्वीकार करते हैं । इस समाज में लांबड्या (घरजमाई) होने की परंपरा है । लांबड्या लड़की को दहेज देकर आता है । दहेज की रकम चुकता हुए तक लांबड्या को उस लड़की के साथ संग करने नहीं देते, उस लड़की से बात तक नहीं करने देते । किंतु लड़की को यह स्वतंत्रता दी जाति है कि वह किसी भी रेलॉ में जा सकती है और किसी के साथ भी संग कर सकती है । ये स्त्रियों को दी गई स्वतंत्रता है । आदिवासी-समाज में स्त्रियों का सम्मान किया जाता है ।

[293]वही, पृ.सं. 09.

कन्ना और रूपी की प्रेम कहानी यहीं से शुरू होती है। कन्ना के साथ रूपी रेलॉ में संग करती है । वह कन्ना से शादी करना चाहती है किंतु कन्ना को वह मुमकीन नहीं था क्योंकि उसे मेडिकल की पढ़ाई करने पुणे जाना था। कन्ना जब कभी गाँव आता है तो रूपी के साथ संग करता। रूपी जब अठारह साल वर्ष की होती है तब उसके घरवालों ने उसकी शादी की तैयारी शुरू करते हैं वह भी कन्ना के भाई जुरू के साथ। जुरू की शादी पहले ही मेसी नामक लड़की से हुई थी और उसके दो बच्चे भी थे। जुरू को यह पता था कि रूपी कन्ना से प्यार करती है। जुरू को पता था कि रूपी कन्ना के लिए अपने घर आ रही है। इसलिए जुरू रूपी को कभी स्पर्श नहीं करता। कन्ना डॉक्टर बनकर जब गाँव आता है तब रूपी गाँव छोड़कर चली जातिहै। क्योंकि समाज कन्ना की ओर उँगली दिखाये उसे पसंद नहीं था। वह गाँव छोड़कर नक्सलवादियों के ग्रुप में शामिल होती है।

उपन्यास के अंत में प्यार का त्रिकोण दिखाई देता है—कन्ना, रूपी तथा अनिता का। कन्ना के लिए अनिता उम्र के तीस पार होने के बावजूद भी शादी नहीं करती। लेकिन कन्ना अनिता को नकारता है। क्योंकि कन्ना अपने स्वार्थ के लिए अनिता की बलि लेना नहीं चाहता था। ये कन्ना का बड़प्पन है। कन्ना सुभाष से कहता है—"अनिता मेरी नहीं होने का पश्चाताप तो मैं सहन कर लूँगा, लेकिन मेरे वजह से अनिता की बलि नहीं जानी चाहिए।[294]"इसी आदर्श विचारों के साथ उपन्यास का समापन होता है।

*'एका नक्षलवाद्याचा जन्म'*माडिया गोंड आदिवासी जन-जीवन को रेखांकित करनेवाला उपन्यास है। उपन्यास का नायक जुरू कुटेर गाँव का सबसे गरीब आदिवासी है। उसकी पत्नी मैना, बड़ा लड़का लालसू, लड़की रूपी तथा सबसे छोटा गोंगलू है। इन गरीब आदिवासियों ने जंगल पर आधारित कोई भी काम करके अपना उदरनिर्वाह करते आ रहे थे। किंतु इन्हें पुलिस,

---

[294]वही, पृ.सं. 110.

प्रशासकीय अधिकारी, गार्ड, रेंजर तथा नक्सलवादियों ने परेशान करने पर तुले हुए थे । आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन से खिलवाड़ तो किया ही है लेकिन वे आदिवासियों के बहु-बेटियों के साथ खिलवाड़ कर रहे थे । इसी चिंता को व्यक्त करते हुए जुरू कहता है—"सरकारी लोगों को धान, मुर्गी, शराब और वक्त आने पर औरत-लड़की भी देनी पड़ती है ।"[295]

भोले आदिवासियों के घर से ठेकेदार पैसे देकर मुर्गी ले जाते थे किंतु वहीं पैसे उनकी मजदूरी देते समय उन्हीं से लूटता था । जब ठेकेदार का परिवार गाँव में रहने के लिए आता था तब आदिवासी स्त्री-पुरूषों को रात भर नाच दिखाना पड़ता था । गाँव का पटेल गाँववालों को लूटकर गार्ड, ठेकेदार, पुलिस, प्रशासकीय अधिकारियों का पेट भरता था । जुरू इस गाँव का न होने के कारण पटेल उसका तिरस्कार करता है । जुरू का एकमेव मित्र कोपा था । आदिवासियों का एक 'कोंबड़ा बाजार' (मुर्गा बाजार) भरता था । उस बाजार को भी पुलिसवाले नहीं छोड़ते थे । वे गाँववालों से सात सौ रूपये वसूलते थे ।

इधर ठेकेदारों ने आदिवासियों से मुफ्त में काम करवाकर, कोरे कागज़ पर उनके अंगूठे लेकर उन्हें गाली-गलौच करते हुए जंगल के रेंजर साहब बाहर निकाल दे रहा था । जुरू एक कोने में खामोश खड़ा था । लमडी का नंबर आते ही वह कहने लगता है कि- 'मुझे मेरी मजदूरी के पैसे जब तक नहीं मिलेंगे तब तक मैं अंगूठा नहीं लगाऊँगा ।' इतना कहते ही लमडी को गार्ड ने लातो से भूनता है । गाँव का कन्, झोरण्णा पाटील होते हुए भी लमड़ी को कमरे में ले जाकर रेंजर पीटते हुए लमडी के मुँह में पेशाब करता है । रेंजर का पेशाब लमड़ी के मुँह, नाक, कान में पड़ने लगता है । जुरू खिडकी से झाँककर देखता है तो उसके रौंगटे खड़े हो जाते हैं । वह अंदर जाकर साहब को धक्का देकर लमडी को बाजू में लेता है । तब पुलिसवाले जुरू को भी पीटते हैं,

[295]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 03.

जुरू बेहोश हो जाता है। सवेरे लमडी पुलिस में शिकायत दर्ज़ करता है किंतु रेंजर कन्ना पाटील से जवाब लेता है कि- 'जुरू के साथ कोई मारपीट नहीं हुई थी।' आदिवासियों के लिए सारे दरवाजे पहले से ही बंद कर दिये जाते हैं। वह अपनी व्यथा किसको सुनाएँ? आदिवासी साहित्य का आस्वाद लेते हुए हर पाठक को यह सवाल सताता है।

कोपा का भाई मालू गाँव में आकर नक्सलवादियों के संदर्भ में बताता है। वह कहता है कि-अब तुम्हारे गाँव में नक्सलवादी आनेवाले है। तब जुरू को लगता है- 'नक्सलवादी लोग अन्याय-अत्याचार करनेवाले होते हैं।' लेकिन जब नक्सलवादी महादु के खेत में मिटिंग लेते हैं तब जुरू का लड़का गोगलु नक्सलवादियों की ओर आकर्षित होता है। गोगलु पहले-पहले ख़बरी (ख़बर देनेवाला) का काम करता है। गोगलु राजण्णा के प्रभाव के कारण नक्सलवादी बनता है। तब जुरू भी नक्सलवादियों से एकरूप हो जाता है और गोगलु को नक्सलवादियों के स्वाधीन करता है। मैना भी विरोध न करते हुए सहमति दर्शाती है। जुरू जब से नक्षवादियों से काम करने लगा था तब से गाँव में कन्ना पाटील उसे इज्जत देने लगा था। नक्सलवादियों के कारण आदिवासियों को ठेकेदार, गार्ड द्वारा सताया नहीं जा रहा था। किंतु पुलिसवालों का अत्याचार बढ़ गया था। दोनों के बीच आदिवासी फँस गये थे। पुलिसवालों को दादा लोगों के बारे में कुछ बताया तो दादालोग मार रहे थे। और दादा लोगों को पुलिसवालों के बारे में कुछ बताया तो पुलिसवाले मार रहे थे।

जब से जुरू नक्सलवादी पार्टी में शामिल हुआ था, तब से जुरू से जुरू दादा बन गया था। जुरू को गोगलु के ऊपर अभिमान था किंतु लालसू के संदर्भ में शंका रहती है। वह अपनी पत्नी मैना से कहता है—"पढ़-लिखकर बड़ा होगा तो वह थोड़े ही हमारे पास रहने वाला है ?"[296]

[296]वही, पृ.सं. 189.

उसके पापों के पैसें का भागीदार होना जुरू को पसंद नहीं था। डिस्ट्रिक्ट कमिटी का मेंबर होने के बाद जुरू दादा लोगों की ख़बर लेकर अक्कनपल्ली जाता है तब एसआरपीएफ वाले जुरू के साथ-साथ बहुत सारे आदिवासियों को पकड़कर ले जाते हैं। इन आदिवासियों में से लमडी डर के मारे अपनी जुबान खोलता है। साथ ही लमडी जुरू को भी फँसाता है। किंतु जुरू को इस बात की कोई चिंता नहीं थी। निडरता से वह पुलिसवालों से सवाल करता है—"मनुष्य को पानी पीने का भी ऑर्डर लेना पड़ता है ? ये पुलिसवाले बादलों को ऑर्डर देंगे क्या, बारीश न होने का ? हवा को ऑर्डर देंगे क्या, न बहने का ? जंगल के पेड़ों को ऑर्डर देंगे क्या, आदिवासियों को उसके फल,फूल न देने का ?"[297]

जुरू को पुलिसवालों पर दया आ रही थी। जब उसके जैसे गरीब आदिवासी को नक्सलवादी कहकर पकड़ रहे थे। जमादार अपने बीवी-बच्चों के लिए मूल नक्सलवादियों को छोड़कर इन आदिवासियों को पकड़ रहे थे। पुलिसवालों ने जुरू जैसे गरीब आदिवासी को नक्सलवादी का वेश परिधान कर, शस्त्रों के प्रेस-कॉन्फरेन्स बुलाकर पत्रकारों को बताते हैं—"जब हम इसे विरासत में लिए है तब इतने सारे शस्त्र इसके पास थे।"[298] जुरू को मराठी का ज्ञान न होने के कारण उसके ऊपर कौन से आरोप लगा रहे थे उसे पता नहीं था। जुरू को देशद्रोह के आरोप में फँसाया जा रहा था। एक नशेड़ी पुलिसवाला जिसका हाथ पी-पीकर टूटा था उसका नाम शौर्य पदक के लिए भेजा जा रहा था। प्रेस-कॉन्फरेन्स में एक दाढ़ीवाला पत्रकार जुरू से पूछता है कि, आपका देश कौन-सा है ? तब जुरू कहता है—'मावा देश इद माडिया देश

---

[297]वही, पृ.सं. 218.

[298]वही, पृ.सं. 228.

।' वह पत्रकार डीजी साहब से कहता है कि, जिसे अपने देश के बारे में पता नहीं उसके ऊपर संविधान के अनुसार देशद्रोह का आरोप लगाना कितना योग्य है ?

जुरू को उसका लड़का लालसू जामीन पर बाहर लाता है । जुरू को सुरामडला पुलिस थाने में हर दिन हाजिरी देनी पड़ती है । जुरू हाजिरी लगाने न जाते हुए दादा लोगों के पास जाता है । जुरू के घर की तलाशी में रायफल और कुछ शस्त्र जब्त करते हुए जुरू को फरारी नक्षलीवादी घोषित करते हैं । तब जुरू राजण्णा के उपदेश से नक्सलवादी बनता है । भारत में ऐसे ही अन्याय, अत्याचार, शोषण के कारण नक्सलवादियों का जन्म हो रहा है । उपन्यास इसी कथा के इर्द-गिर्द घूमता नज़र आता है ।

*'जहाँ बाँस फूलते हैं'*उपन्यास के कथानक में उत्तर-पूर्व की मिजो आदिवासियों के जीवन संघर्ष को उपन्यास में चित्रित किया गया है । मिजो आदिवासियों का शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार सरकार तथा वाइ(गैर-मिजो) लोगों द्वारा किया जाता है । अपने ही देश में, भारत के मूलनिवासी होते हुए भी वे पराया लगने लगते हैं । भारत स्वतंत्र होने के बाद सरकार की यह नीति रही है कि पूरा भारत एक सूत्र में बंधे रहे । लेकिन झा जैसे अधिकारी उन्हीं की धरती पर उन्हीं के औरत-बच्चियों के देह से खिलवाड़ करता है । जोरमी, झा का शिकार बनती है । वह गर्भधारण करती है तब मिजो परंपरा के अनुसार पंचायत बैठती है तब झा उसी पर ऊँगली उठा है—"ये लड़कियाँ जाने कितने मर्दों के पास जाति हैं । क्या गारण्टी बच्चा मेरा है ?"[299] पंचायत ने झा को चालीस रूपये का दंड लगाता हैं किंतु वह नहीं मानता । गाँववाले उसके दफ्तर में रिपोर्ट करते हैं लेकिन एक वाइ दूसरे वाइ को बचा लिया । इस पर गाँवबूढ़ा कहता है- 'मिजो कभी झूठ नहीं बोलता ।'

[299]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 86.

उपन्यास में गैर-मिजो व्यक्ति को वे वाइ संबोधित करते हैं । वाइ को लगता है कि, मिजोरम पिछड़ा है, गँवार है । दुख, दरिद्र है इसे बदलने का सोचते हैं किंतु यहाँ वाइ दो हैं— "एक तो सरकार है, जो नीति बनाती हैः उन्हें वैसा ही छोड़ दो, सिर्फ़ उन्हें लिखाओ-पढ़ाओं और आरक्षण बदौलत नौकरी दो । सुरक्षा के लिए जरूरी हो तो सड़कें बनवा लो । लोग वाकई भूखों मरने लगें तो थोड़ा अन्न पहुँचा दो । किंतु इन्हें छेड़े नहीं । एक विशाल गणतंत्र की विरासत 'एकता में अनेकता' के उदाहरणस्वरूप इनकी जीवन-पद्धति अक्षुण्य रखो, 'एन्थ्रोपालोजिकल म्यूजियम के पीस' के रूप में । दूसरा इस नीति को क्रियान्वित करने वाले वाइयों का दल है, जो विकास के लिए मिले ले जाकर अपने वतन में सोना बनाता है, यहाँ के सुरा-सुंदरियों का उपभोग इस तरह से कहता है, कि जैसे मिजोरम उसी की जमींदारी हो, उपनिवेश हो और वह इस उपनिवेश का एकमात्र मालिक ।"[300]गैर-मिजो वह उनकी सुविधा के लिए मिजो लोगों को बदलाव का दिखावा करते हैं ।

भारतीय राजनीतिक नेताओं ने आदिवासियों, दलितों, पिछड़ों तथा सामान्य मनुष्य को केवल अपना वोट बैंक बना रखा है । इन लोगों को केवल इस्तेमाल किया जा रहा है । देश में आदिवासियों की स्थिति जानवरों से भी बदतर दिखाई देती है । मनुष्य केवल उपयोग साधन मात्र रह गया है—"जब भी उन्हें जरूरत होती है, वे हमें अपना औजार बना लेते हैं । जरूरत होती हैं तो हमारे संस्कारी संवेदनों को उभार देते हैं । जरूरत होती है तो हमारी संवेदनाओं पर संस्कार का पर्दा डाल देते हैं । अरे भला कहाँ गया था, जब यहाँ के लोग भूखों मर रहे थे ? जब अनाज की तलाश में हथियार उठा लिए तो देश कहाँ से आ गया ? अपने भोजन के लिए सब

[300]वही,पृ.सं. 67.

कुछ करने की छूट जानवरों को भी है। पर यह इंसान है जो आदमी तक के मुँह पर चाबी लगा देता है।"[301]

आदिवासी मिजो समाज की एक विशेषता रही है कि, ये समाज किसी को एक बार दिल से चाहने लगता है तो उसे ताउम्र दगा नहीं देते। लेकिन इन भोले आदिवासियों को झा जैसे गृहमंत्रालय के केंद्रीय अधिकारी लालच दिखाकर फँसाता है। मिजो अधिक बोलता नहीं है लेकिन जब वह बोलने लगता है तो उस पर डटे रहता है। इनके संस्कृति को मिटाने के लिए या उन्हें बेदखल करना हो तो उनके पढ़े-लिखे लोगों को टारगेट किया जाता है। मलसोमा पढ़ा-लिखा होने के कारण उसके विरोध में षड्यंत्र रचाते हैं—"किसी कौम को नपुंसक बनाना हो तो उसे पढ़ाका बना दो। समाप्त हो जाएगा उसका पुरुषत्व। अपने सफेद कपड़ों और चिकनी चमड़ी की रक्षा में इतना तल्लीन हो जाएगा कि उसका सब कुछ इशारों से लूट लो। बहुत हुआ तो दल बनाएगा, समूह लेकर झगड़ा करेगा।"[302] सरकार का एक पढ़ा-लिखा आदिवासी के प्रति इस तरह के विचारों को देखकर लगता है मानवीयता ही खतरे में नज़र आती है।

भारतीय इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रभाषा आदि उनके लिए जैसे एकदम विदेशी हैं और इससे वे कोई संबंध रखना नहीं चाहते। लुशाई जनजाति नहीं, पूर्वोत्तर भारत की अन्य जनजातियों को भी एक सुनियोजित षड्यंत्र के अंतर्गत इस कदर भड़काया गया है कि वे वस्तुस्थिति को जानने-समझने की क्षमता ही खो बैठे है। बाहरी शक्तियाँ उन्हें हथियार ही नहीं पहुँचाती, युद्ध के लिए भी प्रशिक्षित करती है।

लेखक उपन्यास का अंत मिजो संस्कृति से करता है। मेहमान माइकल को गाँव की सीमा तक बिदा करने मलसोमा, चोङ्खूमा आते हैं तब मलसोमा कहता है—"यहीं तक हमारे गाँव की

---

[301]वही, पृ.सं. 59.

[302]वही, पृ.सं. 159.

सीमा है। दूसरे किनारे से बुआलपुई शुरू हो जाएगी। हम मेहमान को अपने गाँव की सीमा तक ही बिदा देने आते हैं।"[303] और रूआलखूमा की कविताओं से उपन्यास समाप्त हो जाता है।

*'पारधी'*उपन्यास में फासे पारधियों के दुर्दशा को दिखाया गया है। उपन्यास में फासे पारधियों के साथ जंगली जानवरों जैसा बर्ताव किया गया है। मानव होते हुए भी उन्हें मानव की तरह जीने नहीं देते, उन पर ठप्पा लगाया गया है कि वे चोरी करते हैं। इसलिए उन्हें पूरा तथाकथित समाज संशय की नज़र से देखता है। उपन्यास में चित्र्या एवं खारी की करूण प्रेम कहानी दिखाई देती है।

शंभुराव वकील फासे पारधी समाज के लिए काम करता है। उनकी किसी भी समस्या को वकील समाधान करता है। जब गाँव-शहर में कहीं पर भी चोरी होती है तो पुलिस पहले फासे पारधियों के पाल/वाड़ा/ पाड़ा पर जाकर उन्हें मारते हुए छानबीन करती है। डर के मारे पारधी गुनाह न करते हुए भी गुनहगार की तरह पसार हो जाता है।

चित्र्या और फौज्या को पुलिसवाले गिरफ्तार करते हैं तो वकील उन्हें जमानत पर छुड़ाता है। पारधी समाज की औरतें रोज भीख माँगती है। फशी भीख माँगते हुए वकील के घर जाति है तब वकील की पत्नी उसे घर में काम पर लगा लेती है। वकील चित्र्या को काम करने की सलाह देता है तो चित्र्या कहने लगता 'हम चोर हैं, हमें कौन काम देगा साहब ?' झूठे केसेस में से चित्र्या को वकील मुक्ति दिलाता है तब चित्र्या के विचार बदलते हैं। कहने लगता—"मुझे अब काम चाहिए। नौकरी चाहिए। मुझे अब चोरी नहीं करनी है। भीख भी नहीं माँगना है।"[304]वकील चित्र्या के नौकरी के लिए आवेदन तैयार करके उस पर चित्र्या का अंगूठा लेता है।

---

[303]वही, पृ.सं. 318.

[304]पारधी, पृ.सं. 43.

कुछ समय पश्चात चित्र्या को पत्र आता है । वह पत्र लेकर चित्र्या और मनी, वकील के घर जाते हैं । चिंताग्रस्त नज़र से माता-पुत्र उस पत्र की ओर देख रहे थे । क्योंकि—'पाकिट का रंग खाकी था । वो सरकारी टपाल था । ऊपर डिपो का मोहर था । वकील ने वह फाड़ा ।' पारधी समाज में खाकी रंग को इतना डरते थे । डिपो में उसे हमाली की नौकरी मिलने पर उसके कई प्रश्न हल होनेवाले थे । किंतु डिपो का वॉचमन उसे अंदर जाने नहीं दे रहा था । वॉचमन, चपरासी, क्लर्क विश्वास न होने के कारण उसे साहब से मिलने नहीं देते । क्लार्क कहने लगा—"ये देख, वह तुम ही हो, ऐसा कुछ पहचान पत्र लाओ । .... उसमें हैं ना मेरा वकील का दाखिला ।.... उन कागज़ों पर हमारा विश्वास नहीं है । तुम उस वकील को ही यहाँ लाओ ।"[305]

डिपो में नौकरी करते हुए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । रोज उसे लोग चोर-चोर कहते हुए सताते है । तब वह मन-ही-मन सोचने लगता है—"सच है...! मैं चोर हूँ...! हम पारधी चोर है...! लेकिन हम पेट भरने के लिए छोटी चोरी करते हैं । हमें चोर कहनेवालों ने मनुष्य जाति से उठकर जानवरों के पंक्ति में हमेशा के लिए बिठा दिया । हमारे ऊपर कितना बड़ा अन्याय है ....!"[306]

पारधी होने के वजह से लोग इन्हें शक की नज़र से देखते हैं । डिपो में नौकरी करनेवाले चित्र्या-खारी को वकील किराये का मकान दिलाता है । किंतु उन्हें लोग रहने नहीं देते । चित्र्या को कहते हैं-'हमेशा चोर, जंगली, जानवर ।' और खारी को कहते- 'ए भिकारी, चोरी के बर्तन यहाँ माँजने आयी क्या ?' सताया जाता था । पारधियों को मानवता से जीने का अधिकार

---

[305]वही, पृ.सं. 50.

[306]वही, पृ.सं. 69.

समाज ने नहीं दिया था । इस संदर्भ में वकील कहता है—"हाँ.... रे, तुम मनुष्य हो... इसी की उन्हें पहचान नहीं है । वैसे उन्हें मौका मिला था पहचानने का, लेकिन उन्हें तुम लोगों को मनुष्य के रूप में पहचानने की इच्छा नहीं ।"[307]

अपने आपको मनुष्य कहनेवाले यह शहरी जानवर चित्र्या और खारी को गाँव में रहने नहीं देते । अपने लोगों के पास जाकर पाल पर रहने के सिवाय उनके पास कोई चारा नहीं था । इस तरह चोर, गुनेहगार के रूप में जीवन जीनेवाले पारधी मानवता के लिए, अपनी खोयी हुई पहचान वापस लाने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं ।

*'टाहो'*उपन्यास बाबाराव मडावी कृत सन् 1998 में प्रकाशित हुआ है । यह उपन्यास आदिवासी-जीवन को समग्रता से उद्‌धृत करने वाला है । आदिवासी साहित्य में यह मौलिक उपन्यास है । इस उपन्यास में आदिवासियों के जीवन–मरण की स्थिति को दर्शाया है साथ ही उनके अंधकारमय जीवन, अंधश्रद्धा, तथाकथित समाज द्वारा अन्याय, अत्याचार, सरकार द्वारा थोपा गया कानून तथा आदिवासियों के प्राचीन एवं तत्कालीन जीवन को बारीकी से समाज के सामने प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास के कथानक में भीम्या मध्यांतर के पश्चात प्रवेश करता है । आदिवासियों को शिक्षा का महत्त्व पता नहीं था जब पता चला तब बहुत ही देर हो चुकी थी । शायद लेखक ने इसी मानसिकता के चलते उपन्यास का नायक भीम्या को देर से प्रवेश दिया है । और भीम्या समाजविकास के लिए भागदौड़ करते हुए परिलक्षित होता है । उपन्यास के प्रारंभ में भामरागड के जंगल में स्वच्छंदता से जीनेवाले डोंगर गाँव के आदिवासियों का चित्रण दिखाई देता है । आदिवासियों ने जंगल को ही अपना जीवन माना है । किंतु उनके जीवन पर चोर गुंड़ों ने पेड़ों

---

[307]वही, पृ.सं. 130.

पर आघात करने आते हैं । पेड़ों पर आघात की आवाज सुनकर आदिवासी अपनी जान की परवाह न करते हुए गुंड़ों पर टूट पड़ते हैं । शहर से आए हुए प्यारेलाल सेठ भोले आदिवासियों में रहकर जंगल तोड़ने के लिए गुंड़ों को लाता है । प्यारेलाल सेठ आदिवासियों में रहकर, अपनापन दिखाकर उन्हीं पर गोलियों की बौछार गुंड़ों से करवाता है । प्यारेलाल सेठ का गुंडा जीप से नीचे उतरकर कहने लगता है—"शेर के मुँह में हाथ क्यों डाल रहे हो ? यह जंगल तुम्हारे बाप का है क्या ? यह जंगल सरकार का है । हम इस जंगल को आग लगा दें, इससे तुम्हारा क्या लेना-देना ?"[308] प्रतिउत्तर में कोंडीबाई मशाल लेकर आगे आते हुए कहने लगती है—"ऐ... ऐ... सूअर के औलाद, यह जंगल हमारा है, इसे हमने बच्चे जैसा पाला है, और तुम इसे लूटने आये हो । समझदारी इसी में है कि चले जाओ ।"[309]

काश्या की लड़की मैना शहरी किशोर बाबू के प्रेम-जाल में फँस जाति है । जैसे शिकारी के जाल में पंछी फँस जाते हैं । मैना जवानी के जोश में सब कुछ भूल चुकी थी । आदिवासी लड़की ने दूसरे समाज के लड़के से विवाह किया तो इन व्यभिचारों से वंश शुद्ध नहीं रहता और समाज के खून में मिलावट होती है । इसलिए जात पंचायत के मुखिया, भूमका तथा नायक अपना अंतिम निर्णय सुनाते हैं—"सुनो... सभी लोग ध्यान से सुनो.... लड़की को काश्या ने खुला छोड़ रखा था, इसलिए काश्या भी गुनहगार है । काश्या की लड़की को तो जिंदगी भर माफी नहीं है । उसे समाज से बहिष्कृत करने का पंचायत का अंतिम निर्णय है । ऐसे में जंगल की स्त्री मजबूत कैसे रहेगी, दृढ़ कैसे रहेगी ? मैना को तो यह गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा । वह तो यहाँ

---

[308]टाहो, पृ.सं. 15.

[309]वही, पृ.सं. 15.

रहने का अधिकार खो चुकी है ।"[310] आदिवासी मन जितना कोमल, मुलायम होता है उतना ही कठोर भी ।

अन्याय, अत्याचार, गुलामी, शोषण सहन करनेवाले आदिवासियों में मानवता भी कूट-कूट भरी होती है । जंगल के मनुष्य जितने कठोर होते हैं उतने ही कोमल भी । समय पर अपने लड़के को भी दान देने में आगे-पीछे नहीं सोचते । दूसरों के दुख को अपना दुख समझते हैं । राम्या मामलेदार साहब को भीम्या को देने से पहले उनसे एक वादा करवा लेता है—"बच्चे पर इस जंगल के ही संस्कार रहने देंगे । बड़ा होने के पश्चात उसे इसी जंगल में छोड़कर चले जाना पडेगा, तब तक आप इसे बड़ा कीजिये । हमें वादा कीजिये की लड़का बड़ा होने के बाद उसे जंगल में ला छोड़ने का ।"[311]और मामलेदार साहब भीम्या को बड़ा होने के बाद लाकर छोड़ने का वादा करता है । यही अलग एवं आदर्श संस्कृति आदिवासियों की रही है ।

सरकार ने जंगल कानून बनाकर आदिवासियों के शिकार करने पर पाबंदी लगा दी । इस कानून से आदिवासियों का जीना मुश्किल हो गया । डोंगर गाँव में प्यारेलाल सेठ की आदिवासियों को लूटने की मुहिम जारी थी । ब्याज के पैसों के लिए जमीन हड़पना शुरू था । डोंगर गाँव के आदिवासी भूमिहीन हो गए । अन्याय, अत्याचार बढ़ता ही गया । इस अन्याय, अत्याचार के जकड़े में डोंगर गाँव के- सदू चाचा, राघोबा, काश्या, राम्या, बजी, कोंडीबाई, पारू, पहाड्या और मैना आदि थे । यह सभी पात्र उपन्यास के पहले पड़ाव में आते हैं ।

भीम्या अपने समाज तथा जन्मदाता माँ-बाप के लिए डॉ. मीरा के प्रेम को ठुकराते हुए कहने लगा—"मेरे समाज की कोई गरीब लड़की मेरी राह देख रही होगी । तुम बड़े बाप की औलाद हो और इतना पढ़ी-लिखीं भी हो । तुम उनके बारे में क्यों नहीं सोच रही हो जो आधे

---

[310]वही, पृ.सं. 19-20.

[311]वही, पृ.सं. 29.

शरीर नंगे रहकर, इस आधे शरीर को भी पेड़ के पत्तों से ढकते हैं ।"[312] इससे भीम्या की आदिवासियों के प्रति वास्तविकता का दर्शन होता है ।

डोंगर गाँव के आदिवासी शिक्षा से कोसो दूर थे । कानून, सरकार, हक का ज्ञान इन्हें नहीं था, किंतु शहर से पढ़कर आनेवाले भीम्या की ओर से अपेक्षाएँ थी । इसलिए भीम्या का स्वागत करने के लिए आतुरतापूर्वक राह देख रहे थे । काश्या अपनी लड़की रमी का ब्याह भीम्या से करने के लिए भावविवश होते हुए वह सोच में पड़ता है कि, मेरी मैना की करतूतों के वजह से भीम्या रमी को स्वीकार करेगा या नहीं इस विचार से वह बेचैन था । भीम्या पहले ही तय किया था कि, शादी अपने आदिवासी-समाज के अशिक्षित लड़की से करने का । भीम्या शहरी संस्कृति में पला-बढ़ा था लेकिन वह अपने आदिवासी संस्कृति एवं विचारों को नहीं भूला था इसलिए वह डोंगर गाँव के लोगों का आदर्श बना था । भीम्या डोंगर गाँव के विकास के लिए चुनाव लड़ने का दृढ़ संकल्प करता और चुनाव में अपनी पैनल खड़ा करता है । चुनाव का महत्त्व इन डोंगरवासियों को पता नहीं था । हर चुनाव में प्यारेलाल सेठ इन लोगों को शराब, मुर्गी, बकरे की दावत देकर सरपंच का पद, पीढियों से भोगते आ रहा था । गाँव की संपूर्ण सत्ता उसी के घर में रहती थी । प्यारेलाल सेठ ने गाँव के लोगों को शराब के बोतल में दबा रखा था । वह गाँव का सत्ताधीश बना हुआ था । डोंगर गाँव के आदिवासी अशिक्षित होने के कारण इन्हें कानून, चुनाव, लोकशाही पता नहीं थी । किंतु भीम्या इन बातों से वाकिफ़ था इसलिए वह तहसीलदार के पास जाकर प्यारेलाल सेठ के विरोध में शिकायत दर्ज़ करवाता हुए कहता है— "डोंगर गाँव के चुनाव का जाहिरनामा बोर्ड पर लगाया क्यों नहीं किया गया ?"[313] भीम्या के इन सवालों को देखकर प्यारेलाल सेठ को डर लगने लगा था । आदिवासी-समाज की उन्नति

[312]वही, पृ.सं. 46.

[313]वही, पृ.सं. 56.

करना हो तो हर आदिवासी-समाज में भीम्या जैसा एक युवक को शिक्षा का मशाल हाथ में लेना होगा। तभी समाज का विकास संभव है।

भीम्या जमीन हस्तांतरण कानून के तहत सदु चाचा की जमीन प्यारेलाल सेठ से वापस दिलवाता है। इसी का बदला लेने के लिए प्यारेलाल सेठ और गुंडे सदु चाचा की लड़की पारू पर बलात्कार करते हैं। इस घटना के सभी दस्तावेज लेकर भीम्या खुद मुकदमा लड़ता है। और प्यारेलाल सेठ तथा उसके गुंड़ों को सजा दिलाकर हथकड़ियाँ पहनाता है।

अशिक्षित आदिवासियों को शिक्षित करने के लिए डोंगर गाँव में भीम्या रात की पाठशाला का अभियान चलाता है। शिक्षा के माध्यम से अन्याय, अत्याचार का एहसास दिलाता है। विकास के नाम पर डोंगर गाँव के लोगों को विस्थापित किया जाता है तब भीम्या अपनी हक की लड़ाई लड़ता है। साथ ही बच्चों पर कुपोषण का संकट आता है। माँ, यशोदा और पत्नी रमी की मृत्यु हो जाति है। अंततः निराशा ही भीम्या के हाथ लगती है। किंतु इस संघर्ष में उसे साथ देने के लिए डॉ. मीरा तथा मैना साथ देते हैं। उपन्यासकार नायक भीम्या के माध्यम से गोंड जनजाति की समस्या, अन्याय, अत्याचार, अज्ञानता, साहूकारों की लूट, जंगल कानून आदि विदारक चित्रण 'टाहो' उपन्यास के कथानक में चित्रित करते हैं। उपन्यास के पात्र काल्पनिक होते हुए भी जीवंत दिखाई देते हैं।

*'जंगल जहाँ शुरू होता है'*उपन्यास में थारू जनजाति के जीवन पर आधारित है। उपन्यासकार ने उपन्यास में अनेक घटनाओं को स्थान दिया हैं। संजीव के साहित्य में उपेक्षित, शोषित, पीड़ित जनसमुदाय का चित्रण दिखाई देता है। स्वाधीन भारत में गरीबों को निरंतर लूटा गया हैं, सताया गया है और उन्हें षड्यंत्रपूर्वक पीछे धकेला गया है। आदिवासी-समाज राजनीति से कोसों दूर है। स्वतंत्र भारत में आज उन्हें अपना प्रतिनिधित्व नहीं मिला। मनुष्य होकर भी जानवरों जैसा सलूक किया जाता है। तथाकथित समाज ने भारत के प्रत्येक जनजाति

पर कोई न कोई धब्बा जरूर लगाया है । जैसे-डकैती, नक्सली, देहव्यापार, चोरी आदि । अपने ही देश में वे चोर नज़र आने लगे हैं ।

यह उपन्यास राजनीति, समाज, धर्म में आयी गिरावट को रेखांकित करता है । आज राजनीति में माफिया, तस्कर और डाकू आ गए हैं । एक जमाने तक वे राजनेताओं के लिए काम करते थे और अब वे स्वयं राजनेता बन गए हैं । वही लोग आज समाज में निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं । वे अपार धन संपदा तो कमाये हैं लेकिन बेईमानी से, उस बेईमानी को ढंकने के लिए राजनीति में जाना जरूरी है । राजनेता चाहे कितना भी बेईमान हो, उससे कोई कुछ नहीं कहता, क्योंकि वह प्रभुत्वशाली होता है इसलिए सबके काम उनसे ही होते हैं । इस उपन्यास का परशुराम डाकू का विधायक बनना यही संकेत करता है कि अब वे दिन दूर नहीं जब इस प्रकार के लोग ही राजनीति करेंगे ।

उपन्यास के केंद्र में पश्चिमी चंपारण के मुसेपुर, बिह बाबलपुर, बलुआरा, मोहता, अटारी, खलबा, चकिया, मुकीदपुरा, मकरंदापुर, भैरोपुर, बाल्मीकिपुर और खासकर बेतिया अंचल की थारू जनजाति के दुख-दर्द हैं । इस अंचल की 90 फीसदी जमीन पर एक प्रतिशत लोगों का कब्जा है और पाँच प्रतिशत जमीन पर आम लोगों का जीवन आधारित है । ऐसी गरीबी में या तो पाखंड और ढोंग पनपता है या फिर चोरी-डकैती या आतंक । इस अंचल के समाजवादी नेता बैठा जी परिस्थितियों का मूल्यांकन करता है । संजीव ने पूरे अंचल को उसकी अच्छाईयों और बुराइयों के साथ चित्रित किया है । उनकी दृष्टि अंचल की बुराई बताने तक सीमित नहीं है बल्कि बुराई के मूल में कौन-कौन कारण हैं यह भी बताना उन्होंने आवश्यक समझा है । डकैती, अपहरण और औरतों की खरीद यहाँ की प्रमुख समस्या रही है । उदाहरण के लिए सबसे पहले काली डकैत को ही ले जो इस समय उस अंचल का सबसे बड़ा डकैत है और उस पर सबसे अधिक रूपये का सरकार ने इनाम घोषित कर रखा है । काली ठेकेदार के यहाँ काम करता है । और देखता है कि ठेकेदार कैसे उसका शोषण कर रहा है, उसके मन में विद्रोह

उपजता है—"हक की कमाई माँगने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं है और हराम की कमाई डकारनेवाले दुराचारी लुटेरे परशुराम के लिए पंद्रह हजार। आग घुल रही है काली के मन में। क्या वह इन हरामखोरों की बेगार करने और उनकी गाँड़ धोने के लिए ही पैदा हुआ है ? हतक, हतक, हतक ! हतक के सिवा कुछ नहीं । ऐसे अन्याय पर उसे क्या करना चाहिए- यह बतानेवाला कोई नहीं- न कोई देवी-देवता, न कोई साधु-फकीर, न कोई लीडर-अफ़सर ! हर तरफ घुटन !"[314]काली पर हुए अत्याचारों ने उसे डाकू बनने का रास्ता दिखाया, जबकि वह बचपन से ऐसा नहीं था। काली अपने जीवन के बारे में सोचता कि काश इन लोगों ने मेरे साथ गद्दारी न की होती और मेरी भाभी के साथ बलात्कार न किया होता तो वह डाकू नहीं बनता।

जमींदारों द्वारा गरीब थारूओं का शोषण किया जाता है। वे उनकी संपत्ति एवं खेतों पर जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं। गरीब की फरियाद कोर्ट, पंचायत, थाने कहीं भी नहीं सुनी जाति। इनकी फरियाद मात्र अरण्यरोदन रह जाति है। जमींदार के खेत में बिसराम की भैंस के चले जाने पर उसे जबरन हाँक ले जाते हैं। यह खेत और भैंस दोनों ही बिसराम के थे। खेत कर्ज़ के चलते बंधक पड़े हुए थे। मलारी की असहाय स्थिति के चलते लल्लन बाबू जैसे जमींदार उसका जमींन दखल कर लेते हैं । बिसराम लड़की की मौत पर विलाप करता है—"हमरा तो हर तरीका से मौवत लिखत बा, ए बेटी ! जिमींदार से, डाकू से, देवता-पिता से, भूत-भवानी से, पुलिस-लेखापाल से.... अरे कबन सुख देखलू ऐ बेटी— ई-ई-ई.....! तहरा के बचा न सकल बाप ई अभागा- आ-आ-आ....!"[315]

[314]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 93.

[315]वही, पृ.सं. 21.

उपन्यास में पुलिस द्वारा आदिवासियों पर अत्याचार, शारीरिक यातना, गाली-गलौच, जाँच के नाम पर अत्याचार करना, झूठे इल्जाम में फँसाकर जेल में बंद करना तथा बलात्कार के फर्जी केस लगाते हुए दिखाई देते हैं। पुलिस, बिसराम के घर की तलाशी लेने आती है । पुलिस की दहशत तथा उनके व्यवहार का पता इस कथन से स्पष्ट होता है—"उठ स्साले... कहाँ छुपा रखा है उस मादरचोद कलिया को ? चोप... साला.... । अगवार-पिछवाड़ सर्च करो । न मिले तो एक-एक घर छान मारो । जाएगा कहाँ स्साला...। बिसराम के बाल पकड़कर थानेदार ने झिझोड़ते हुए कहा- एह ! जुल्फी रखाया है बैनचोद ने । अभी तो छोड़ देते हैं लेकिन कल तक काली या उसकी ख़बर न मिली तो तेरी खैर नहीं।"[316]

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में वर्ण एवं जाति के आधार पर छुआछूत, ऊँच-नीच की भावना पनपती रही है । इसके चलते उप पर शारीरिक, मानसिक स्तरों पर शोषण किया जाता है । फेंकन दुसाध, सुन्नर पांडे के यहाँ हलवाही का काम करता है । उसकी पत्नी उनके घर के अंदर काम काज देखती है । आये दिन फेंकन की पत्नी को सुन्नर पांडे की पत्नी द्वारा डाँट-फटकार सुननी पड़ती । फेंकन की पत्नी पढ़ी-लिखी होने के कारण सारे मामले को समझती है । तथा फेंकन को देर रात काम करने से भी रोकती है । पंड़ाइन व्यंग्य से उसे 'इंदिरा गांधी' कहती । अनपढ़ पंड़ाइन अपनी जाति के गुमान में उसको कैसे पैरों पर रखा रखा जाये इसी चिंता में हमेशा रहती । पंडाइन ने एक दिन उसे हाथ-पाँव टीप (मालिश) देने को कहा । इस पर फेंकन बहू ने इनकार में कहा-'हमने आपका देह छुवा जाएगा ।' इतनी-सी बात को लेकर वे उसके साथ बहुत बड़ा अत्याचार करवाती है—"पांडे और पंड़ाइन ने उस औरत को हाथों से पकड़ रखा था

[316]वही, पृ.सं. 123.

और पांडे का साला उसे दबोचे हुए था । बाप रे ! क्या एक औरत खुद अपने सामने एक दूसरी और का बलात्कार करवा सकती है ?"[317]

उपन्यास में पुलिस अधिकारी कुमार जंगल के इस जंगलीपन से लड़ने के लिए आता है । किंतु यहाँ उन्हें दूसरी दुनिया देखने को मिलती है । डकैतों से अधिक राजनेता, राजनेताओं से अधिक राजनेताओं के चमचे, पुलिस अधिकारी से ज्यादा खतरनाक दिखाई देते हैं । डकैत तो ये लोग मजबूरी में बने थे । वे एक आदमी बनना चाहते थे । अपने समाज में रहना चाहते थे, सामाजिक प्राणी की तरह इनका दोष नहीं था, जितना माना जा रहा है और बताया जा रहा है । यहाँ आकर कुमार ने देखा किस प्रकार राजनेता अपनी राजनीति की सफलता के लिए इस समस्या को बचाए रखना चाहता है, अपने डकैतों को संरक्षण दे रहे हैं और चुनाव के समय कैसे उसका उपयोग करते हैं । इसलिए उन्हें लगता है कि जिस जंगल से लड़ने चले हैं वे एक दिन पाते हैं कि जंगल खुद हमारे अंदर उगा आ रहा है, इस जंगल से लड़ने की आवश्यकता है । जो हमारे अंदर उगा आ रहा है । इसलिए यह उपन्यास उस जंगल की कहानी नहीं है जो पश्चिमी चंपारण के बेतिया अंचल में फैला हुआ है बल्कि उस जंगल से लड़ने की आवश्यकता है जो हर जगह राजनेताओं और माफियाओं की साँठ-गाँठ से पल रहा है । प्रदेश और देश की राजधानियाँ इस जंगल के गढ़ हैं, यह जंगल यहाँ से शुरू होता है, जिससे लड़ने की आवश्यकता है ।

*'अल्मा कबूतरी'*आदिवासी-जीवन पर केंद्रीत बहुचर्चित उपन्यास है । इसमें आदिवासी-जीवन के विविध पहलुओं को यथार्थ रूप से अंकित किया गया हैं । यहाँ उपन्यास की कथा को उसके कथाक्रम के अधारपर देखने का प्रयास किया गया है । लेखिका ने उपन्यास को अठारह विभागों में विभाजित किया है । उपन्यास की कथा के प्रारंभ में मंसाराम की सोलह वर्ष की आयु में ही उनके पिताजी का सर्पदंश के कारण निधन हो जाता है । छोटी आयु में मंसाराम पर

[317]वही, पृ.सं. 92.

पारिवारिक बोझ आ पड़ता है । पारिवारिक जिम्मेदारी उठाते-उठाते मंसाराम ने इंटर तक की परीक्षा उत्तीर्ण की । अठ्ठाईस साल की उम्र में मंसा के जीवन में नई चुनौती आयी । गाँव में अब तक प्रधान पर गुन्नी सिंह निर्विरोध रूप से स्वीकृत होते रहे हैं । अब की बार उनके सामने लल्लूराजा खड़ा हुआ है, जो कि वह मंसाराम का साथी है । पढ़ाई में कमजोर और व्यवहार में गँवार है । मंसाराम के मन में उसके प्रति ईर्ष्या का भाव पैदा होता है । कबूतरा बस्ती के जंगलिया की मंसा को याद आती है । जंगलिया का विवाह शिवसिंह कबूतरा की सुंदर बेटी कदमबाई से हुआ था । वह बहुत ही खुद्दार लड़का था । बीस साल की आयु में ही उन्होंने ससुर का कर्जा पूरा करने की कसम खाई थी । उसे पूरा करने के लिए आधी रात के समय सड़क पर जाता बैलगाड़ी से गेहूँ भरा सलीता चीरकर दस मन गेहूँ वह चुरा लेता है । इस घटना की ख़बर कदमबाई को होते ही वह आश्चर्य में पड़ जाति है । उसे डर लगता है कि जंगलिया को थाने में बुलाया जायेगा और उसे छुड़ाने के लिए सिपाहियों के बुटों पर होंठ रगड़ना होगा । मंसाराम की संगत में रहनेवाला जंगलिया अलमस्त रहता है । मंसाराम जंगलिया को उकसाता रहता था । जंगलियादिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगा, उसे घर बनाने के लिए जगह देने का वचन देकर मंसाराम ने उसे पूरी तरह अपना बना लिया था कदमबाई जवान और भरपूर साँवले वर्ण की थी । मंसाराम को वीर देवता की तरह पूजती हैं । पति, पत्नी पूरी तरह मंसाराम के प्रति समर्पित हो गये है ।

रोटी, कपड़ा और मकान का सपना देखनेवाला जंगलिया कबूतरा को जब भी बुलाया जाता, मंसाराम की सेवा में हाजिर हो जाता था । मंसाराम के कहने पर एक दिन जंगलिया लल्लूराजा के घर से हनुमान जी की सोने की मूर्ती चुरा लेता है । लल्लूराजा चतुर था, उसने चतुराई से काम लेकर एक दिन अपने मजदूरों के द्वारा जंगलिया को खेत में बुरी तरह से पिटवाता है । मंसाराम दरोगा को एक हज़ार रूपया देकर जंगलिया का केस बंद करवाता है और दुश्मन को कमजोर न समझने की सलाह देता है । असल में मंसाराम का दिल कदमबाई पर आ गया था । वह कदमबाई के अकेलेपन का फायदा उठाने के लिए अत्यंत उत्सुक हो जाता है ।

सावन के महिने में कदमबाई पर यौवन चढ़कर बोल रहा था । जंगलिया आयेगा यह सोचकर वह सुबह बावरी हो गई थी । वह सांज श्रृंगार करके तैयार हो गई थी किंतु जंगलिया नहीं आ सकता है, और ऐसे समय पर मंसाराम उसके यौवन को मसल देता है । उसी दिन जंगलिया की मृत्यु हो जाति है, उसकी लाश एक खेत से मिलती है । इस घटना से डेरों का मुखिया सरमन दांत पिसता रह जाता है । मंसाराम अब कबूतरा बस्ती के लोगों से घबरा गया था । वह कदमबाई से बचना चाहता था । इसके बाद मंसा अपना जीवन कर्म बदलकर पूजा-भक्ति इत्यादि में समय बिताने लगता है ।

कुछ समय बाद कदमबाई बच्चे को जन्म देती है उनके बेटे का नाम राणा प्रताप रखती है । कदमबाई उसे अच्छी तरह से पालती है । और कहने लगती—“राणा रे... लाठी भाँज, गुलेल चला । कुल्हाड़ी का वार करना सीख । मेरा बेटा बहादुरी से चोरी करेगा । सोने की मूर्ति किसी के जरिए नहीं, कज्जा लोगों पर मरघट की राख डालकर लूट जाएगा । राणा को मैंने ऐसे ही दहल जाएँगे, जैसे मैं थर्रा गई थी जंगलिया की मौत पर ।”[318]

अब कदमबाई ने फैसला कर लिया कि राणा ‘गोरामछिया’ जायेगा, रामसिंह वही रहता था । उसे वह जगह अधिक सुरक्षित लगी । कज्जा लोगों से घृणा होने के कारण वह अब अपने बेटे के बारे में सोचती हुई कोदरा राँध रही थी, उसी वक्त राणा ने आकर कहा कि मास्टर जी ने अपने जीवन के बारे में दस लाईन लिखने के लिए कहा है, सुनो तो मैं ने क्या लिखा हैं—“पिटना-पीटाना, मरना-मारना हमारी जिंदगी । गुनियाँ, ओझा और पुलिस हमारे भगवान हैं, कज्जा लोग माई-बाप और मालिक भूख-प्यास हमारी गुंइया है । देह गर्मी से जलने लगी है, हम

[318]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 36-37.

चोरी से तालाब में नहा लेते हैं। जाड़े में हड्डियाँ चटकने लगती है, जंगल में से ईंधन चुराकर शरीर गरम कर लेते हैं। सब लोग हमें माफ कर दे बस इतना ही हम चाहते हैं।"[319]

सात वाक्य पढ़कर राणा रूका। उँगली में जीभ से थूक लगाकर पन्ना पलटा और अपनी ओर से तीन वाक्य इस प्रकार जोड़ दिया—"सच्चाई से रहो, ईमानदारी से जियो, नफ़रत त्याग दो, यह सब किताबों में लिखा हैं। यह सब झूठ हैं, यह सब हमारे लिए नहीं हैं, लोग हमें डराते हैं, डर के मारे झूठ बोलते हैं, बेईमानी पर चलते हैं, नफ़रत करते हैं।"[320] बचपन में बुजूर्गोंवाली मति देखकर सदब अपने बेटे पर नाज करती है। मंसा ने राणा को रोकने का प्रयास किया मगर रोक नहीं सका। उसके चले जाने के बाद वह आया, कदम कमीज धो रही थी, उसने कदमबाई को बुलाया, नहीं आयी तो उसे उठाकर भीतर लाया। कदमबाई कहती है- मैं तुम्हारे घर से डरती हूँ, तुम कज्जा लोग और हम कबूतरों का क्या संबंध ? यहाँ लोग दारू पीने आते हैं। मौज-मजा करते हैं, कोई मजबूरी सुनने नहीं आता। मंसा ऐसे व्यवहार के प्रति कटु होता गया। पारिवारिक घृणा और नफ़रत के कारण मंसा भीतर-ही-भीतर टूटता गया, वह रोग का शिकार हो गया, हर तरह से हारने के बाद वह हरिनाम के सहारे जीवन जीने लगा। मंसा की ऐसी स्थिति देखकर आनंदी ने पुजारी को बुलाया, पुजारी ने 'सुख सागर' पढ़ने की सलाह दी। मंसा समय काटने के लिए 'सुख सागर' पढ़ना आरंभ किया। पारिवारिक व्यग्रता एवं जीवन की विपरीत परिस्थितियों के कारण हार मानकर एक दिन आनंदी जलकर मरने का प्रयास करती है। कदमबाई, मंसा और आनंदी के जीवन की वही भवबाधा बन गई थी।

---

[319]वही, पृ.सं. 99.

[320]वही, पृ.सं. 99.

*'काला पादरी'*उपन्यास के कथानक में मध्यप्रदेश के जिला सरगुजा क्षेत्र उराँव जनजाति समूह के धर्मांतरित जेम्स खाखा के जीवन-संघर्ष का चित्रण है । उपन्यास की शुरूआत कथावाचक आदित्य के स्थलांतर से होती है । आदित्य तथा जेम्स खाखा का परिचय अनुपपुर रेल्वे स्टेशन पर होता है । उन्हें बिश्रामपुर से होकर अंबिकापुर जाना था । अंबिकापुर जाने के बाद आदित्य का जेम्स खाखा से मित्रत्व बढ़ता है । उस क्षेत्र संबंधी सभी जानकारी हासिल करता है । हर दिन वे आदिवासियों के आर्थिक, राजनीतिक, धर्मांतरण की समस्याओं के मुद्दों पर चर्चा करते हैं । सरगुजा आदिवासी बहुल क्षेत्र में आदित्य पहली बार आया था । इसीलिए वह जेम्स खाखा के साथ उस क्षेत्र के दौरे पर निकल जाता है । एक दिन आदित्य सरगुजा आदिवासियों के बारे में पूछता है । उस पर जेम्स खाखा कहता है—"सरगुजा की दिक्कत यही है कि आज भी यहाँ के लोग बाहर से आनेवाले आदमी को देवदूत मानते हैं और आज भी वह उनके लिए ईश्वर का भेजा हुआ बंदा होता है ।"[321]

उपन्यास में सरगुजा किसान, आदिवासी तथा वहाँ के लोगों के साथ-साथ वर्तमान भारतीय किसानों का और बैंक का रवैया आदित्य के विचारों के माध्यम से दिखाया है—"मुझे अकसर इस बात पर आश्चर्य होता था कि इस तरह क्योंकि आपको एक जगह से ऋण लेना है, आपको पूरे गाँव में इस बात का ढिंढोरा पीटना पड़े कि मैं कहीं का देनदार नहीं हूँ और नगाड़े की हर आवाज़ पर मोहर लगाने के लिए आपको अपनी जेब में हाथ डालना पड़े ।"[322]इस ऋण को देते समय कितने लोग इसमें हाथ धो लेते हैं । फार्म भरने के लिए ग्राम सेवक, बैंक मैनेंजर, स्थानिक नेता सबके हिस्से होते हैं—"इसमें मेरा हिस्सा भी होता है । यह अजीब बात है । इसमें

[321]काला पादरी, पृ.सं. 10.

[322]वही, पृ.सं. 12.

भला मेरा हिस्सा क्यों होता है ? अपना हिस्सा लेने से अगर मैं इन्कार करता हूँ तो यह पूरा चक्र टूटने लगता है और अगर नहीं करता हूँ तो मेरे भीतर कुछ टूटने लगता है ।"[323]

जेम्स खाखा उराँव जनजाति के होने का संकेत हमें उपन्यास के मध्य में परिलक्षित होता है । जेम्स खाखा स्वयं उराँव समूह का है । उसके पर दादा ने धर्मांतरण किया था । अंग्रेजों ने उन्हें दूध का पावडर तथा चॉकलेट देकर धर्मांतरण कराया था । लेकिन दूध और चॉकलेट देने की बात उसे बार-बार याद दिलाते हैं । इसलिए वह कहता है—"यह कहने से तुम्हारा क्या मतलब है कि, वे हमें जीवन भर धूल का कीड़ा ही समझे, ही हैज़ टू रीकेग्नाईज़ अवर न्यू स्टैटस... हम लोग जब पढ़ लिख गये है, प्रार्थना का काम करते हैं, पूरी चर्च सम्हालते हैं, तो वे बार-बार हमारी बेगार के दिनों की जुगाली क्यों करते हैं ?"[324] जेम्स खाखा को बताया जा रहा था कि, तुम्हारा अपना कुछ नहीं है जो कुछ भी है यीशू की देन है । इन बातों का खाखा को गुस्सा आ रहा था—"आखिर एक-दो पीढ़ी पहले तो हमें अपने अस्तित्व का पता नहीं था ठीक से, और अब जब पता चल गया है कि तो कहते हैं कि भूल जाओ, तुम्हारा कुछ नहीं है, जो कुछ है प्रभु परमेश्वर का रास्ता मिशनरीज से होकर जाता है, माई फुट, मैं कहता हूँ, परमेश्वर का रास्ता हमारे छोटी-सी नदी इब से होकर गुजरता है, हमारे पेड़ों और पहाड़ों से होकर जाता है । "[325]

ईसाई मिशनरियों की परोपकारी भूमिका के निहितार्थों को उजागर करते हुए उपन्यासकार हिंदू पुनरूत्थानवादी संगठनों की उस सांप्रदायिक भूमिका के प्रति भी सजग है जो सांप्रदायिकता को बढ़ावा देकर स्टेन्स जैसे मिशनरियों की हत्या एवं हिंदू धर्म में ईसाईयों कि

---

[323]वही, पृ.सं. 13.

[324]वही, पृ.सं. 46.

[325]वही, पृ.सं. 48.

पुनःवापसी के राजनीतिक अभियान की जमीन तैयार करते हैं। छत्तिसगढ़ से सरगुजा जिले में उराँव आदिवासियों के बीच सात दशकों का विस्तार लें ईसाई मिशनरियों की भूमिका, आदिवासियों का धर्मांतरण, संकीर्ण धार्मिक हितों को लें धर्म का इस्तेमाल और राजनीतिक हित लाभ की गणना का जटिल विमर्श जिस बेबाकी और अद्यतन संदर्भों के साथ औपन्यासिक-कथ्य में विन्यस्त हुआ है। वह अन्यत्र नहीं।

दो धर्मों के बीच दंगा-फसाद करवाने के लिए बमविस्फोट किया जाता है । इस बमविस्फोट में कितने लोगों की मृत्यु हुई यह मायने नहीं रखता, बल्कि इससे राजनीतिक पक्ष को कितना फायदा होता है वह महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में बिशपस्वामी कहता है—"यैस आई ऐग्री, बट वी हैव टू सी अहेड ऑफ टाइम्स, वी हैव टू वाच द सिचुऐशन केअरफुली, आई हैड वार्नड यू आन द डे ऑफ बांब-एक्सप्लोजन दैट यू शुड सी बियांड द स्मोक, दे में अलसो ट्राय टू एक्सप्लायट अस फॉर वोट बैंक ओनली, दे आर सरटेनली बैटर दैन दीज़ पंडितस् एंड बनियाज, बट नाउ द क्वेस्चिन इज़-वेदर बी हैव टू एक्सप्लायट दैम ओर वी शुड अगेन एलाउ अवरसेल्वस टू बी एक्सप्लेयटेड।"[326]

उपन्यास के केंद्र में धर्मांतरण की समस्या को प्रमुख रूप से दिखाया है। आदिवासियों को धर्मांतरण करने की नौबत क्यों आई ? अपने पेट की 'भूख' को मिटाने के लिए धर्मांतरण का रास्ता अपनाना पड़ता है। एक अनाज न होने के कारण मरता है तो दूसरा अनाज को सड़ाता है। उसी का चित्रण उपन्यास में चित्रित है—"बिरई लकड़ा का नाम लगातार अख़बारों की सुर्खियों में था। गोयल सेठ का संबंध एक दक्षिण पंथी राजनीतिक दल से था, जिसकी राज्य में सरकार थी बिरई लकड़ा का भूख से मर जाना और फिर उसका समाचार बन जाना उसके दल की सारी अनुशासित छवि को धूमिल कर रहा था । पर सेठ को दल से ज्यादा चिंता

[326]वही, पृ.सं. 124.

अपनेगोदाम की थी। वह सोचता था कि उसने अपने मकान के पीछे गोदाम में धान का जो पाँच सौ बोरों का स्टॉक जमाकर के रखा है, उस भांडार का बाहर की दुनिया को पता नहीं है।"[327]

उपन्यास में राजनीति का चित्रण कूट-कूट कर भरा हुआ है। जब अकाल पड़ने पर जेम्स खाखा बिशपस्वामी से अनाज देने की बात करता है। तब बिशपस्वामी का असली चेहरा नज़र आता है। इन राजनेताओं ने लोकशाही को पूरी तरह से समाप्त कर दिया है। जैसे—"मुझे ठीक से तो पता नहीं, पर वे चाहते हैं कि हम चर्च से उनकी पार्टी का खुला प्रचार करें, बिशपस्वामी अपने अनुयायियों से यह कहें कि पैलेस समर्थन करो वरना या तो भूखे मर जाओगे सूखे में या इस तरह मार दिये जाओगे। हिंदू फंडामेंडेलिस्ट तुम्हें मारेगा और हम तमाशा देखते रहेंगे। अगर हमारी चाहते हो तो अपने लोगों से साफ-साफ कहो कि हमें वोट दें और सुरक्षित रहें।"[328]

कुलमिलाकर 'काला पादरी' उपन्यास उत्तर-आधुनिक काल के आदिवासियों के यथार्थ के अनजाने दुर्गम इलाके का प्रामाणिक साक्ष्य है। मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटीत होती है घटनाओं और जंगलों के पार साँस लेती जीवन का विवरणात्मक संवेदनशील और सूक्ष्म आकलन है। उपन्यास का अंत भी कथावाचक (नैरेटर) के स्थलांतर अंबिकापुर से नागपुर होने पर होती है। अंततः जैम्स खाखा पूरा उपन्यास एक लाईन में कह देता है जब वह अचानक अख़बार गाड़ी के खिड़की से फेंककर कहता है—"सरगुजा के समाचार भूल मत जाना।"[329]

---

[327]वही, पृ.सं. 106.

[328]वही, पृ.सं. 86.

[329]वही, पृ.सं. 130.

*'कोळवाडा'*उपन्यास गोपाल गवारी कृत सन् 2004 में प्रकाशित हुआ है । आदिवासी महादेव कोळी समाज जीवन को समग्रता से उद्‌धृत करनेवाला उपन्यास है । उपन्यास का नायक गोकुल अपने अंतःकरण से महादेव कोळी समाज का कथन करता है । महादेव कोळी किस तरह जीता है, उनमें परिवर्तन किस तरह होता है इसी का चित्रण उपन्यास के केंद्र में दिखाई देता है । उपन्यास की शुरूआत महादेव कोळी समाज के मजदूरी से होती है । बरसात के दिनों में पेट की भूख मिटाने के लिए जंगल में काम नहीं मिलता इसलिए इस समाज की भूखमरी होती है । तब समाज का नाईक सज्जन मनुष्य रामभाऊ कोळवाडा के लोगों को काम दिलाता है । कभी-कबार अपनी पेट की भूख मिटाने के लिए चोरी-डकैती करनेवाले आदिवासियों पर तथाकथित समाज विश्वास नहीं करता है । इसलिए कोळी लोगों को रामभाऊ के मध्यस्त करने पर काम मिलता है । झूठे बाळू कोळी को शिवाजी बढ़ई घन और छन्नी देने से इन्कार करते हुए कहता है—"मतलब ? घन और छन्नी वाळया को चाहिए तब तो मैं हरगिज नहीं दूँगा । अरे पिछले हफ्ते दो दिन के हमीं पर कुल्हाड़ी लेकर गया था । उसके दो रूपये अभी तक नहीं दिया । पक्का भड़वा है, झूठा है ।"[330]

लेखक पात्रों के माध्यम से घटना तथा प्रसंगानुरूप कथा को आगे ले चलता है । इस गाँव में बाबू मुसलमान अकेला ही है । वह मटन का धंधा करते हुए मनुष्यों की बीमारी पहचानने की भी कला अपने बाप से सिखा था । होली के दूसरे दिन कर मनाने के लिए महादेव कोळी के धोंड्या, सावळ्या, विठ्ठल, मंगळ्या, रघु सताळे लगभग पच्चीस-तीस कोळी शिकार के लिए जंगल में गये थे । किंतु शिकार न मिलने से समाधान न होने पर वह बाबू मुसलमान के घर जाकर बकरा काटने की विनती करते हैं । आदिवासी कोळीयों के साथ बाबू मुसलमान एकरूप हो गया था । उसे कोळी समाज रीति-रिवाज़, परंपरा, संस्कृति आदि का ज्ञान था । इसलिए वह

[330]कोळवाडा, पृ.सं. 08.

बकरा काटकर उन्हें देता है । कोळी समाज के लोगों में शिक्षा का प्रचार करते हुए तेली गुरूजी कोळवाडा के बच्चों को जमा करता है । तेली गुरूजी को कोळीयों में शिक्षा के प्रति उदासीनता भी नज़र आती है । तेली गुरूजी भरोसे के होने के कारण रामभाऊ अपना लड़का गोकुळ तथा लड़की को पाठशाला भेज देता है । उपन्यास के नायक को शिक्षा की वजह से महत्त्व प्राप्त होता है । रामभाऊ का घर में कान्होबा का मठ था इसलिए खुद का औषधोपचार खुद ही कर लेता है । बीमार व्यक्ति को पहचानने की कला भी उसे आती थी । इसलिए खंड्या के लड़के को देखते ही पता किया था कि उसे गँस हुआ है । उसका इलाज भी करता है । कथानक में शिक्षा को महत्त्व दिया है । किंतु शिक्षा के दुष्परिणाम को भी दिखाया गया है । कोळी समाज में अच्छी शिक्षा लेकर नौकरी पा लेता है तब दूसरे रास्तों पर चलने लगता है इसी का चित्रण इटल्या का लड़का शिवज्या के रूप में हम देख सकते हैं—“शिवज्या का भविष्य सुखकर था । उसके परिस्थिति में भी बदलाव दिखायी दे रहा था । शादी हुए, एक बच्चा हुआ शायद नौकरी पाकर दस ग्यारह साल हुए होंगे । लेकिन कहते हैं ना कि कोळी के लहू में जल्दबाजी अधिक होने के कारण शिवज्या शराब से साथ-साथ रंडियों को रखने लगा था । इसलिए पत्नी की ओर उसका आकर्षण कम हुआ था । वह रखैल के घर से ड्यूटी पर जाने लगा, वही पर सोने लगा । अंत में उसकी पत्नी बच्चे भूखे पेट सोने लगे । इस तरह शिवज्या का समय नज़दीक आ रहा था ।”[331]शिवज्या को पुलिस की नौकरी मेहनत से मिली थी किंतु वह संभाल नहीं पाया । वह हमेशा शराब के नशे में तर्रर्रर रहने के कारण उसकी नौकरी भी चले जाति है ।

कोळी समाज में ‘संतती प्रतिबंधक योजना’ के प्रति उनकी गलतफहमी मनोरंजनकारी है । डॉक्टर, नर्स उन्हें जानकारी देते हैं लेकिन वह हँसी के तौर पर लेते हैं । इससे उनका अल्हड़पन रेखांकित होता है । कोळी समाज के लोगों को चोरी-डकैती तथा शिकार के सिवा ओर कोई

[331]वही, पृ.स. 38.

चारा नहीं था। किंतु रामभाऊ का लड़का गोकुळ पढ़ने-लिखने में तेज था। स्कॉलरशिप परीक्षा में पास होकर जीवन का उद्धार करने का विचार उपन्यास के हर पन्ने पर देखने को मिलता है।

आदिवासी कोळी समाज मेहनत के साथ-साथ मनोरंजन का लुप्त उठाते हैं। जैसे-तमाशा, वतावणी,वग आदि इन मनोरंजन खेल में सभी कोळी तेज थे। लेकिन नाच्या (तृतीयपंथी) के बगैर सब बेकार था। इसलिए सब पैसे जमा करके पेगलवाडी से नाच्या को महिना सव्वासौ रूपये देकर लाते हैं। उनके रहने, खाने-पीने की इंतजाम करना पड़ता था। वहाँ के सयल्या, रूमल्या (तृतीयपंथी) लड़की की तरह सुंदर दिखाई देते थे। सयल्या और रूमल्या को कोळी लोग खाने के लिए अपने घर खुशी से लेकर जाते थे।

इतना मात्र सत्य है कि कोळीवाडा के लड़कियों के चरित्र्य को संभालकर रखना पड़ता था। क्योंकि अगर किसी लड़की के पैर चलते समय टेढ़े-मेढ़े पड़ते हैं तो उस लड़की की शादी जिंदगी भर नहीं होती थी। कोळी लड़कियों की शादी कम उम्र में ही हो जाति है और लड़का, लड़की को दहेज (द्याज) देता है। रामभाऊ का भाई नागू गायकवाड के लड़के ने लड़की को दहेज देने का प्रसंग मन को स्पर्श कर जाता है।

कोळवाडा उपन्यास में अंधश्रद्धा, शादी, जादू-टोणा ऐसे अनेक प्रसंगों से कथा आगे बढ़ती है। अंततः कोळीवाड्या के लोगों के शुभ दिन आते हैं। भूखमरी, बेरोजगारी से त्रस्त रामभाऊ गायकवाड का लड़का गोकुळ बैंक में मैनेजर बनता है। बैंक में नौकरी करनेवाला गोकुळ अपने समाज के प्रति इमानदार दिखाई देता है। लोगों के कामों में मदद करता है। जब गोकुळ के माध्यम से कोळी लोगों को इरिगेशन में काम मिलता है तब उनकी भूखमरी, बेरोजगारी दूर होती है। महादेव कोळी समाज में अन्याय, अत्याचार के खिलाफ़ लड़ने की शक्ति मिलती है। जब गोकुळ के भाई अर्जुन को साहब मजदूरी नहीं दे रहा था तब अर्जुन अपना भाई बैंक मैनेजर होने की जानकारी देता है। तब से साहब लोगों को अन्याय-अत्याचार करना मुश्किल होता है। ऐसे अनेक प्रसंग, उपन्यास के कथानक में दिखाई देते है।

*'जो इतिहास में नहीं है'*उपन्यास का प्रारंभ एक पौराणिक संताली कथा से होता है । लेखक ने इस उपन्यास के कथानक में सन् 1857 की क्रांति से पहले सन् 1781 से अनवरत चलनेवाले पूरे आदिवासी मुक्ति कामी संघर्ष को अपने उपन्यास का विषय बनाया है, पर उपन्यास के मुख्य केंद्र में है इ.स. 1855 में सिदो, कान्हू, चांद और भैरव मुरमू नामक चार सहोदर संताली की महान संताल क्रांति हूल जिनका वर्णन भारत के राष्ट्रीय इतिहास में लगभग नदारद है । जो इतिहास में नहीं है उपन्यास तीन खंडों में विभाजित है । पहले खंड में है- 'हूल' की भूमिका निर्माण । दूसरे खंड हूल का प्रारंभ, उत्कर्ष और पराजय तथा तीसरे खंड में 'हूल' के पराजय के बाद छिटपुट उभरनेवाले जन विद्रोह और अंत में सन् 1857 की क्रांति के साथ 'हूल' का कदम ताल हो जाना ।

उपन्यास के प्रथम खंड में उपन्यास का नायक हारिल मुरमू, जो कि एक काल्पनिक पात्र है । हारिल मुरमू हथियादह के चैती मेले में तीर खेलने की बाजी जीतनेवाला दक्ष संताल धनुर्धर है, जो पलाशखंड के महतो कंगरा कुजूर की बेटी लाली से प्रेम करता है । लेकिन महतो सात गाँव की पंचायत का मुखिया और हारिल मुरमू एक वेठबेगार का बेटा । हारिल मुरमू के पिता जादिक मुरमू । जादिक मुरमू के पुरखे सहिजन मुरमू । सहिजन मुरमू एक बार जंगल से जलावन के लिए लकड़ियाँ लेकर जा रहा था । अचानक भूखा बाघ उन पर आक्रमण कर देता है । वह उससे मुकाबला करता है । इसलिए सहिजन मुरमू शौर्य के बतौर माँझी द्वारा एक खेत प्रदत्त किया जाता है । सहिजन मुरमू का यह प्रसंग प्रचलित है—"अकारण जंगली जानवरों पर अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाते कृषक संथाल परंतु कोई संथाल युवक भूखे बाघ का आहार भी आसानी से नहीं बन जाता । गरजता बाघ जब सहिजन मुरमू पर आ गिरा तो सहिजन मुरमू ने भी कमर में घुसी

टाँगी निकाल ली थी ।"[332]इसके इसी शौर्य के कारण उसके गाँव का नाम बाघामुण्डी पड़ जाता है । और गाँव की माँझी (मुखिया) जहाँ उसने बाघ की मुंडी काटकर गिरायी थी, उस स्थान पर उसे आग लगाने को कहता है । आग बहकर जहाँ तक जाति है उतनी जमीन पुरस्कार स्वरूप सहिजन मुरमू को दे देता है । इस शौर्य से प्राप्त जमीन को राजा गोमके राजेश्वर दयाल सिंह शहादेव, जो कि तीस गाँव का जमींदार है वह कर्ज़ के बदले हड़पना चाहता है । दरअसल राजा गोमके को अंग्रेज वन अधिकारी जेम्स एंडरसन ने विश्वास दिलाया था—"राजा साब ! आप यह जमीन उस संताल से ले लो । बहुत फायदा है । आप अबराक लेस्लीगंज, हजारीबाग या रामगढ़ तक भेजो । आगे महाजन हाम देगा । इधर से अबराक भरा कार्ट जाएगा... उधर से रूपया लादकर आएगा ।"[333] इस पृष्ठभूमि से नायक के परिवार की स्थिति स्पष्ट होती है । और संताल जाति कितनी बहादुर होती है लेकिन कैसे अंग्रेजों के पिट्ठू हरामखोर जमींदार उनका वर्चस्व हड़पकर ठाठ से भोगविलास भरा जीवन जीते हैं ।

उपन्यास के प्रथम खंड में जहाँ 'हूल' अर्थात आदिवासियों की 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के विरूद्ध क्रांति के निर्मित होने के कारणों का विस्तृत प्रसंग है, वही आदिवासी जंगल समाज के देवी-देवता, तीज-त्यौहार, गीत-संगीत, राग-विराग, प्रकृति से उसका आत्मीय जुड़ाव, उनके अकुंण्ठ प्रेम संसार और वैवाहिक संबंधों का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण है । इस खंड में जिससे निःसृत होने वाली प्रकृति गंध पाठक को अपने पाश में जकड़कर उसी परिवेश के बीच खिंच ले जाति है ।

द्वितीय खंड के शुरू में कैसे ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपने पैर जमाए, कैसे उसने बिहार, बंगाल और उडिसा के जंगलों की वनोपज और खनिज संपदा के दोहन के लिए वहाँ के

[332]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 43.

[333]वही, पृ.सं. 36.

राजाओं, जमींदारों तथा साहूकारों को अपनी तरफ मिलाया, कैसे पहाड़ों पर रहनेवाली और वनों पर आश्रित पहाड़ियाँ जनजाति को कृषि की ओर प्रवृत्त करने और पहाड़ को नष्ट करने के लिए प्रलोभन देकर संतालों को फँसाने का षड्यंत्र है। इसी का खुलासा है—“दामिन-ए-कोह के दुमका, गोड्डा और सहाबंज जिले पहाडियों के लिए आरक्षित कर दिये गये परंतु इतने पर भी पहाड़ियों ने पहाड़ नहीं छोड़ा। अंततः जेम्स पॉण्टेट को ‘दामिन-ए-कोह’ का राजस्व पदाधिकारी नियुक्त किया गया था। जिसने इस क्षेत्र में संतालों को बसाने में सफलता पाई थी।”[334]

उपन्यास के तीसरे खंड में गति में शिथिलता आ जाति है वही ‘हूल’ के बाद सन् 1857 की क्रांति के पहले पूरे वन क्षेत्र ‘हूल’ की बची हुई चिंगारियाँ कैसे धीरे-धीरे आग पकड़ती है, उसका वर्णन बहुत ही बारिकी से किया है। हारिल मुरमू के जिंदा गाँव वापस आकर अपने खेत और लाली को पाने की जटिल स्थितियों की कथा रही है। ‘हूल’ के सरदार सूवा सिदो मुरमू व उनके सहोदरों के इस मुक्तिकामी युद्ध में शहीद होने के बाद पूरा आंदोलन छिन्न-भिन्न हो गया था। शेष बच्चे सारे मुक्तियोद्धा अपने-अपने गाँव की ओर लौट गए थे। हारिल मुरमू भी अपने गाँव बाघामुण्डी लौट आया था। वापस लौटने पर उसने पाया था कि उसके खेत पर राजा गोमके ने कब्जा कर रखा था और उसके खेत में बड़े-बड़े गड्ढे खोद रखा था—“पचास वेठ-बेगार राजा गोमके के लिए अभ्रक की चट्टानों को हँसुए से चीरते थे। आकार के अनुसार मँझला, सँझला, कोरा, रसो, उर्था और अधमेला अभ्रक के टुकड़े बारों में भरे जाते थे। एक बोरे में इक्कीस

[334]वही, पृ.सं. 187.

सेर अभ्रक... । बोरो में भरा अभ्रक बैलगाडियों में लदकर रामगढ़ या लेस्लिगंज पहुँचाता था भैरों भगत, जहाँ के बनिये अभ्रक खरिदकर कलकत्ता ले जाते थे ।"[335]

अंततः अंग्रेजों ने अपना सबसे घातक हथियार- 'फूट डालो राज करो' ब्रम्हास्त्र के रूप में चला डाला था । उसने केनाराम भगत और बच्चाराम भगत महाजनों के माध्यम से पाँच संतालों को भारी लालच देकर अपना गुप्तचर बना लिया था और उन्होंने 'हूल' की सेना में दाखिल होकर इस युद्ध का पासा पलट दिया था । दरअसल हर बेईमानी, झूठी, क्रूर और बर्बर जाति खुद को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ और सभ्य जाति दर्शाने के लिए धर्म का मुखौटे की तरह इस्तेमाल करती है । अंग्रेजों ने इसी दया और करूणा का मुखौटा लगाकर आधी दुनिया को अपना गुलाम बना लिया था । इन्सानी खून बहा रहे थे । स्त्रियों से बलात्कार कर रहे थे । "जंगल में मनुष्यता की हत्या कर रहे थे वे लोग जो हाथों में क्रास लिये भारत को धर्म की सही परिभाषा सिखाते आ रहे थे । भारतियों को सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने हेतु चर्च, विद्यालय और चिकित्सालय स्थापित कर रहे थे ।"[336]

*'धूणी तपे तीर'*हरिराम मीणा का एक शोधपरक उपन्यास है । उपन्यास के कथावस्तु में मानगढ़ पर्वतों के ऊपर हुए आदिवासी 'ऑपरेशन' एवं उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और कुशलगढ़ में निवास करनेवाले आदिवासियों के जीवन, संस्कृति, समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है । उपन्यास से अधिकतर इतिहास-बोध तथा जागरण की भावना दिखाई देती है । मूल रूप से मानगढ़ ऑपरेशन ही उपन्यास का आधार बिंदू है जिसे आदिवासी 'जलियाँवाला काण्ड' कहा गया है । इस मरन काण्ड में जालियाँवाला काण्ड से दो गुना स्त्री-पुरुष शहीद हुए थे

---

[335]वही, पृ.सं. 406.

[336]वही, पृ.सं. 272.

। किंतु इस घटना की ओर किसी इतिहासकार, साहित्यकार तथा विद्वानों की नजर नहीं गयी थी।

लेखक ने भील एवं मीणा जन-जाति की अवधारणाओं को हमारे सामने रखा है। इसके साथ-साथ इन जनजातियों का उद्भव किस तरह हुआ यह जानकारी हमें इस उपन्यास के माध्यम से प्राप्त होती है। 'धूणी तपे तीर' में 'धर्म' और 'धूमाल' के द्वंद्व की गाथा है। गोविंद गुरू की समाज सुधारवाली बातें आदिवासियों के समझ में नहीं आती थी। वे आपस में बातें करते थे—"वह धर्म की बात ज्यादा करता है। धूमाल की बातें नहीं करता। बिना धूमाल मचाएँ हमारी तकलीफ राज के कानों तक नहीं पहुँचेगी।"[337] वह आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचार, गरीबी व दुख का कारण अंग्रेजों और देसी रजवाड़ों को मानता है। उसका कहना है कि आदिवासियों पर जुल्म ढाणे के लिए "फिरंगियों को रजवाड़े ही बुलाकर लाए है और अब दोनों मिलकर हमारा खून चुस रहे हैं। इन्हीं के भाई-बंधू सूदखोर साहू और महाजन है। ये हमें कर्ज़े से उभारने नहीं देते हैं। तो इन सबके खिलाफ हम सब आदिवासी भाई इक जोड़ होकर धूमाल नहीं करेंगे। तब तक हमारा दुख नहीं दूर होयेंगे।"[338]

गोविंद गुरू के समय में ही एक टंट्या मामा हुए जो आदिवासियों के दुख को दूर करने के लिए हिंसा के रास्ते पर चल रहे थे। वे—"आदिवासियों की लड़ाई के लिए दुस्साहस की हद तक बहादुरी अनिवार्य मानते थे। राज सत्ता द्वारा आदिवासियों पर जो जुल्म-सितम हो रहे थे। उस पर उनका कहना था कि धूर्तता व षड्यंत्रों का मुकाबला शराफत से नहीं, बल्कि चतुर चालाक समझ से ही संभव हो सकता है। उपदेशों से जागृति का काम एक सीमा तक ही फैलाया जा सकता है। धरातल के स्तर पर सक्रिय कदम उठाकर राजा ने दमन, दबाव व भय का वातावरण

[337]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 117.

[338]वही, पृ.सं. 118.

नित नये कानून, कायदों की आड में बना रखा है। तो 'कर्ज़' की भाषा से यहा काम चलनेवाला है।"[339]

आदिवासी धर्म नहीं धूमाल चाहते थे। उनके कष्ट के दो ही कारण थे— राम और राज। तब वे धर्म कैसे चाह सकते थे। यह बात गोविंद गुरू को देर से समझ में आयी थी शायद इसीलिए कथा के अंत होते होते वे धूमाल को अपनी मूक सहमति प्रदान कर देते हैं—"मानगढ़ पर संग्राम के दौरान कुरिया कुंडा की घाटी और शिलाखंड की आड में मोर्चा लेने की कोशिश में फिसल गया था। उसके हाथ में धनुष बाण था। मानगढ़ पर्व से कुंडा की घाटी के ऊपर उड़ते हुए सफेद गिद्ध पर उसने तीर चलाया। गिद्ध पंख फड़फड़ाता घाटी में गिर गया। बुलंद आवाज में कुरिया न हलकारा दिया धूमाल ! कुंडा की घाटी में प्रतिध्वनी गूँजी- धूमाल...धू...मा....ल...!!"[340]

कुरिया ऐलान सुनकर गोविंद गुरू को लगा उसके मन के भीतर प्रवाहित आशा की नदी में अचानक उफान आ गया हो। पीछे बंधे हुए दोनों हाथों की मुट्ठियाँ अपने आप भिंचती गई। आशीर्वाद की मुद्रा में वे अपना दाहिना हाथ हवा में उठाना चाहते थे, लेकिन विवश थे। उन्होंने सिर ऊँचा किया। जिधर से कुरिया के हलकारे की आवाज़ आई, गर्दन मोड़कर देखा उसके होंठों पर कंपन हुआ वैसे वे कह रहे हों—"रे कुरिया भाई, हम एक माँ के पेट के जाये तो नहीं, पर धूणी माता के गोद में पल कर हम एक से भगत बने थे। मुझे ऐसे साधु की साधना का पुण्य

[339]वही, पृ.सं. 310-311.

[340]वही, पृ.सं. 375.

परताप तेरे साथ है। अब तू ही मेरी दाहिनी भूजा है। तू लड़ते रहना मेरे बांका भगत। धरम के कुरूछेतर में दे-सबेर भोलेनाथ जरूर हमें जितायेगा।"[341]

लेखक हरिराम मीणा ने इतिहास के पन्ने पलटते हुए आदिवासी-समाज को सत्ता किस तरह शिकार बनाती है। तथा उनके अधिकारों में कभी तरक्की नहीं होने देती। इसी का चित्रण उपन्यास में दिखाई देता है।

*'ब्र'*उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के राजकीय जीवन को उद्घाटीत किया गया है।'ब्र' का मतलब अन्याय के प्रति एक शब्द (ब्र) भी न बोलते हुए सहन करना ही है। उपन्यास के नैरेटर प्रफुल्ला नायिका परिलक्षित होते हुए भी वह इस उपन्यास की नायिका नहीं है बल्कि वह कथावाचक के रूप में ही अंत तक दिखती है। प्रफुल्ला आदिवासी महिला सरपंचों पर होनेवाले 'अविश्वास प्रस्ताव' के विरोध में आदिवासी महिलाओं की आवाज़ बुलंद करने का काम 'प्रगत स्वयंसेवी संगठना' के माध्यम से करती है।आदिवासी सरपंच महिलाओं के इसी समस्या के संदर्भ में स्वयंसेवी संगठना दो दिन की कार्यशाला का आयोजन करते हैं। इस कार्यशाला के माध्यम से उन्हें आदिवासी महिलाओं के राजकीय अनुभव को परखना था।तो सभी आदिवासी महिला सरपंचों अपना अनुभव सुना रहे थे। उन महिलाओं में कडुबाई नामक महिला सरपंच को गाँव का उप-सरपंच ने ग्रामपंचायत कार्यालय से निकाल देते हुए कडुबाई उसकी औकात दिखाता है। इसी अनुभव को उप-सरपंच के लहज़े में बताते हुए कडुबाई कहती है—"सरकार ने नियम बनाया इसलिए तुम्हारा नाम हमें देना पड़ा। उसी की मस्ती दिखाना नहीं। इन भिखारियों को खाने को दाणा नहीं मिलता लेकिन बैठने के लिए खुर्ची चाहिए।"[342]

---

[341]वही, पृ.सं. 376.

[342]ब्र, पृ.सं. 13.

*'ग्लोबल गाँव के देवता'*उपन्यास का प्रारंभ एक असुर मंत्र से होता है । उपन्यास का नायक मास्टर के जीवन में लंबी बेरोजगारी, बदहाली, अपेक्षा, अपमान की गाढ़ी काली रात के बाद रोशनी आयी थी । जो उपन्यासकार (मास्टर) को नियुक्ति पत्र देखकर खुश होना है या उदास, कुछ समझ में नहीं आ रहा था । मास्टर की पोस्टींग उसके घर से ढ़ाई-तीन सौ किलोमिटर दूर हुआ था । पीटीग गर्ल स्कूल में जो प्रखंड कोयलबीघा का भौंरापाट । पहाड़ के ऊपर, जंगलों के बीच वह आवासीय विद्यालय । वहाँ आदिम जनजाति परिवार की बच्चियों के लिए था । उस स्कूल में मास्टर की विज्ञान-शिक्षक के रूप में नियुक्ति हुई थी । मास्टर इस इलाके में हरगिज जाना नहीं चाहते थे । और उनके परिवार वाले भी उन्हें भेजना नहीं चाहते थे । इसलिए उनके बाबूजी अपने बच्चे (मास्टर) की पोस्टींग राजधानी या आसपास के इलाके में करने के लिए घिघिया रहे थे—"आप ही के आशीर्वाद से नौकरी भेंटायी है, अब पोस्टींग भी लड़का का ठीक-ठीक जगह हो । आप ही को तो कृपा करनी है ।"[343] बाबूजी का विधायक के सामने घिघिया ने का कोई मतलब नहीं रहा । जैसे-तैसे ज्वाइनिंग आखरी तारीख 30 जून आ ही गई । मास्टर थक-हारकर, उदास-निराश होकर जैसे-तैसे भौंरापाट स्कूल पहुँच गए । पर मास्टर का ध्यान विधायक जी पर लगा हुआ था । वह एक भी क्वार्टर रहने लायक नहीं था । मकड़ी की जाल, धूल-धक्कड़ और सड़-से किवाड़-खिड़कियाँ । एक लेडी पिऊन झाड़ू पोछा लगाकर एक रूम रहने लायक कर दी थी । इस इलाके में कोई ढंग से बोलने-बतियाने वाला नहीं शाम होते ही सन्नाटा उतर आता । बिजली आती-जाति रहती । इतवारी (पिऊन) मास्टर की भी रोटी सेंक दिया करती थी । उसका आदमी मायनर था । खान कामगार । खट कर पी-पाकर आता, खाता और चुपचाप से सो जाता । एक रात मास्टने अपने साथी किरानी बाबू के घर सखुआपाट में ठहरकर देखा । क्वार्टर तो था कोयलबीघा अंचल कार्यालय के हल्का कर्मचारी

---

[343]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 07.

का। खुद रहता नहीं था, किराये पर उठा रखा था। उन क्वार्टरों में इतना हंगामा-शोरगुल होता है, निंद आना मुश्किल हो जाता है।

एकाएक मास्टर के कमरे में एक असुर काँपता हुआ आ जाता है। मास्टर को कुछ सूझा नहीं कि उस आदमी से बात कैसे शुरू करें ? उसी बीच एतवारी आ जाति है और कहती है—"अरे... ई तो दादा है। लालचन दादा। हमारे गाँव नवाअंबाटोली के प्रधान, बैगा बाबा के बड़े बेटे लालचन असुर।"[344]असुर नाम सुनते ही मास्टर के बचपन की सारी कहानियाँ उलटी घुम रहीं थी। हफ्ता भर से इन लोगों के साथ रह रहा था—"न सूप जैसे नाखून दिखे, न खून पीनेवाले दाँत। कैसी-कैसी गलत धारणाएँ। खुद पर ही अजब-सी शर्म आ रही थी।"[345]''

असुर समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा, अंधविश्वास प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है। किंतु वर्तमान समय में थोड़ा कम नज़र आता है। खरीफ के सीजन में दो-एक घटनाएँ घट ही जाति हैं। यहाँ आदमी के जान की कोई कीमत नहीं होती। असुर लोग ऐसा मानते हैं कि धान को आदमी का खून में समाकर बिचड़ा डालने से फ़सल अच्छी होती है। इस अंधविश्वास को नष्ट करने के लिए मास्टर इन सब का विरोध करते हैं तो वहाँ के असुर कहते हैं—"आप लोग दो अक्षर पढ़ गये हैं तो सब कुछ मज़ाक लगता है। हँसी-मज़ाक नहीं है समझे। फेरा में पड़िएगा तो समझ में आ जाएगा।"[346] असुर लोगों की यह धारणा है कि, देवी पूजन के सीज़न में बलि खुद-ब-खुद गाँव पहुँच जाता है। ऐसे अघोर प्रथाओं के विरोध में जन जागृति करना अभी बाकी है। भारत के अनेक आदिवासी इन्हें प्रथाओं का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं।

---

[344]वही, पृ.सं. 11.

[345]वही, पृ.सं. 12.

[346]वही, पृ.सं. 13.

'ग्लोबल गाँव के देवता' में इन सब के बावजूद विश्व के देशों और महादेशों में हो रही शोषण, दमण, अन्याय तथा अत्याचार का भी उल्लेख हुआ है । जैसे दक्षिण अमेरिका और आफ्रिका के विभिन्न देशों में, उत्तरी अमेरिका का उल्लेख मिलता है । अमरिका के इंका, माया, एज्टैक आदि । संस्कृति विहिन, भाषा विहिन, साहित्य विहिन तथा धर्म विहिन आदिवासियों को यहाँ दिखाया है । रणेंद्र कहते हैं—"छाती ठोंक-ठोंककर अपने को अत्यंत सहिष्णु और उदार कहनेवाली हिंदुस्तान संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी भी जगह नहीं छोड़ी थी । वे उनके लिए बस मिथकों में शेष थे । कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं ।"[347]

असुर समाज में बढ़ती गरीबी और भूख के कारण उस समुदाय की जवान लड़कियों में संपन्न जमींदारों, नौकरशाहों, खदान के मालिकों और प्रभावशाली कारिंदों की रखैलों के रूप में उनके हाथों का खिलौना बनने का उल्लेख भी इस उपन्यास में है । असुर समाज में स्त्री-पुरुष के बीच समानता है और स्त्री अपना सहज जीवन जीने के लिए स्वतंत्र है । इसलिए उपन्यासकार असुर स्त्रियों का 'जननी' नहीं बल्कि 'सियानी' कहते हैं । उपन्यास में मजेदार बात यह है कि, वर्तमान में हम जिसे 'लिविंग टुगेदर' कहते हैं, वह आदिवासियों में बहुत पुराना है और प्राचीन काल से ही चलती आ रही प्रथा है । उपन्यासकार ने असुर समुदाय की संस्कृति, प्राकृति, पूजा-पाठ, देवी-देवताओं को भी इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

इस उपन्यास में पाँच कविताएँ हैं वे कथा को गति देती हैं और प्रभाव को गहराई भी । उपन्यास के आरंभ के पहले एक असुर मंत्र है जो असुर जीवन की सीमा और संभावना, सच्चाई और आकांक्षा तथा भावना और कल्पना को व्यक्त करता है । दूसरा गीत असुरों के परिवार में देवर-भाभी के बीच मौजूद आत्मीय संबंध को व्यक्त करता है, जैसा कि, मुख्यधारा के गाँव में भी

[347]वही, पृ.सं. 33.

दिखाई देता है। तीसरे गीत में शिकायत या विलाप है। चौथा गीत प्रेम की प्रगाढ़ता का है जो एक प्रेम प्रसंग में गाया गया है। पाँचवा गीत रेड इंडियन्स समुदाय के सर्वनाश की वास्तविकता और समुदाय के अंत की संभावना का गीत हैं। इन गीतों को सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक मैनेजर पांडेय कहते हैं—"यह विषाद से भरा गीत इस उपन्यास का प्राण है, मरणांतक दर्द से छटपटाता प्राण। यह असुर समाज की हताशा का भी गीत है।"[348]उपन्यास समाप्त इन शब्दों के साथ होता है—"राजधानी के यूनिवर्सिटी हॉस्टल से सुनिल असुर अपने साथियों के साथ के साथ कोयबीघा, पाट के लिए निकल रहा था। लड़ाई की बागडोर अब उसे सँभालनी थी।"[349]उपन्यास के कथानक में असुर आदिवासियों के जीवन से लेकर मृत्यु-संस्कार, अंधश्रद्धा, विश्वास, अघोर प्रथा, भारतीय आदिवासियों के साथ-साथ आफ्रिका, अमेरिका के आदिवासियों का जीवन चित्रण किया गया है। हिंदी उपन्यासों यह एक महत्त्वपूर्ण आदिवासी उपन्यास है।

5.2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण

उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है— उपन्यास के पात्र और उनका चरित्र-चित्रण। पाठक किसी भी उपन्यास के कथानक को एकाध बार पढ़कर उसे आसानी ने भूल सकता है, लेकिन उनके पात्र, उनके गुम एवं व्यक्तित्व को नहीं भूल सकता। इस संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद कहते हैं—"मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[350]

---

[348]नया ज्ञानोदय, पृ.सं. 16.

[349]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 100.

[350]कुछ विचार, पृ.सं. 71.

उपन्यास की कथा को अपने लक्ष्य तक ले जाने के लिए पात्र एवं चरित्र चित्रण महत्त्वपूर्ण होता है । पात्रों के आंतरिक भाव एवं गतिशीलता के आधारपर ही उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है । अतः उपन्यास की कथा में पात्रों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । यह पात्र कथा के क्रम में स्थित, अस्थिर, गतिशील या अगतिशील रूप में कार्य करते हैं । जो उपन्यास की कथा को अपने उद्देश्य तक पहुँचाते हैं । अतः कहा जाता है कि चरित्र-चित्रण के बिना उपन्यास की कल्पना तक संभव नहीं है । उपन्यासकारों ने सामाजिक-जीवन के विविध आयामों एवं समस्याओं को उनके जरिए हमारे सामने लाये हैं, अतः चरित्र-निर्माण के विषय में रचनाकार का दायित्व बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है । वह ऐसे उदात्त चरित्रों के द्वारा अपनी बात को जन समाज के सामने रखे । हिंदी और मराठी उपन्यासों के पात्र उपन्यास को गति देने वाले ही पात्र है । इन पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार समाज परिवर्तन कीजिम्मेदारी उठाते हुए दिखाई देते हैं ।

पात्र के चरित्र-चित्रण के लिए चाहे कोई भी विधि क्यों न अपनाई जाय, परंतु उनमें स्वाभाविकता का गुण होना चाहिए । उपन्यास के पात्रों का व्यवहार ऐसा होना चाहिए जैसा वास्तविक जीवन में आम आदमी का होता है । उनमें अस्वाभाविकता नहीं आनी चाहिए । लेखक को अस्वाभाविकता के दोष से बचना चाहिए । इसके लिए प्रत्येक “उपन्यासकार का कर्तव्य है कि वह पात्र का क्रमिक विकास प्रस्तुत करे- आरंभ में पात्र कतिपय गुण-दोषों का उल्लेख कर तदुपरांत विविध परिस्थितियों, प्रभावों, व्यक्तियों, अनुभवों और प्रतिक्रियाओं के मध्य उसके चरित्र का विकास दिखाए । पात्र का आकस्मिक चरित्र-परिवर्तन अविश्वसनीय होता है । दुष्ट का एक रात में सज्जन हो जाना संभव तो है पर सामान्य नहीं । अतः लेखक को उससे बचना चाहिए, यदि चरित्र में परिवर्तन दिखाया जाय, तो वह क्रमिक, स्वाभाविक और सहज होना चाहिए ।.... सफल चरित्र-चित्रण के लिए मानव-स्वभाव का सामान्य ज्ञान, मनुष्य के

अंतर्मन का परिचय, उसके भावों, विचारों, राग-द्वेषों, अंतः संघर्षों की जानकारी के अतिरिक्त सहानुभूति, कल्पना-शक्ति तथा वर्ग विषेश की जानकारी अपेक्षित है।"[351]

हिंदी और मराठी उपन्यासों के सभी पात्र महत्त्वपूर्ण दिखाई देते हैं। इन पात्रों को— समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र, विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र, संस्कृति के रूप में स्त्री-पात्र, अन्याय-अत्याचार करनेवाले पात्र, आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सोचवाले पात्र, प्रमुखभूमिका निभानेवाले पात्र तथा गौण पात्र आदि बिंदुओं में विभाजित किया गया है। जिनको हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।

5.2.1. समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं जो अपने समाज के परिवर्तन को केंद्र में रखकर आगे बढ़ते रहते हैं। समाज परिवर्तन यह एक अत्यंत कठिन विषय है। इस प्रक्रिया में समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली का एक नया जन्म होता है। इसके अंतर्गत मूलतः परिस्थिति, वर्ग, स्तर, भाषा तथा व्यवहार के अनेकानेक प्रतिमान बनते हैं बिगड़ते हैं। आधुनिक संसार के प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ है तथा विभिन्न समाजों ने अपने तरीके से इन विकासों को समाहित किया है, ऐसे ही समाज विकास एवं समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र हिंदी तथा मरठी के उपन्यासों में परिलक्षित होते हैं।

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में बँगडू तथा कालू चमार समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र हैं। उपन्यास में रखलुआ गाँव की बस्ती को तीन हिस्सों में बाँटा गया है। यहाँ मालिक, दलित तथा आदिवासी (बंधुआ मजदूर) रहते हैं। आदिवासियों को शिक्षा का ज्ञान न होने के कारण वे मालिक लोगों का अन्याय-अत्याचार सहते रहते हैं। किंतु कालू चमार पाँचवी क्लास पास था और पढ़ना-लिखना भी सीख लिया था। इसलिए मालिक लोगों के विरोध में आवाज़ उठाता है।

---

[351]पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ.सं. 367.

और नेताजी के दी हुई भाषण को याद करता है—"हर आदमी को अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। अब दबने का जमाना गया। जब तक भिड़े रहो तो सही सलामत। कहीं जरा से भी दब गये, तो गाँव की कुतिया भी डाँटने-फटकारने लगती है।"[352] और पटवारी से लेकर कलेक्टर तक की दरख़ास्ते कमिश्नर से लेकर प्रधानमंत्री तक देते रहता है—"पिछले पाँच सालों में उसने दो पटवारियों, चार तहसीलदार के खिलाफ परगनाधिकारी के यहाँ, परगनाधिकारी के खिलाफ कलेक्टर साहब के यहाँ और इसी तरह से कमिश्नर, मुख्यसचिव, मंत्री, मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री के यहाँ दरख़ास्ते भेजता रहा था। प्रधानमंत्री के ऊपर गाडी अटक जाति थी।"[353]

मराठी के 'हाकुमी' उपन्यास में समाज परिवर्तन करनेवाला पात्र कन्ना है। मेडिकल की पढ़ाई करके अपने कांदोली गाँव तथा समाज की सेवा करनेवाला कन्ना समाज में व्याप्त अनिष्ठ प्रथा, परंपरा एवं अंधश्रद्धा जैसे व्याधियों को दूर करने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देता है। आदिवासी माडिया गोंड समाज में जिस लड़की की शादी होने वाली होती है उस लड़की को पूरे वस्त्र पहनने का अधिकार नहीं था। अगर वह लड़की पूरे बदन पर वस्त्र धारण करती है तो उस गाँव पर तल्लोई का कोप हो जाता है। ऐसे समाज धारणाओं को पवरी विरोध करती है तब कन्ना भी पवरी के समर्थन में अंधश्रद्धा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हुए अपने पिताजी से कहता है—"देखो बाबा, तुम याद रखों। मैं पवरी को नग्न रहने नहीं दूँगा। अब पवरी ने भी नग्न रहने की ठानी तो भी या उसे तल्लोई की आज्ञा रही तो भी...।"[354]

---

[352]गाथा भोगनपुरी, पृ.स. 35-36.

[353]वही, पृ.सं. 36.

[354]हाकुमी, पृ.सं. 18.

जब गैर-आदिवासी लोग आदिवासियों के प्रति हमदर्दी दिखाते है तब कन्ना को वह केवल दिखावा लगता है । क्योंकि शहरी लोग‘संस्कृति संरक्षण’ का ठेकाआदिवासियों पर थोपते हैं । इस बात का कन्ना को बहुत बुरा लगता है । इसलिए वह कहता है—“आदिवासियों की संस्कृति की रक्षा करो का मतलब क्या है ?हमारे मनुष्य केवल लंगोट पर ही रहे, हमारे स्त्रियाँ नग्न ही घुमे और उन्हें कोई इधर देखने आए तो उन्हें नग्न रूप में नृत्य दिखाए । हमारे मनुष्य जंगली संस्कृति के साथ समझौता करते हैं । तो इस संस्कृति का नाम समझौता और उसका जतन आदिवासी करें । लेकिन हम किसके लिए करें ?”[355] आगे कन्ना सोचता है कि, केवल व्याख्यान, सेमिनार तथा कार्यशाला से आदिवासियों का विकास नहीं होता । आदिवासी-समाज के प्रति श्रद्धा हो तो उनके मूलभूत प्रश्नों को समझना तथा उनके पास जाकर कार्य करना कन्ना को उचित लगता है । इसलिए कन्ना अपने समाज की प्रगति के लिए कांदोली गाँव में रहकर वहाँ गरीब आदिवासी लोगों की सेवा करता है । समाज के प्रति उत्तरदायित्त्व बताते हुए वह कहता है कि—“मैं जिस दुनिया में रहता हूँ, वहाँ मैं अपने समूह का सभासद हूँ । यहाँ मुझपर मेरे अकेले का हक नहीं है तो मेरे बाबा-डोबा, याया-माता, चाचा, वंजा के दादी से लेकर गाँव के भूमया तक हर व्यक्ति का मुझ पर अधिकार है ।”[356] ऐसे अनेक विचारों से कन्ना अपने समाज परिवर्तन करनेवाला तारा दिखता है ।

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास में रूमझूम समाज परिवर्तन करनेवाला पात्र है । रूमझुम ग्रेजुएशन तक पढ़ाई किया हुआ, साँवला, चमकता चेहरा, तीखी नाक, बोलती हुई आँखें । घुँघराली दाढ़ी और बालों की घुँघराली लटें कन्धों को छूती हुई । रूमझुम उपन्यास के नैरेटर को अपनी असुर जनजाति का इतिहास ऐंथ्रोपॉलोजी तथा देवासुर संग्राम के बारे में बताता है ।

---

[355]वही, पृ.सं. 45.

[356]वही, पृ.सं. 109.

वह समाज के प्रति अपनी चिंता जताते हुए कहता है कि—“असुरों के सौ से ज़्यादा घरों को उज़ाडकर बना था यह स्कूल । ... हमारी ही छाती पर ताज़महल जैसा स्कूल खड़ा कर हमारी हैसियत समझाना चाहते हैं लोग ।”[357]

रूमझुम अपने समाज पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार, जमींन उत्खनन, बॉक्साईड़ निकालकर बाहर भेजनेवाली बहुराष्ट्रीय कंपनी ‘वेदांत’ के खिलाफ विधायक, सांसद से लेकर प्रधानमंत्री तक पत्रव्यवहार करता है । प्रधानमंत्री को पत्र में कहता है—“हमारी बेटियाँ और हमारी भूमि हमारी हाथों से निकलती जा रही है । हम यहाँ से कहाँ जाएँगें ? यह हमारी समझ में नहीं आ रहा ।”[358]

‘झेलझपाट’ उपन्यास में केरू नामक युवक अपने समाज परिवर्तन करने लिए तत्पर रहता है । किंतु वह समाज के अन्याय के विरोध में उतनी आवाज़ नहीं उठा पाता जितने अन्य उपन्यासों के नायक तथा समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र उठाते हैं । आदिवासियों के लिए आई हुई साड़ियाँ जब रहीमसेठ अपने पास लेता है तब केरू सोसायटी के वुईके साहब से कहता है—“तुम आदिवासी स्त्रियों से क्यों लिखवा लिए की उनके लिए आई हुई साड़ियाँ उनमें बाँट दिए हो?”[359] तब साहब उसे कहने लगता है कि केरू तू इस झमेले में क्यों गिरता है ? केरू स्वतः से बुदबुदाता है कि—“किसी में दम नहीं, इसलिए हमें क़ीमत नहीं ।”[360]

---

[357]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 19.

[358]वही, पृ. सं. 84.

[359]झेलझपाट, पृ.सं.30.

[360]वही, पृ.सं. 30.

कोरकू ढाणा में लोगों को कासम मन्यारवाला लालपरी के व्यसन में फँसाता है। तब केरू अपने समाज के हित के लिए कासम मन्यारवाले से पूछता है कि, तू लालपरी क्यों बेचता है ? तब कासम कहता है मेरे पास लालपरी नहीं है। उसे केरू कहता है कि—"तेरी झड़ती लेवू क्या ?"[361] किंतु केरू इस जहरीले साँप कासम को लालपरी बेचने से नहीं रोक पाया और अपने समाज को भी लालपरी के व्यसन से मुक्ति नहीं दिला पाया।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' में लालदोला, साइकिया, लालडेङा, भुचेङा, बियाकछुङा, खूमा आदि पात्र समाज परिवर्तन के विचारों से ओत-प्रोत हैं। उपन्यास में दोला नामक पात्र चतुर, चाणक्ष तथा होशियार है। जब झा, वाइ (गैर-मिजो) जोरमी तथा कामी के साथ छेड़खानी या गलत व्यवहार करता है तब वह पसीने से लथपथ हो जाता है। हमेशा अपनी संस्कृति को बचाए रखने तथा समाज के प्रति सजग रहता है। लालडेङा के विचारों पर चलता है। जोवा जब दोला की बेटी से शादी की बात करने आता है तब दोला के समाज परिवर्तन विचार प्रस्तुत होते हैं—"उसे अभी पढ़ाना है। गाँव के स्कूल में, फिर आइजाल के स्कूल में, फिर शिलांग, गोहाटी.... लिखा-पढ़ाकर कुछ काम की औरत बनाना है।"[362]दोला अपनी संस्कृति को बचाना चाहता है और वाइ से आगे बढ़ना चाहता है।

आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सोचवाले सायलो एम.एन.ए. कैम्प से भागकर ङोपा गाँव में आकर खूमा से कहने लगता है- 'तुम लोगों के रहते हुए मुझे जिंदा गाड़ दिया जाय और ङोपा में पत्ता भी न खड़के।' इतना कहते ही खूमा का खून खौलता है। वह जानता था कि गाँव फसल की छटवाँ हिस्सा वसुलने कप्तान हवा सिंह यहाँ आया हुआ है। कप्तान हवा सिंह के

---

[361]झेलझपाट, पृ.सं. 55.

[362]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 63.

रवैयेसे को खूमा अच्छी तरह वाकिफ़ था। हवा सिंह गाँव की तलाशी लेने का ऑर्डर देता है तब खूमा कहने लगता है—"नगदी की लूट, जानवरों की छूट, बेगुनाओं पर बूट और युवतियों की छातियों पर मूँठ।"[363]

'पारधी' उपन्यास का नायक चित्र्या समाज परिवर्तन के पात्रों में प्रमुख है। फासे पारधी समाज में भीख माँगना और चोरी करना यह महत्त्वपूर्ण अंग है। चित्र्या को गाँव-गाँव भटकने की और पुलिस अत्याचार सहने की जिंदगी नहीं चाहिए थी। इसलिए वह कहता हैं कि—"मुझे अब काम चाहिए। नौकरी चाहिए। मैं अब चोरी नहीं करूँगा, अब मैं भीख भी नहीं माँगता।"[364]वकील के सहकार्य से चित्र्या को सरकारी डिपो में हमाल की नौकरी मिलती है। किंतु लोग उसे चोर समझकर चैन से जीने नहीं देते हैं। जंगल के पशु-पक्षी जैसे समझते हैं। पारधी समाज को गाँव, शहरों में सहारा नहीं मिलता इसीलिए चित्र्या गैर-आदिवासियों के बारे में कहता है कि—"उसके लिए हमारा राज आना चाहिए। हमारा राज आते ही हम यह चक्र उलटा घुमाएँगे।"[365]

'काला पादरी' में बहुत ही कम पात्र दिखाई देते हैं। केवल जेम्स खाखा और आदित्य का ही पूरे उपन्यास में वार्तालाप चलते रहता है। समाज परिवर्तन के रूप में केवल जेम्स खाखा ही नज़र आते हैं। जेम्स खाखा अपनी धर्मांतरण की समस्या को लेकर चिंतित रहता है। पहले तो वह अपने माँ-बाप द्वारा स्वीकारे हुए धर्म को सराहता है। किंतु चर्च में उसके भूतकाल को पादरियों द्वारा बार-बार याद दिलाई जाति है। तब वह गुस्से से उबल जाता है। जब अन्य धर्म

---

[363]वही, पृ.सं. 119.

[364]पारधी, पृ.सं. 43.

[365]वही, पृ.सं. 157.

के लोग धर्म और जाति में बाँटते हैं तब वह कहता है—“एक बात है, हमें दलितों को बांटने की इनकी कोशिशों को रोकना होगा। ईसाई दलित, मुस्लिम दलित, हिंदू दलित और हम उराँव आदिवासी कोरवा पहाड़ी, पंड़ो। द टाइम हैज़ कम व्हेन बी मस्ट फाईट यूनाइटेडली अगेंस्ट द वल्गैरिटी ऑफ़ दीज् ब्राम्हनस एंड बनियाज़।”[366]

जेम्स खाखा की माँ तथा उसकी बड़ी बहन अनास्तसिया उसे बार-बार यहीं कहते हैं कि, फादर मैथ्यूज ईश्वर का पुत्र है। उन्हीं की वज़ह से आज हम जीवित है। इन विचारों से जेम्स सहमति दर्शाता है किंतु वह भूत से अधिक वर्तमान तथा भविष्य में विश्वास करते हुए करता है—“यह सच कि प्रभु यीशु के हमारे जीवन में आने से पहले हमारे अंदर कोई आवाज़ ही नहीं थी। कीड़ों की तरह रेंगता हुआ यह जीवन जिनकी डोर राजा दुर्जन साल के वंशजों और वहशी लुटेरों के हाथ में थी। अपमान, जिल्लत और गैर-संवेदनशीलता से भरा एक गटर था जिसमें में हम रहते थे बस किसी तरह। पादरियों ने हमें उस गटर से बाहर निकाला, ठीक है, लेकिन दैट वाज़ अवर पास्ट, यू हैव टू टेक नोट ऑफ अवर टुडे।”[367]

‘टाहो’ उपन्यास में भीम्या समाज परिवर्तन करनेवाला पात्र है। उसे मामलेदार साहब अपनी कोई संतान न होने के कारण जंगल से भीम्या को ले जाता है। भीम्या अपनी पढ़ाई पूरी करके जंगल के माँ-बाप तथा अपने समाज की ओर प्रस्थान होते समय उसकी पालन-पोषण करने वाली माँ यशोदा से कहता है—“जिन्होंने मुझे जन्म दिया वहीं मेरे मनुष्य हैं। वे जंगल

[366]काला पादरी, पृ.सं. 37.

[367]वही, पृ.सं.46.

तड़फ-तड़फ के जी रहे हैं। उनके विकास के सारे रास्ते बंद हो चुके है। उस अमस्या जैसे अंधेरी जिंदगी में अन्याय-अत्याचार, जुल्म होते रहते हैं।"[368]

प्यारेलाल सेठ आदिवासियों की जमींने हड़पकर बैठा था। आदिवासी लोग उसके यहाँ बंधुआ मजदूर के रूप में काम कर रहे थे। भीम्या शहर से गाँव आने के बाद कानूनी तौर पर आदिवासियों के जमींने वापस दिलाता है। और प्यारेलाल सेठ को धमकी भरे स्वर में कहता है—"प्यारेलाल तुम भोलेभाले आदिवासियों को लूटता है। यह जमीन उनकी है। ये लोग पसीना बहाते हैं। भीम्या अपने जेब से कागज़ निकालते हुए- धिस इज गव्हर्मेंट ऑर्डर।"[369]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में अल्मा, राणा, कदमबाई, माँ भूरी आदि समाज परिवर्तन करनेवाले पात्रों के रूप में उभरकर सामने आते हैं। कबूतरा जनजाति अज्ञानता, अंधश्रद्धा, अशिक्षा से ग्रस्त है। किंतु अपने बच्चों को शिक्षा की ओर मार्गस्थ करने के लिए माँ भूरी प्रयासरत रहती है। उसके लिए अपनी इज्जत देते हुए बेइज्जती सहन करती है—"बेटे को कुल्हाड़ी डंडा न थमाकर पोथी-पाटी पकड़ाई। और मन कागज़ की तरह हलका कर लिया। माना कि मद के प्यास लोग उसका ईमान छीनते और वह धरती पर लेटी सरग के तारों में रामसिंह को सितारे की तरह टाँक देती। कबूतरी के लिए कज्जा लोगों को 'न' कहना भारी पड़ रहा था, पर कबूतरा जीवन का बोझ बेटा न ढोए, इसलिए भूरी बदनामी की वजह ढोने को तैयार हो गई।"[370]अपनी गलतियाँ अपने बेटे को न ढोने पड़े इसलिए भूरी ने—"माते, पुजारी,

---

[368]टोहो, पृ.सं. 44.

[369]वही, पृ.सं. 61.

[370]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 75.

सिपाही, मास्टरों के जरिए रामसिंह के लिए इज्जत खरीदनेवाली माँ बेहिचक बेइज्जत होती रही ।"[371]

राणा से प्यार करनेवाली अल्मा की शादी तय होती है । तब राणा के आँखों के सामने सरमन, दूलन, मलिया, खुरदा और सबसे आगे अल्मा दिखाई देती है । राणा अंधेरे को चीरता हुआ अल्मा के पास जा पहुँचता है । और कहता है—"मैं लड़ लूँगा । अल्मा की बात सोचनेवाले का मगज़ छोड़ दूँगा । बेचनेवाले का सिर काट दूँगा । छुरा चलाने में उस्ताद मैं... माँ की कुल्हाड़ी-विद्या आती है । काका पर बरबादी पर तुला है । ताकत की बातें करके मुझे यहाँ लाया था, कायरपन दिखा रहा है । अल्मा का वर खोजा था, बेटी बेचने को मजबूर होनेवाला है । पुराने रूढ़ियाँ खारिज करने की बातें करता है, खुद बिकता जाता है । उबाल खाकर उकसाने वाले का खून ठंडा हो चला ।"[372]

'कोळवाडा' में गोकुळ समाज परिवर्तन करनेवाला पात्र है । तेली गुरूजी के प्रभाव से वह स्कूल जाने लगता है । गोकुळ पढ़ाई में होशियार था किंतु गरीबी से मजबूर था, वह हमेशा अपने समाज के प्रति चिंतित रहता है । उसे पता था कि पढ़ाई के बगैर समाज की उन्नति संभव नहीं है । इसलिए वह अपनी माँ से कहता है—"आज हम पढ़े तो अपना विकास होनेवाला है, हम कब तक लोगों की गुलामी करते रहेंगे ? कब तक चाकरी करते रहेंगे ? हम पढ़ते नहीं है इसलिए तो दरिद्रता और गरीबी में जीते हैं । तब कुछ भी हो मैं स्कूल जाकर ही रहूँगा ।"[373]गोकुळ अपने लिए सीमित न होते हुए वह समाज के प्रति भी सोचते हुए कहता है—"कम-

---

[371]वही, पृ.सं.77.

[372]वही, पृ.सं.194-195.

[373]कोळवाडा, पृ.सं. 94.

से-कम एक परिवार में दो-तीन लोग को नौकरी लगी तो, अकेले के ऊपर परिवार का बोझा नहीं आ पड़ेगा ।"[374]

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में कुरिया, गोविंद गुरू, भामित मनात, मंगल्या डामोर, सुरत्या मीणा, तंट्या आदि पात्र समाज परिवर्तन करनेवाले हैं । गोविंद गुरू आदिवासी-समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा, व्यसनाधिनता को नष्ट करने के लिए प्रयासरत थे । वह सामूहिक स्तर पर भाईचारा की बात करता है । अभी तक जो गुण आत्मसात किया था । उसे उजागर करता है । "'सम्प' के नाम पर हम सब भाई-बहन हेल-मेल की भावना से आपसी संबंध मजबूत करेंगे । यही मेल-जोल हमें एक-दूसरे से जोड़ेगा और हम संघठित होकर अपनी हितों की रक्षा करेंगे । हर तरह की बुराई का हम विरोध करेंगे ।"[375]

कुरिया को उसके गाँव के लोगों ने बताया था कि, हर मनुष्य के अंदर एक ज्योत रहता है । तब कुरिया ने चकमक से चिंगारी पैदा की । चिंगारी आग बनी । कुरिया समाज परिवर्तन के लिए सोचने लगता है—"जो पत्थरों में आग है तो पहाड़ में आग है । और जो पहाड़ में आग है तो जिन पहाड़ों में आदिवासी रहते हैं उन आदिवासियों के भीतर भी आग होनी चाहिये । इस आग को मैं जलाना चाहता हूँ ।"[376]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में बिसराम, कुमार, मलारी, नोनिया समाज परिवर्तन करते हुए दिखाई देते हैं । कुमार जब दुबे जी से मिलने दिल्ली जाता है तब दुबेजी उसे भिखारी की तरह लौटा देता है । कुमार सोचने लगता है—"ऐसे ही लोग मंत्री होते हैं ? इन्हें तो

---

[374]वही, पृ.सं. 195.

[375]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 71.

[376]वही, पृ.स. 23-24.

शुद्ध-शुद्ध बोलना भी नहीं आता। न सलीका, न सऊर, न ज्ञान, न आत्म-सम्मान। तीन-तीन बार कुत्ते की तरह प्रधानमंत्री निवास पर भेंट लेकर हाजिरी देने जाना, ताकि कुर्सी बची रहे। फाइलों पर जरा भी ध्यान नहीं। कितने दयनीय थे मंत्रीजी ? और तुम... ? किसी ने उसके अंदर से ठहाके लगाए। उसने घबराकर आईने से नज़रें फेर लीं।"[377]

'ब्र' उपन्यास में जिजा एवं आदिवासी स्त्री सरपंच- सगनीबाई, चानी, कडुबाई, तारूबाई, राधाबाई, नवलीबाई, मुकनेबाई, कावेरीबाई आदि स्त्रियों ने समाज परिवर्तन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन आदिवासी महिला सरपंचों ने अपने पति तथा गाँव के अन्य समाज के उप-सरपंचों के खिलाफ़ आवाज उठाते हुए अपना समाजिक एवं राजकीय दायित्व निभाती है। उच्चजाति के गैर-आदिवासी लोग आरक्षित महिला सरपंच को नीच समझते हुए स्त्री सरपंचों का फायदा उठाते हैं। इन स्त्रियों का कहना है कि—"वे आदिवासी होने का तथा औरत होने का गैर फायदा लेते हैं।"[378] इस अन्याय के विरोध करने के लिए जीजा तलाक होने के पश्चात् 'जागरूक आदिवासी संघटना' के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों को न्याय दिलाने का काम करती है।

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में हारिल, सिदो, कान्हू, नांगला मुण्डा, लाली, गंगवा मुरमू, कइली देई, चम्पा देई, माँझी आदि पात्र समाज परिवर्तन के रूप में उभरकर सामने आते हैं। समाज परिवर्तन हर कोई नहीं कर सकता है। कुछ लोग गुलामी स्वीकार करके अपने ही समाज से धोखाबाजी करते हैं। करमा को भी ऐसे ही गुलाम तथा दलाली करते लोग पीठ पीछे से वार करते हैं। समाज के इन गद्दारों के प्रति चिंता जताते हुए सिदो कहता है—"जब तक हम

[377]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 40.

[378]ब्र, पृ.सं.18.

जंगल के लोग एक-दूसरे के लिए करमा की तरह जीते-मरते रहेंगे तब तक कोई दीकू-ललमुँहाँ आदिवासी पर राज नईं कर सकता रे । जिस रोज मुण्डा, संताल, उराँव, पहाड़िया का भेद आदिवासी के मन में होगा... जिस रोज दो भाई एक थाली का भात बाँटकर खाने लगेंगे, समझ लेना जंगल पर विपदा टूटेगी ।"[379]

रोहतास दुर्ग के पराजय की आग आज भी उराँव स्त्रियों के भीतर धधकती है । रोहतास दुर्ग के पराजय ही उराँवों को विस्थापन के संकट में धकेल दिया था, उराँव जनजाति को गृहविहीन कर डाला था । उराँवों के जीवन में संकट आए थे । उराँव समाज को सजग एवं परिवर्तन करने के लिए हारिल मुरमू कहता है—"तीर से लगे घाव पीड़ा देते हैं परंतु अपमान भी कम पीड़ादायक नहीं होता । पेट की आग सब कुछ जला सकती है । मनुष्य का मान, प्रतिष्ठा, मूल्य, लक्ष्य, स्वप्न और आकांक्षाएँ । जठराग्नि में सर्वस्व झोंक डालता है विवश मनुष्य परंतु आदिवासी उराँव समाज के लिए पेट की आग के समतुल्य ही था पराभव का दाह भी !"[380]

'तंट्या' उपन्यास में तंट्या, बिजल्या, दौल्या, महाद्या, उंकार, बोंद-या महाराज आदि पात्र तंट्या के साथ समाज परिवर्तन के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं । गरीब आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचार, अन्याय के खिलाफ़ इनका संघर्ष रहा है । समाज में व्याप्त असमानता का विरोध दर्शाते हैं । आदिवासियों की हीनता उनका पीछा नहीं छोड़ती तब तंट्या कहता है कि—"तंट्या भील है, निचली जाति का है, यही विचार उनके दिमाग में हमेशा रहता है ।"[381]

---

[379]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 294.

[380]वही, पृ.सं. 26.

[381]तंट्या, पृ.सं. 487.

निमाड सरकार ने आदिवासियों के जंगल पर कब्जा कर लिया था । भावनावश आदिवासियों का जीवन का सहारा जंगल ही था । उसी सहारे को हड़पने के बाद तंट्या गोरा कमिश्नर साहब को चिट्ठी लिखकर कहता है—"माय-बाप सरकारने इससे से भी नहीं मानी, तो इस निमाड जंगल के मनुष्य ईंट का जवाब पत्थर से दिए बगैर नहीं रहेंगे ।"[382] तंट्या जंगलवासियों के प्रति सजग था । अपने साथियों के साथ मिलकर उसने अंग्रेज सरकार को रणभूमि छोड़कर भागने पर मजबूर किया था । उपन्यास अनेक प्रसंग मिलते हैं जो समाज परिवर्तन के रूप में उद्भासित हुए हैं ।

5.2.2. विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र

जब अत्याचार की परिसीमा पार कर जाति है तब विद्रोह का जन्म होता है । विद्रोह या बगावत आज्ञाकारिता या आदेश का इन्कार है । यह एक स्थापित प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ खुले प्रतिरोध को संदर्भित करता है । जो व्यक्ति विद्रोही गतिविधियों में भाग लेता है, उसे विद्रोही कहा जाता है । हिंदी और मराठी उपन्यासों में विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र भी परिलक्षित होते हैं ।

'हाकुमी' उपन्यास में राजय्या एवं नक्सलवादी व्यक्ति विद्रोह करनेवाले पात्र है ।नक्सलवादियों का प्रमुख राजय्या उच्च विद्या विभूषित है । माडिया गोंड समाज को जंगल से बेदखल करनेवाले पुलिस, भ्रष्ट अधिकारी लोगों के प्रति उसका विद्रोह दिखाई देता है । वह कहता है कि—"यह के भामरागढ़ का जंगल, अश्रापित मनुष्य की दरिद्रता के साथ लड़ाई ।

[382]वही, पृ.सं. 291.

उनके शोषण करनेवालों के विरोध में युद्ध, उनके मुक्ति का संग्राम, एक नया आश्वासन, इस दुनिया को बदलना है। चोरों को हकालना है। अपनी व्यवस्था स्थापित करनी है।"[383]

नक्सलवादी नेता राजय्या को कन्ना जीवनदान देता है, तो राजय्या उसे फीस के रूप में पैसे देता है किंतु राजय्या के कार्य का महत्त्व कन्ना को ज्ञात रहता है। इसलिए कन्ना कहता है—"इस रक्कम की जरूरत नहीं है। आप हमारे लोगों के लिए कई सारे अच्छे कार्य करते हो।"[384]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में आदिवासियों पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आदिवासी विद्रोही भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं। जब सैनिक और आदिवासी (दोला और भुचेङा) के बीच फायरिंग होती है तब कई सैनिकों के पसीने छूट जाति हैं, घबराहट होने लगती है। आदिवासियों का इतिहास बताते हुए कहता है—"एक भी मिजो-परिवार ऐसा नहीं है, जिसमें से कम से कम एक आदमी लड़ाई में न मरा हो। कोई पाँच हजार मरे होंगे।"[385]

'पारधी' उपन्यास में चित्र्या एवं खारी विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र है। जानवर की तरह जीवन जीनेवाले फासे पारधी समाज को इन्सान की तरह इन्सान बनाना चाहते हैं। उन्हें लोग चोर, डाकू, गुनाहगार समझकर प्रताड़ित करते हैं। उनके हाथ को काम नहीं देते तब चित्र्या कहता है—"जब तक हम ऐसा मरते हैं, ऐसे ही मरते रहेंगे ! लेकिन हमारे अंदर का

---

383 हाकुमी, पृ.सं. 62.

384 वही, पृ.सं.73.

385 जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 181.

मनुष्य जाग गया तो हम तुम्हें जीने नहीं देंगे ।"[386] और आगे कहता है—"जीने के लिए अब हमें हथियार निकालना होगा ।"[387]

खारी की भी चिंता यही रही है कि, वह काम करके जिंदगी गुज़ारना चाहती है परंतु तथाकथित समाज इन पारधियों पर चोरी का ठप्पा लगाकर उन्हें काम नहीं देते हैं तब वह कहने लगती है—"भीख माँगकर खाने का शौक हमें थोड़े ही है ?"[388]

'कोळवाडा' उपन्यास में इरिगेशन में काम करनेवाला गोकुळ का छोटा भाई अर्जुन विद्रोही भूमिका निभाता है । इरिगेशन के कार्यालम में इंजीनियर एवं कैसियर मजदूर लोगों के मेहनत के पैसे काट लेते हैं । अर्जुन अपनी मेहनत का पैसा काटने पर विद्रोह करते हुए कहता है कि—"यह देख मेरा तनख्वाह काटने का नहीं । नहीं तो मेरे जैसा यार आदमी नहीं है । अरे तुम लोगों से भी अधिक पढ़ा-लिखा मेरा भाई है । और बैंक में अफ़सर है, समझे ? तब मेरा तनख्वाह काटने से पहले जरा सोचो । तुम तो दिन दहाड़े लूट कर रहे हो ।"[389] साहब लोग उसे नौकरी से निकालने की धमकी देते हैं । तो वह अन्याय के प्रति आवाज़ उठाते हुए कहता है कि—"क्यों कह रहे हो, सस्पेंड़ ? मुँह की जुबान मुँह में रखो । मुझे सस्पेंड करने के लिए आप लोगों को दुबारा जन्म लेना पड़ेगा । ठहरो, तुम्हें युनियन के लोगों के सामने नहीं झुकाया तो मैं गायकवाड का लड़का नहीं ।"[390]

---

[386]पारधी, पृ.सं. 09.

[387]वही, पृ.सं. 36.

[388]वही, पृ.सं. 18.

[389]कोळवाडा, पृ.सं. 199.

[390]वही, पृ.सं. 199.

'धूणी तपे तीर' में हिंसल्या, मिसुरा, कुरिया, हादू आदि पात्र विद्रोही भूमिका निभाते हैं । आदिवासियों को महाराणा तथा पुलिसवाले विद्रोह करने के लिए मजबूर करते हैं । जब आदिवासी विद्रोह करने लगते हैं । तो उनके पसीने छूट जाते हैं । जब फौजियों द्वारा भील युवक की हत्या की जाति है तब आदिवासी हथियार उठाते हैं । फौजियों की मुठभेड़ आदिवासियों से होती है । उस मुठभेड़ में 74 आदिवासी मर जाते हैं । आदिवासी हार न मानते हुए—"आगे जाकर आदिवासियों ने मार्ग में अवरोध डालकर फौज को आगे बढ़ने से रोका । साथ ही खैरवाड़ा व उदयपुर के बीच संपर्क में बाधा पैदा कर दी । ऋषभदेव में छः-सात हज़ार आदिवासी एकत्रित हुए और वहाँ मौजूद एक फौजी टुकड़ी पर हमला बोल दिया । फौज ने बंदुके चलाई । आदिवासी पीछे हटे और छापामार शैली में संघर्षरत रहें । इस विद्रोह में भीखल, पीपली, सैरों व अन्य गाँवों के आदिवासी शरीक हुए ।"[391]

'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में जुरू, राजण्णा, चंद्रण्णा, गोंगलु, सोमती विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र हैं । जुरू गरीबी, भूख तथा दरिद्रता में जीनेवाला आदिवासी है । नक्सलवादियों के अहसान, अपनेपन से ही वह नक्सलवादियों का खबरी बनता है । सरकार के प्रति तिरस्कार जताते हुए वह कहता है—"सरकार चोर है, और पुलिस उनके नौकर है ।"[392]

नक्सलवादियों ने केवल आदिवासियों के लिए काम नहीं करते हैं तो वह सरकारी कर्माचारियों के बारे में सोचते हैं । अगर सरकारी लोगों को तनख़्वाह कम मिली तो वे उन्हें भी मदद करना चाहते हैं । जुरू भी इन सरकारी कर्मचारियों के प्रति सोचते हुए कहता है—"जुरू

---

[391]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 52.

[392]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 161.

को अपनी गरीबी पर गुस्सा आया था। अब उसे साहब की अमीरी पर दया आ रही थी। साहब ने अपनी लंगोट तो नहीं निकाल ली, यही बात उसे अच्छी लगी।"[393]

चंद्रण्णा के बाद राजण्णा इस विभाग का लीडर बनता है। उसे लगता है आदिवासियों के उन्नति के लिए यहाँ क्रांति की आवश्यकता है। इसलिए वह कहता है—"क्यों रे, आदिवासी का मतलब हमेशा छोटी ऊँगली ही क्या ? और शासनकर्ता, भांडवलदार के ऊँगली बड़ी क्यों ? वे ऊँगलियाँ जिधर इशारे करें आप उधर दौड़ने का नहीं तो उन ऊँगलियों के ताल पर नाचने का ? अगर हम इन ऊँगलियों समान कर दे तो ?"[394]

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में हारिल मुरमू, सिदो, शंख रुण्डा, मराण्डी, भैरव मुरमू, सोरेन, टुडू, बासकी आदि विद्रोही भूमिका निभानेवाले पात्र हैं। यह विद्रोह केवल आदिवासियों का ही नहीं था। भगनाडीह में सीदो के हाँक पर बारहों परिस (गोत्र) के लोग इकट्ठा हुए थे। इसमें कोईरी, कुरमी, तेली, पासी, कुम्हार और लुहार थे। थोड़ी देर बाद जन की जयकार से भर उठता मैदान। कभी किसी कोने से उतावली पुकार उठती विद्रोह की। सब लोग एक साथ हथियार हवा में उचालते हुए एक सुर में कहते लगते हैं—"विद्रोह... विद्रोह... विद्रोह...! जमींदारी शोषण से विद्रोह। महाजनी व्यवस्था से विद्रोह। साहूकार के जानलेवा ब्याज से विद्रोह। कम्पनी सरकार की अन्धाधुन्ध दूरने वाली कर-व्यवस्था से विद्रोह...।"[395]

'टाहो' उपन्यास में भीम्या विद्रोही भूमिका निभाता है। जब प्यारेलाल सेठ पारू पर सामूहिक बलात्कार करता है। तब भीम्या डोंगरगाँव के लोगों से मिलकर कचहरी पर मशाल

---

[393]वही, पृ.सं. 180.

[394]वही, पृ.सं. 240.

[395]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 125.

मोर्चा निकालते हुए न्याय के लिए संघर्ष करता है । कोर्ट में प्यारेलाल के गुनाह बताते हुए कहता है—"दिखाऊँगा तुझे सबूत-तीन गुंडें और तू ऐसे चारों मिलकर पारू के साथ बलात्कार कर रहे थे । उस जंगली लड़की की इज्जत लूट रहे थे । बंद कमरे में यह सब चल रहा था । तुझे लग रहा होगा इस बात का कोई सबूत नहीं हैं, लेकिन सबूत है ।"[396]

आधुनिक युग में शासन आदिवासियों को विकास के नाम पर बेदखल कर रहे थे । तब भीम्या अपने लोगों को साथ में लेकर आवाज उठाता है—"अहिंसा से लाए गए परिवर्तन चिरकाल टिकने वाली है । संविधान के नियमों को ध्यान में रखते हुए हमें लड़ना है । बंदूक, भाला चलाने के दिन नहीं रहें ।"[397]

'तंट्या' उपन्यास में तंट्या और उसके अन्य साथीदारों ने विद्रोही भूमिका निभाते हुए दिखते हैं । तंट्या, मंगळ्या और हि-या को जबलपुर के सेंट्रल जेल में बंदी किया जाता है, तो हि-या अपने नाखुनों से दिवार को खरोचते हुए गिरा देता है । इन्होंने बाहर आकर अपना विद्रोह रूप दिखाते हुए सोचते हैं—"खंडवा को जाकर उस बड़े साहब को ही उड़ा देते हैं ।"[398]

5.2.3. संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में स्त्री-पात्र

हिंदी तथा मराठी उपन्यास की संपूर्ण जीवन दृष्टि सांस्कृतिक बोध से अनुप्रणित है । इन उपन्यासों की सृजन प्रक्रिया संस्कृति की सही अर्थवत्ता को जानने, परिभाषित करने, उसके सही स्वरूप को पहचानने, आधारभूत तत्त्वों की खोज करने, वैज्ञानिक दृष्टि से परखने और मानवतावादी दृष्टि से उसे आँकने की दिशा में क्रियाशील रही है । हिंदी तथा मराठी उपन्यासों

---

[396]टाहो, पृ.सं. 67.

[397]वही, पृ.सं. 84.

[398]तंट्या, पृ.सं. 342.

की नारी भूत और भविष्य, इतिहास और वर्तमान, परंपरा और आधुनिकता को एक साथ लेकर चलती है। अपने समाज पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत इन उपन्यासों के स्त्री पात्रों में दिखाई देती है । साथ ही इन स्त्री-पात्रों के माध्यम से उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी संस्कृति को अधोरेखांकित किया है। आदिवासियों की संस्कृति अधिकतर महिलाओं के रूप में जीवित है।

'हाकुमी' उपन्यास में पवरी, रूपी संस्कृति के रूप में परिलक्षित होती हैं। उपन्यास की नायिक रूपी है। कोरेली गाँव की रूपी, बड़े पटेल के बेटी की शादी में कांदोली गाँव में आती है। तब वह आदिवासी रेलॉ संस्कृति का दर्शन कराती है। रेलॉ में नाचनेवाली आदिवासी लड़के-लड़कियाँ खुले शरीरसंबंध रख सकते हैं। रूपी सुंदर होने के नाते लड़कों की नज़रें उसकी ओर आकर्षित हो रही थी। तब वह इन लड़कोंको छोड़कर कन्ना के पास स्वयं जाकर उसे लंगट करने के लिए जंगल में ले जाति है। उसके देह को देखकर कन्ना अवाक् रह जाता है—"कन्ना और रूपी एकरूप होने के कारण कन्ना को रूपी के देह का अंदाजा हो जाता है। उस देह पर चुनौती नज़र आ रही थी। वह चुनौती स्वीकार करते हुए कन्ना के मजबूत शरीर की छक्के छूट जाते हैं।"[399]

आदिवासी माडिया गोंडजनजाति में लड़कियाँ रेलॉ संस्कृति के माध्यम से शादी से पहले ही कई लड़को से शारीरिक संबंध बनाए रख सकती है। रूपी, कन्ना के प्यार में पागल थी। जब रूपी को तलवड़ा के लड़के ने लंगट करना चाहा तब—"रूपी उस लड़के को मारने के लिए रेलॉ में जलती हुई लकड़ी उठाती है।"[400]जब रूपी को कन्ना पढ़ाई के कारण शादी करने से इन्कार करता है, तब रूपी उसके शादीशुदा भाई जुरू का हाथ पकड़कर उनके घर में घुसती है।

---

[399]हाकुमी, पृ.सं. 37.

[400]वही, पृ.सं. 39.

माडिया गोंड आदिवासियों की यह परंपरा रही है कि जो भी लड़की घर घुसती है तो पंचायत के समक्ष उसे अपनाया जाता है। यही आदिवासियों की आदर्श संस्कृति कहलाती है।

आदिवासी-समाज में शादी के बाद किसी अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध रखना पाप माना जाता है। लेकिन—"अगर शौहर अपने बीवी की ओर आकर्षित नहीं होता है, रात को पास न आता तो वह उसका घर छोड़ देती है। और कहने लगती है- 'मुझे तेरे घर में खाना खाने लाया क्या ?' कहकर निकल जाति है।"[401] इस आदर्श संस्कृति को पवरी, नागरी संस्कृति से आए हुए अनिता को बताती है। उपन्यास में पवरी के माध्यम से आदिवासी स्त्री, शारीरिक संबंध, विवाह, काडीमोड (तलाक) तथा अन्य संस्कृति का दर्शन होता है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' में ऐतवारी, रामरति, कविता, नमिता, बुधनी, सलोनी तथा ललिता आदि पात्र संस्कृति के प्रतीक रूप में आते हैं। लालचन की भतीजी ललिता एम.ए. इतिहास की पढ़ाई कर रही थी। ललिता असुर समाज की संस्कृति तथा इतिहास बताते हुए कहती है—"लढ़ाई में छल से या धोके से असुरों को ख़त्म किया गया। लेकिन देखनेवाली बात यह कि धोखा असुर पुरूषों ने खाया, स्त्रियों ने नहीं। उस कहानी में भी असुर औरतें ही समझदारी दिखाती, विरोध दर्ज़ कराती दिखती है।"[402]

'झेलझपाट' उपन्यास में फुलय, रमोती, मालाय संस्कृति को दिखाने वाले स्त्री-पात्र है। कोरकू समाज में होली के दिन नाच-गान करना साधारण-सी बात है। इसी नाच-गान में स्त्रियों को अपना जीवन साथी मिलता है। कोरकू समाज में लंबाड्या (घरजमाई) रखने की परंपरा है। मालय ने अपने लिए लंबाड्या रखा था। इसलिए उपन्यास की नायिका फुलय, केरू के ऊपर

---

[401]वही, पृ.सं. 100.

[402]ग्लोबल गाँव के देखता, पृ.सं. 72.

मर-मिटने के लिए तैयार थी। आदिवासी स्त्रियाँ अपने पति से अपनी जान से भी ज्यादा प्यार करती है। उपन्यास में केरू के प्यार की वज़ह से फुलय कासम मन्यारवाले को मौत के घाट उतारती है। आदिवासी महिलाएँ सुशिक्षित न होते हुए भी सक्षम होती है क्योंकि केरू जब फुलय की बात नहीं मानता है तब फुलय कहने लगती है—"क्या उसने मुझे बोलने का मौका दिया था ? बड़ा आया पढ़ा-लिखा.... सच्चाई कुछ भी नहीं है... तो उसने संदेह क्यों किया मेरे ऊपर ? क्यों ? जाने दे मरने दे....।"[403] ऐसे हिम्मत भरी बातें आदिवासी स्त्री-पात्रों में दिखाई देती है। उपन्यास में नाच-गान, शराब पीना, अपना मनपसंद शौहर चुनना, परिवार चलाना आदि बिंदुओं को संस्कृति के रूप में स्त्री-पात्रों ने संजोग के रखा हुआ है।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' में स्त्री पात्रों के माध्यम से आदिवासी संस्कृति को दिखाया गया है। प्रमुख रूप से कामी, जोरमी, लालवानी, नुथलुई, रौपरी, रिनपुरी स्त्री-पात्र है। उपन्यास में कामी तथा जोरमी का स्वभाव स्वच्छंद तथा उन्मुक्त है। इसी स्वभाव के कारण गैर-मिजो (वाइ) झा के शिकार होती हैं। इस समाज में स्त्रियों को जितनी स्वच्छंदता दी जाति है उतनी अन्य समाज में नहीं होती। लेकिन आदिवासी-समाज के बाहर के मर्दों के साथ कोई स्त्री संबंध स्थापित करती है तब पंचायत से उसे सजा भी मिलती है। कठिन नियम लगाया जाता है। इसलिए जोरमी को गाँव की पंचायत गाँव से बाहर रहने की सजा सुनाती है—"जिसके तहत गैर-मिजो से शारीरिक संबंध रखने वालों को ताजिन्दगी समाज से बहिष्कृत रहना पड़ेगा।"[404]

गाँव में सब लोगों को उत्सुकता थी कि लालवानी की संतान कितनी सुंदर होगी ? लेकिन बाद वाले लोग सोचने लगे कि, साङलियाना तो गाँव से दूर है। तब लालवानी गाभिन कैसे रही

---

[403]झेलझपाट, पृ.सं. 92.

[404]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 86.

? यही चर्चा गाँव में फैल रही थी । गाँव के इतिहास में पहली बार जमदुग्गीलाल (वाइ) के अध्यक्षता में पंचायत बैठी थी । दोला को दस कोड़े और सौ रूपये का दंड लगाया गया । साङलियाना पूछता है कि, लालवानी और बच्चे का क्या करें ? पंच बोलते है कि, लालवानी को तुम रख लो और बच्चे को दोला पालेगा । साङलिया कहता है, चाहो तो छन्ना (भरण-पोषण) बाँध दूँगा लेकिन इसे नहीं रखूँगा । तब लालवानी अपनी संस्कृति के अनुरूप झल्लाकर बोलती है—“कोई छन्ना की जरूरत नहीं । जो मुझे एक बच्चा भी न दे पाया, उसके साथ नहीं रहना चाहती । दोला मेरा बच्चा पालेगा तो उसी के साथ रहूँगी ।”[405] पंचायत के निर्णय के अनुसार दोला को पेड़ से बाँध दिया जाता है । लालवानी भागते हुए आकर दोला से लिपट जाति है और कहती है—“जब साइलो ने मुझे छोड़ दिया है और इसने मुझसे शादी करना कबूल कर लिया है, तब सजा किस बात की ?”[406] इस बात पर पंच बोलते हैं—“जब तुम इसकी बीवी नहीं थी और साईलो की बीवी थी, उस समय किए गए कुकर्म की ।”[407] समाज के जो कानून, नियम है वह सबके लिए समान होते हैं ।

‘अल्मा कबूतरी’ में कदमबाई, माँ भूरी, अल्मा, आनंदी, भजनी, भैमाता, गोरकी, मुंदरा, मछला आदि स्त्री–पात्र कबूतरा जनजाति की संस्कृति के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं । कदमबाई कबूतरा जनजाति की धैर्यशील स्त्री है । अन्याय-अत्याचार, शोषण सहते हुए अपना जीवन बिताती है । अपने संस्कृति के माध्यम में मंसाराम को व्यक्त करती है—“मैं तुम्हें भूल जाति तो अच्छा था माते । पर भूलती कैसे, वह रात तो जी का जंजाल बन गई । उस रात ने जंगलिया को

[405]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 76.

[406]वही, पृ.सं.77.

[407]वही, पृ.सं.77.

भूलने दिया न तुम्हें । उस बैरी को याद कर-करके तुम्हें याद करती रही । इधर छाती सुलगती, तुम्हारी हँसी उठती । राणा गरभ में टँग गया । माँ न होती तो तुम्हें काट डालती माते । राणा को ही ख़त्म कर डालती... पर उसे ख़त्म करने से क्या मलाल घट जाता ? सो मेरा जीना-मरना तुम्हारे संग बँध गया । तब जीना नहीं चाहती थी, जीने देना नहीं चाहती थी । अब मरना नहीं चाहती और न तुम्हारा मरण.... राणा कैसी बेड़ी बन गया... अटूट बेड़ी ।"[408]

'कोळवाडा' उपन्यास में जो स्त्री पात्र है । वे समाज के प्रति सजग है किंतु संस्कृति के रूप में चित्रण बहुत ही अल्प प्रमाण में मिलता है । गोकुळ की माँ भीमी लड़कों को पढ़ाने के लिए मजदूरी करती है । किंतु लड़की को पढ़ाने के असहमति दर्शाती है । "गुरूजी लड़कों का ठीक है उन्हें स्कूल भेज दूँगी.... लेकिन लड़की को क्या जरूरत है स्कूल की । आखिर वह दूसरों की अमानत है, उसे चूल्हा ही फूँकना है ना ?"[409]

कोळी समाज का रीति-रिवाज फशी (स्त्री-पात्र) के रूप में दृष्टिगोचर होता है । इस समाज में कोई लड़की अनैतिक संबंध रखती है तो उसका जीवन बरबाद हो जाता है । इस संदर्भ में नागनाथ कोत्तापल्ले कोळवाडा के प्रस्तावना में कहते हैं—"फशी नामक युवती की यह कथा, एक स्वतंत्र कथा के रूप में सुशोभित दिखनेवाली कथा है ।"[410] इसलिए इस समाज में लड़कियों का ब्याह उम्र में आने से पहले ही कर देते हैं । समाज में बालविवाह की प्रथा अधिक दिखाई देती है ।

---

[408]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 162.

[409]कोळवाडा, पृ.सं.24.

[410]वही, पृ.सं. 05.

'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में मैनी और रूपी के माध्यम से माड़िया गोंड समाज का सांस्कृतिक चित्रण हुआ है । आदिवासी स्त्री सबल एवं स्वावलंबी होती है । वह अन्याय अत्याचार के खिलाफ लड़ने की हिम्मत रखती है । जुरू अपनी पत्नी मैनी को गालियाँ देता है तो वह जुरू कहती है कि—"मुझे गालिया देना मत... तू ज्यादा बोल मत, नहीं तो मैं चली जाऊँगी अपने भाई के पास ।"[411] माडिया गोंड जमाती में औरत पति का घर छोड़कर चली जा सकती है । और शादी से पहले पुरूषों के साथ शारीरिक संबंध बनाए रख सकती है ।

पुलिस जब जुरू की बेटी रूपी को पास बुलाता है । तो वह पुलिस को गालियाँ देते हुए घर आकर माँ से कहती है—"कुछ नहीं मैं उसे गालियाँ दी और वहाँ से भाग निकली ।"[412] आदिवासी स्त्री अन्याय के प्रति संघर्ष करते हुए नज़र आती है किंतु आदिवासी पुरूषों को बचाने के लिए कहीं बार पुलिस, ठेकेदार, रेंजर, गार्ड, तहसीलदार आदि लोगों के साथ रात बिताना ही पड़ता है ।

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में लाली, पुतली, दुधिया, बरमी, मकइया, सोनारी, चम्पिया, सुमी, फूलो, झानो आदि संस्कृति के रूप में स्त्री-पात्र दिखाई देते हैं । आदिवासियों के युवागृह को कहीं 'घोटूल' कहा जाता है तो कहीं 'रंग-बंग' । जंगल की बाहर की दुनिया में आदिवासियों के लिए युवागृह उत्सुकता तथा कौतुक का चीज रहा है । किशोरों का 'धुमकुड़िया', किशोरियों का यह 'पेल-एरपा' है । हारिल ने लाली से मिलने पलाशखाँड़ के युवागृह में गया था । वहाँ—"युवक-युवतियाँ आपसी सहमति से एक-दूसरे से मिलते-बतियाते थे । कोई जोड़ा कुछ समय एकान्त में भी बिता लेता था । चूँकि लड़के-लड़कियाँ युवा शयनगृह की

---

[411]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 29.

[412]वही, पृ.सं. 125.

गोपनीयता के प्रति वचनबद्ध होते थे अतः सब कुछ देखते-सुनते भी सोने का स्वाँग करना पड़ता था उन्हें, जिनका जोड़ा नहीं बन पाता था।"[413] इसी प्रकार साहसी आदिवासी युवक दूसरे गाँव की धुमकुड़िया में भी प्रविष्ठ हो लेते हैं।

तीन सौ वर्ष पहले हारी हुई रोहतास गढ़ की आग आज भी उराँव महिलाओं में धधकती रही है। उराँवों के पराभव की स्मृतियाँ धुँधली न पड़ जाएँ इसलिए उराँव लड़कियाँ पराभव के आग में सुई तपाकर माते पर बिंदी, ललाट या कनपटी पर गोदती है। "हर बारहवें वर्ष का फागुन उराँव समाज के लिए 'जनीशिकार' का महिना होता है। स्त्रियोचित वस्त्र और श्रृंगार तज कर पुरूषों का वेष धारण किये उराँव स्त्रियाँ परंपरागत अस्त्र–शस्त्रों के साथ पूरे वसन्त मृगया हेतु निकलती हैं। तीर-कमान, भाले-बरछे, कुल्हाड़ी और बलोया... ! पुरुषों की ही भाँति आखेट करता फिरता है शिकारिनों का जत्था।"[414]

'टाहो' उपन्यास में मैना, रमी, पारू के रूप में आदिवासी-समाज का संस्कृति का चित्रण हुआ है। मैना को पंचायत गाँव से बाहर निकालती है। मैना अपने गुनाह कबूल करती है और गाँव के पंचों से माँफी माँगते हुए कहती है—"मेरा प्रेम हुआ है, जवानी में पैर फिसल गया है। माफी चाहती हूँ। मुझे समाज से बाहर निकालो मत, मेरे माँ-बाप से दूर धकेलो मत। मैं आप सबकी बेटी हूँ, मुझे स्वीकार करों।"[415]

---

[413]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 94-95.

[414]वही, पृ.सं. 19-20.

[415]टाहो, पृ.सं. 19.

उपन्यास की नायिका भीम्या के सामजकार्य में उसे मदद करती है। जीवन के आँखरी साँस तक भीम्या के कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। "मैं थक गईं हूँ जी, आपके साथ इन आदिवासियों के लिए लड़ते हुए मुझे बहुत खुशी हुई। आज आपका नाम लौकिक है। लोग आपके नाम का जय-जयकार करते हैं। आप मुझसे एक वादा कीजिए कि इन आदिवासियों को कभी नहीं छोड़ेगे और मेरे लड़के को भी आप जैसा बनाएँगे।"[416]

5.2.4. अन्याय-अत्याचार करनेवाले पात्र

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में प्रमुख रूप से सेठ, साहूकार, तहसीलदार, पुलिस, पटवारी, गार्ड, रेंजर, जमींदार तथा प्रशासकीय अधिकारी आदि आदिवासियों के जीवन के साथ खिलवाड़ करते हुए नज़र आते हैं। आदिवासियों को जल, जंगल, जमीन से बेदखल कर उनके माँ-बेटियों के साथ संबंध प्रस्थापित करना चाहते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो उन पर झूठे इल्जाम लगाकर उन्हें मौत के घाट उतारते हैं।

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में आदिवासी, दलित तथा बंधुआ मजदूरों पर मालिक लोगों का अन्याय-अत्याचार परिसीमा लाँघ जाता है। प्रमुख रूप से दादू सिंह, कल्लू पाण्डे, लल्लू पाण्डे, भुल्लरसिंह, लक्ष्मण जीवन सिंह, शिवहरे तथा ठाकुर गमन प्रसाद आदि पात्र अन्याय करते हुए दिखाई देते हैं। भुल्लरसिंह दादू सिंह का भतीजा था। और कस्बे में रहता था। उसके पास ट्रकों की ट्रान्सपोर्ट कंपनी थी। दादूसिंह पत्ती तोड़ने का ठेका जंगल विभाग से लेता था। और भुल्लरसिंह पत्ती तथा लकड़ी ढुलाने का। वह महिने में चार-पाँच बार गाँव में चक्कर लगाता था। कुछ और वजह से ही आता था। वह जब भी आता—"कस्बे में धोतियाँ, बिंदी, चुटीले, शीशे, कंगे, तरह-तरह की चीज़े लेकर आता था। इन चीजों के बदले उसे अपनी रातें

---

[416]वही, पृ.सं. 96.

रंगीन करने का मौका मिल जाता था । गाँव आते ही मोटर सायकिल पर पुरे गाँव का चक्कर लगा लेता था ।"[417]

दादू सिंह, भुल्लरसिंह जब शिकार खेलने जाते तो आदिवासियों को साथ लेकर चलते हैं । एक दिन रेंजर साहब तलाशी लेने आ रहे थे । तो उसमें आदिवासियों को फँसाते हैं । रेंजर साहब आने की ख़बर मिलते ही शिकार और खाल आदिवासियों को दे देते हैं । बेचारे आदिवासी 'माईबाप, दुहाई हो' कहकर अपने झोंपड़ों में ले जाते हैं । जब रेंजर साहब दादूसिंह के घर की तलाशी लेते हैं तो उन्हें हाथ कुछ नहीं लगता । तब दादूसिंह रेंजर को कहता है कि 'साहब हमारे पास क्या है ? जाते-जाते आदिवासियों के टोली में देखते जाना, हो सकता है गोला-वोला रख के चीतल मार रहे होंगे ।' तब रेंजर साहब आदिवासियों के टोली की तलाशी लेता है—""पाँच चीतलों की खालें झोंपड़ों से निकलीं । छः आदिवासियों को रेंजर साहब पकड़कर ले गए । और थाने में बंद करवा दिया । डी.एफ.ओ. साहब खुश हुए, महिनों बाद शिकार का कोई केस पकड़ में आया था । आदिवासियों के भोलेपन का फायदा मालिक दादूसिंह तथा भुल्लरसिंह उठाते हुए उन्हें फँसाते हैं ।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करनेवाले अनेक पात्र है । उपन्यास में प्रमुख रूप से पुलिस, विधायक, समाज, देव, बहुराष्ट्रीय कंपनी वेदांग और टाटा आदि ।

शिवदास बाबा पहले तो आदिवासियों को अपनापन दिखाकर फँसाता है । वह लालचन तथा रूमझुम को जेल से जमानत करवाता है । बाद में आदिवासियों के पशुओं को व्यापारियों को वाज़िब क़ीमत पर बेच कर आमदनी जुटाता है । किंतु यह आदिवासियों की समझ सेपरे था ।

---

[417]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 41.

लालचन दा तो उसका चहेता बन गया था । कई बार अपने आश्रम विद्यालय के कमसिन आदिवासी बच्चियों के शरीर के साथ खिलवाड़ करता था । शिवदास बाबा का चरित्र कुछ इस तरह था—"अकेले में किसी भी उम्र की महिला को देखकर वह अपना मानसिक नियंत्रण खो देता था । भाँग-गाँजे के नशे में हो तब तो पूछिये मत, पक्का जानवर बन जाता, जानवर ।"[418]

'झेलझपाट' उपन्यास में कासम मन्यारवाला, पुलिस, रहिमसेठ, खंडेलवाल मारवाडी, ठेकेदार आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं । कासम मन्यारवाला आदिवासी तथा आदिवासियों के बहु-बेटियों पर अत्याचार करता है । वह अपनी लुकडी घोडी पर बैठकर कोरकू ढाणा आता है । उसकी एक छोटी-सी दुकान थी । उस दुकान में बिंदी, चुना, तंबाकू, हेअर पीन, काजल, रूमाल आदि छोटे-छोटे चीजे दिखावे के लिए रखता था उसका प्रमुख व्यवसाय तो लालपरी बेचकर आदिवासियों को लूटना है । "पैसों के बदले महुआ, धान, चारोली जमा करता था । एक रूपये का माल दो रूपये में बेचकर, दो रूपये का माल रूपये में लूटता था ।"[419]

इसी तरह आदिवासियों की लूट करनेवाला रहिमसेठ गौलखेडा का व्यापारी है । आदिवासी अपनी जान की परवाह न करते हुए जंगल से जाकर महुआ लाते हैं । और रहिमसेठ महुए की खरेदी, उधारी या ब्याज के पैसों में बराबर कर देता है । जब आदिवासी रहिमसेठ से जुबान लड़ाते तो कहने लगता—"अबे गधे की औलाद, ब्याज उस वक्त दिया था क्या ! अबे पटेला, डायरी में देख ले ! कहकर रहिमसेठ डायरी आदिवासीयों के सामने रखता है ।"[420]

---

[418]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 65.

[419]झेलझपाट, पृ.सं. 17.

[420]वही, पृ.सं. 43.

खंडेलवाल मारवाड़ी आदिवासियों की लूट करने के लिए कोरकू ढाणा में खटमल की तरह छिपकर बैठा था। उसे मालूम था कि होली होने के बाद दिवाली तक इन आदिवासियों के पास एक दमड़ी भी नहीं बचा रहता। तो वह इसी का फायदा उठाते हुए आदिवसासियों को कहता है कि—"अरे सानी, होली के वास्ते माल लाना है ! उधार क्या, मेरे बाप बैठे है, परसू का बाजार उधार मत माँगो...... अरे पिछला पैसा नहीं लाया। पहले वो पैसा लेके आव !"[421]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' में मिजो आदिवासियों पर गैर-मिजो (वाइ) ने अन्याय-अत्याचार के दृश्य परिलक्षित होते हैं। उपन्यास में झा, कप्तान शर्मा, कप्तान जाधव, ठेकेदार कृष्णन, हवा सिंह, जमदुग्गीलाल, मायकल आदि पात्र आदिवासियों के बहु-बेटियों के साथ ख़िलवाड़ करते हुए दिखाई देते हैं।

कप्तान जाधव पानी पीने अपने किचन में जाता है तब उसे खाकर फेंके हुए पपीता के छीलके एक मांस की गठरी बना हुए एक खा रहा था। तो कप्तान जाधव झा से कहकर मिटिंग बुलवाता है। इस मिटिंग में हायस्कूल का हेडमास्टर चोङ्खूमा को बुलाते हैं। चोङ्खूमा कहता है कि, 'सरकार फर्जी मदद की बात करती है। नहीं तो यह नौबत कतई न आती।' तब कप्तान जाधव चीखकर बोलता है—"इन्हें मुफ्त की खाने की लत पड़ गयी है। बिना स्वयं कुछ किए, अपने पाँव पर खड़ा हुए पेट नहीं भरता, चाहे बाहर से कितना ही सप्लाई क्यों न आए। और करो भारत सरकार को ब्लैकमेल।"[422]

गाँव में टैक्स वसुली के दौरान हवा सिंह को छब्बीस वर्षीय सायलो की बेटी दिखाई देती है। वह गर्भिणी थी और चार साल का बच्चा बगल में था। हवा सिंह उस पर मंत्रमुग्ध होकर

---

[421]वही, पृ.सं.33.

[422]वही, पृ.सं. 30.

उसके शरीर का चित्र रंगाता है । “ऐसा गुलाबी रंग । बड़ी-बड़ी सफेद पानीदार आँखें और उसमें बड़ी काली पुतलियाँ । सुतवा नाक, चपटे भारी गाल और उसमें हल्के से उभरे हड्डी के चौखटे, चार फिट दस इंच लंबी, पचहत्तर किलो भारी । भारी नितम्ब व भारी वक्ष के बीच पतली कमर कि पकड़ते ही टूट जाय ।”[423] इसलिए हवा सिंह बार-बार अपने पास आने की ख़बर भेजता है । किंतु वह नहीं आती तो वह उन्हें जिंदा गाड़ देने की धमकी देता है । वह गाँव छोड़कर भाग जाति है ।

हवा सिंह अमानवीय पात्र है । क्योंकि टैक्स सर्च करते हुए पादरी को पकड़ा जाता है । उसे पूछा जाता है कि, टैक्स लेने कोई आया था क्या ? पादरी नहीं बताता है । तो पादरी को थर्ड ड़िग्री ट्रिटमेंट दिया जाता है । हवा सिंह के कहने पर—“ऐसे बाताओगे नहीं । ए सूबेदार जी ! इसका लिंग चीरकर उसमें नमक भर दो ।.... चार-पाँच जवान पादरी पर टूट पड़े । पटक लिंग चिर दिए । पादरी जिबह हो रही गाय की तरह डकारता रहा, हाथ-पाँव पटकता रहा ।”[424]

‘पारधी’ उपन्यास में अन्याय अत्याचार कोई एक पात्र के माध्यम से दिखाई नहीं देता है बल्कि वह अन्याय-अत्याचार संबंध गैर-आदिवासी-समाज करते हुए दिखाई देता है । जैसे कहीं पर भी चोरी हो जाए तो पुलिस चोरों को छोड़कर फासे पारधियों के पालों पर तलाशी के लिए आ जाते हैं । इसके विरोध में शम्भुराव वकील पारधियों की बाजू लेकर बोलता है तब पुलिसवाले कहने लगते हैं—“लेकिन हमारी डायरी तो भरनी चाहिए ना !”[425] यहाँ पर चोरी किसने की यह महत्त्वपूर्ण नहीं है तो यहाँ पुलिसवालों के टार्गेट पूरा होना चाहिए इसलिए

---

[423]वही, पृ.सं. 119-120.

[424]वही, पृ.सं. 108.

[425]पारधी, पृ.सं. 15.

पारधियों को बलि का बकरा बनाते हैं। पारधी समाज पर पुलिसवालों की इतनी दहशत है कि, खाखी रंग का लिफापा देख ले तो भी डर जाते हैं।

नौकरी लगने के पश्चात् चित्र्या अपनी पाल छोड़कर गाँव में रहने के लिए किराए के घर में आता है। तथाकथित समाज उसका जीना हराम कर देते हैं। चित्र्या को नाना प्रकार के सवाल पूछते हुए कहते हैं—"अरे तुम फासे पारधी पाल में रहनेवाले, घर में कैसे रहेंगे ?"[426]

'काला पादरी' में बिशपस्वामी, राय साहब, गुप्ताजी तथा हरपाल आदि पात्र अन्याय-अत्याचार करते हैं। उपन्यास में ब्रदर हरपाल अपनी शक्ल-सूरत से किसी उराँव की तरह ही लगते थे। चेहरे पर दाढ़ी बढ़ाई हुई। सिर पर सिखों की तरह पगड़ी बाँधते थे। ईश्वर का नाम लेकर भोले आदिवासियों को फँसाते थे। प्रवचन तो ऐसे देता था कि, सुनने वाला हर कोई फँस जाता था—"देखिए ब्रदर ऐसा है, यह सब प्रभु की इच्छा का कमाल है। मैं अक्सर ही यह सोचता रहता था कि सत्य आख़िर क्या है ? मैं इस पृथ्वी पर क्यों हूँ ? मेरे इस धरती पर पैदा होने का कोई अर्थ है या नहीं ? कुल जमा बात यह कि संसारिक सुखों में मेरा ध्यान नहीं लगता था। मैं सिर्फ़ अपने लिए नहीं जीना चाहता था। मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं था कि जो भी काम मैं करूँ वह सिर्फ़ मेरे अपने, मेरे निज़ी सुख के लिए हो। मुझे बार-बार लगता था कि ईश्वर ने मुझे इस पृथ्वी पर जन्म दिया है तो उसका कोई तो उद्देश्य होगा, कोई तो अर्थ होगा, और फिर मुझे यह भी लगता था कि इस पृथ्वी पर रहनेवाले दुःखी प्राणियों के लिए, दुःख के सागर में मैं कंठ तक डूबे इस संसार के लिए....मेरी भी कोई जिम्मेदारी है।"[427]

---

[426]पारधी, पृ.सं. 128.

[427]काला पादरी, पृ.सं. 62.

‘अल्मा कबूतरी’ में पुलिस, दरोगा, मंसाराम, केहरसिंह अन्याय-अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं। रामसिंह की बच्ची बीमार थी और पत्नी गर्भवती हवलदार रामसिंह को पकड़ने आता है और गालियाँ बकते हुए कहता है। ‘इस औरत को अभी नंगी कर दे?’ इस वाक्य का उसे बहुत बुरा लगता है। वह सोचने लगता है कि देवता जैसे पुरुष देश के प्रधानमंत्री कैसे झूठ बोला ? प्रधानमंत्री ने कुछ पंक्तियाँ अपनीडायरी में लिखकर रखी थी—“मुझे अपराधी जनजातियों के अधिनियम की भयानक वास्तविकता मालूम है। यह इंसान की आज़ादी को नकारती है। इसे कानून संहिता से हटाने की कोशिश की जानी चाहिए। किसी भी जाति को अपराधी श्रेणी में नहीं ड़ाला जा सकता। यह बंटवारा अपराधियों के प्रति न्याय और प्रगति के सिद्धातों का उल्लंघन करता है।”[428]

केहर सिंह कबूतरा युवतियों को देहव्यापार करने के लिए प्रेरित करता है। वह इन युवतियों के माध्यम से पैसा कमाना चाहता है। कहता है—“गेस्ट हाऊस, सर्किट हाऊस और डाक बंगलों में रहनेवाले लोग मनमाना धन खर्च करते हैं। बस अच्छा नशा देनेवाला माल माँगते हैं। हम उन्हें मुहइया कराएँगे। फिर पता है क्या होगा ? लियाकत और हैसियत वाले लोगों के संग हमारा नाम जुड़ेगा। सरनाम लोगों का बिजनेस अपने आप चमकता है।”[429]

‘कोळवाडा’ में नाना पाटील, पंढरी पाटील, सेठ आदिवासी कोळी समाज के ऊपर अन्याय-अत्याचार करते हैं। मराठा समाज का नाना पाटील कोळी लोगों से नीचता का बर्ताव करता है। इन लोगों से अधिक काम करवा लेता है और मजदूरी के सात सौ रूपये हड़प जाता है। “आप लोग केवल सव्वा परस काम किए हैं... जब तक आप काम पूरा नहीं करोगे तब तक

---

[428]अल्मा कबूतरी, पृ.सं.104.

[429]वही, पृ.सं. 169.

आपको पैसे नहीं मिलेंगे।"[430] कोळी समाज के लोगों का मजदूरी से उदरनिर्वाह नहीं हो रहा था तब वे लोग दूर-दूर के गाँवों में घास काटने जाते हैं। खेत के मालिक घास की पुल्ली छोटी हो जाए तो इन्हें गालियाँ बकते हुए कहता था—"इन पल्लियों को सेठ देखेंगा तो हमे गालियाँ देगा और घास की दो ढ़ेरियों का हिसाब एक ही करेगा।"[431]

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में महाराणा सज्जनसिंह, श्यामलदास रावल, रतनसिंह, तख्तसिंह, ठाकुर मदनसिंह, उदयसिंह, महाराणा फत्तेहसिंह, दलपतराय मेहता, तथा पुलिस अधिकारी आदि पात्र आदिवासियों पर अन्याय अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं। आदिवासियों में ठाकुर, महाराणा की बहुत दहशत फैली हुई थी। बेगार व फसल की बरबादी की पृष्ठभूमि में सोदाना की जो हालात हुई उसे गोंविद भगत ने निकट से देखा। गोविंद के भीतर बेचैनी छटपटा रही थी। कुरिया के बाप सोदाना की कथा बताता है—"थोड़ी सी दारू पीला दे भई रामा, नहीं तो सर्दी से बीमार हो जाऊँगा और ठाकुर की बेगार पर नहीं जा पाऊँगा और ऐसा हुआ तो कोड़ों की मार पड़ेगी या दो दिन ज़्यादा बेगार करनी पड़ेगी वह अलग सजा।"[432]

आदिवासियों में अज्ञानता, अंधश्रद्धा, व्यसनाधिनता को मिटाने के लिए गोविंद गुरू कार्य कर रहे थे। किंतु वहाँ के ठाकुर, महाराणाओं के पेट में दर्द हो रहा था। इसीलिए महारावल विजयसिंह, गुरू गोंविद से कहता है कि, तुम हमारा साथ दो हम तुम्हें ठाकुर के अधिकार देंगे। गुरू गोविंद उनकी बात नहीं मानता तो महारावल ठिठकर कहने लगता है—"गोविंद ! मैं तेरी इज्जत करना चाहता था। लेकिन तू तो सर पर चढ़ा जा रहा है। तू तो बोल रहा है वह राजद्रोह

---

[430]कोळवाडा, पृ.सं.82.

[431]वही, पृ.सं. 107.

[432]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 41.

है । आखिरी बार चेता रहा हूँ । हमारी बात मानेगा या जंगली व उत्पाती आदिवासियों को उकसाता रहेगा ?"[433] गुरू गोविंद उनकी बात नहीं मानता है तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है ।

'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' में रेंजर, गार्ड, पुलिस, ठेकेदार, जमींदार, तहसीलदार आदि पात्र आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं । इन लोगों ने आदिवासियों की ही शराब पीकर उन्हीं के लड़कियों तथा औरतों के साथ अत्याचार करते हैं । उनकी लूट करते हैं । जंगल से जुरू शहद निकालकर लाता है तब गार्ड उसे कहता है—"जंगल क्या तेरा बाप का है क्या ? भाड़खाऊ । साले के ऊपर केस लगाऊँगा । भड़वे जेल भिजवा दूँगा । साले मादरचोद ।"[434]दिन-ब-दिन आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार बढ़ता ही जा रहा था । आदिवासियों ने जंगल में जब काम करते हैं तो रेंजर ने इन आदिवासियों के ठप्पे कोरे कागज़ पर लेकर उन्हें मजदूरी नहीं देता है । तब लमड़ी ने इसका विरोध करता है तो उसे लातों से ठूँसते हुए करता हैं—"ये ले पैसे... और चाहिए क्या ?.... कहते हुए लमड़ी के मुँह पर पेशाब करता है ।"[435]

पुलिसवाले आदिवासियों को नक्सलवादियों के बारे में पूछताछ करने आते हैं तो आदिवासी ने उनको किसी तरह की जानकारी नहीं देते हैं । पुलिसवालों ने नशे में आदिवासियों के बहु-बेटियों को छेड़ते हुए गालियों की बौछार करते हैं—"साली मिलने दो वो छोकरी, मार

---

[433]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 123.

[434]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 52.

[435]वही, पृ.सं.25.

मारकर फाड़ देगा उसकी च्यूतड़ ।"[436] पुलिसवाले नक्सलवादियों को पकड़ नहीं पाते, उनके साथ संघर्ष नहीं कर पाते तो गरीब आदिवासियों को नक्सलवादी घोषित करते हैं ।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में चंद्रदीप सिंह, प्रेम कुमार, मुरली पाण्डे, पारबती, शम्सुल खाँ, राधो सिंह, कल्प विलास राय, भरत शर्मा, दुबेजी आदि पात्र अन्याय-अत्याचार करनेवाले पात्रों के रूप में दिखाई देते है । पाण्डे जी थारू स्त्री मलारी का शोषण करता है । उसके देह का न्यूड़ दृश्य आँखों के सामने लाकर उसकी तारीफ़ करता है—"तुम्हें देखकर कोई अपने वश में कैसे कर सकता है ? वह उसके नर्म जाँगों और गोलाईयों को दुलारता है । मलारी आँख मूँद लेती है । हाथ ब्लाऊज के ओर बढ़ते हैं । बटन खुलते हैं । एक-एक कर । वह आँख खोल देती है । जैसे वहाँ भी कोई बटन हो ।"[437] लेकिन वह जब कहती है कि लंगड़ बाबा जाग रहा है तब जल्दी-जल्दी कपड़े पहनकर दबे पाँव निकलता है । मलारी, पाण्डे से कहती है—"आपकी औरत तो इज्जतदार है, ऊँच्ची जाति के बड़े लोग ! हम गरीब नीच जाति की औरतों की क्या इज्जत ? खुला दरवाज़ा है, जो चाहे मुँह मार लें ।"[438]

पुलिसिया अंदाज में मलारी को सुदर्शन सिंह तथा प्रेम प्रकाश ने बेरहमी से पीटते हुए गाली-गलौच करते हैं—"सुदर्शन सिंह का चौड़ा हाथ उसके मुँह पर पड़ा और वह खाट पर सीधे भहराई । प्रेम प्रकाश ने सीधे रायफल तान ली, बोल भोसड़ी । रंडी, कुतिया... ।"[439]

---

[436]वही, पृ.सं. 126.

[437]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 181.

[438]वही, पृ.सं. 182.

[439]वही, पृ.सं. 196.

'ब्र' उपन्यास में तथाकथिक उच्चप्रभु समाज के उपसरपंचों आदिवासी महिला सरपंचों को कदम-कदम पर सताते हुए नज़र आते हैं। अगर इनके विरोध में कडुबाई आवाज़ उठाती है तो उसे बदचलन घोषित करते हैं। जैसे—"गाँव में अफवाह फैलाते हैं कि कडुबाई का अधिकारी के साथ लफड़ा है।"[440]

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में सूदखोर, महाजन, साहूकार, व्यापारी, जमींदार, जागीरदार, दरोगा, कम्पनी सरकार, नायब साजवाल, प्रशासकीय पदाधिकारी आदि आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं। रेल विभाग के अधिकारियों ने आदिवासी महिलाओं को प्रातः घायल स्तनों, खरोचों से भरे चेहरे और रक्त से भरे योनिकेशों के साथ तम्बुओं से बाहर फेंक दी जाति थी। इन आदिवासी महिलाओं को सामूहिक बलात्कार का शिकार होना पड़ता था। तब चुन्नी माँझी का बेटा सिदू ने आदिवासियों को एकजुट करके इसका विरोध करता है। जनसमुदाय को आदिवासी स्त्री की व्यथा को समझाते हुए कहता है—"सामूहिक बलात्कार की शिकार बनती आदिवासिनों की चीखें, क्रन्दन और कराहें पिघले रांगे की भाँति परुषों के कानो गिरतीं और बहती उतर जातीं भीतर जल जाति आत्मा। जल जाता प्रतिरोध भी। शेष रहती थीं हड्डियों की चलती फिरती ठठरियाँ जिन पर मांस-मज्जा मानो प्रत्यारोपित थी।"[441]

'टाहो' उपन्यास में प्यारेलाल सेठ और शासन आदिवासी-समाज पर अन्याय-अत्याचार करते हैं। प्यारेलाल सेठ आदिवासियों को ब्याज से पैसा देकर उनकी जमींने हड़पता है। उन्हीं के खेतों में उन्हें मजदूरी करवाते हुए उनपर अत्याचार करता है। "काम जोर से करो-हराम की

---

[440]ब्र, पृ.सं.15.

[441]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 51-52.

मजूरी नहीं है, चाबूक से चमड़ी निकालूँगा । अरे ! सद्या-साला कामचोरी क्यों करता है रे .... मजदूरी चाहिए ना तुझे ?"[442]

'तंट्या' उपन्यास में शिवबा पाटील, भिवा पाटील, हिम्मत पाटील, मोहन चौधरी, सरदार पाटील और अंग्रेज सरकार आदि आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करते हुए दिखाई देते हैं । उपन्यास के शुरुआत में तंट्या का चित्रण भोलपन से भरा हुआ दिखता है । शिवबा पाटील तंट्या के खेती पर अपना कब्जा जमाता है । तंट्या गुस्से में आकर शिवबा पाटील के नौकरों को पीटता है । उसका केस बनता है । तब शिवबा पाटील तंट्या के भोलेपन का फायदा उठाते हुए कहता है कि—"तुम साहब के सामने कबूल करेगा तो तुझे साहब माफ कर देंगे ।"[443]

5.2.5. आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सोच रखनेवाले पात्र

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में हम गैर-आदिवासियों को अन्याय-अत्याचार, दमन-शोषण करने की नज़रिए से देखते हैं । किंतु कुछ गैर-आदिवासियों में मानवता के गुण परिलक्षित होते हैं । इन उपन्यासों में गैर-आदिवासी पात्र आदिवासियों के दुःख-दर्द को अपना समझनेवाले हैं ।

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में सकारात्मक सोचवाले गैर-आदिवासी पात्र रामअधार, जन्ट साहब तथा फादर सिकारो दिखाई देते हैं । ये पात्र आदिवासियों के दुःख-दर्द को पहचान चुके थे । इन पात्रों में मानवता का स्वर दिखाई देता है । बँगड़ू की स्थिति को देखकर किसी का भी खून नहीं खौलता था किंतु फादर सिकारो को दुःख अवश्य होता था । केरल से आए हुए फादर सिकारो पिछले पंद्रह सालों से रखलुआ में मिशन स्कूल चला रहे थे । आदिवासियों के

---

[442]टाहो, पृ.सं. 33.

[443]तंट्या, पृ.सं. 165.

दुःख-दर्द दूर करने के लिए उन्होंने मिशन की ज़मीन में खेती करना शुरू की थी । "उन्होंने आदिवासियों को मजदूरी मालिक लोगों से ज्यादा देनी शुरू की । उन्होंने मजदूरों के लिए मिशन की तरफ से एक दुकान भी खुलवा दी, जिसमें खाने-पीने का सामान गाँव की दूसरी दुकानों से सस्ता मिलता था मिशन का एक स्कूल भी चलने लगा । इसमें आदिवासियों के बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाति थी । मिशन की तरफ से एक डॉक्टर भी आया था । दवा की सुविधा हो गयी । गिरजे में आदिवासियों की संख्या बढ़ने लगी ।"[444]

ग्रामविकास अधिकारी रामअधार आदिवासियों के ऊपर होनेवाले अन्याय-अत्याचार, दुःख-दर्द को समझनेवाला सकारात्मक पात्र है । रामअधार, अनपढ़ आदिवासियों को बंधुआ मजदूर के लिस्ट के महत्त्व समझाते हुए कहता है—"देख, घबाराने की बात नहीं है । हम जो साथ है । मुकदमा चलेगा । हम जैसा कहें, वैसा अदालत में बोल देना । सजा हो जाएगी दादूसिंह को । जेल में चक्की पीसेगा । तुझे हम सरकार से मदद दिलाएँगे । अकबार में फोटू भी छपेगा । दादूसिंह के पास अब जाने की जरूरत नहीं है । यही ब्लाक में पड़ा रह कुछ दिन । समझा भला ।"[445] इस तरहअन्याय-अत्याचार करनेवाले मालिक लोगों के विरोध में रखलुआ के आदिवासियों को रामअधार सजग करता है ।

'हाकुमी' उपन्यास में अनिता, सुभाष, सारंग सकारात्मक सोचवाले पात्र है । सारंग की बहन अनिता एक सामाजिक कार्यकर्ता है । अनिता कन्ना के दुःख-दर्द को अपना समझती है । अनिता कहने लगती है—"ये अपने मनुष्य है, यह भावना उनमें जागृत करनी होगी। हम उनके है

[444]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 45.

[445]वही, पृ.सं. 98.

ये जानकारी उन्हें होनी चाहिए। जानकारी की एकात्मता ही सही एकात्मकता है।"[446] कन्ना के दोस्त होने के नाते सारंग और सुभाष आदिवासियों की मदद करने के लिए कांदोली गाँव आते हैं। गाँव में कन्ना आदिवासियों की बीमारी का इलाज करता है तब सारंग कन्ना से कहता है— "यहाँ केवल डॉक्टर की जरूरत नहीं है बल्कि यहाँ पर रोजगार हमी, सकस आहार, धान सप्लाई करना, आयोडिन युक्त नमक, अकाल में रोजगार फिर इनके साथ-साथ अस्पताल, दवाई।"[447] इस तहर से वे आदिवासी लोगों के साथ एकरूप होने की कोशिश करते हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' में नैरेटर तथा डॉ. राजकुमार सकारात्मक सोचवाले पात्र हैं। उपन्यास में जब गोनू सिंह का भतीजा वीरेंद्र सिंह के ऊपर हल्ला करने गया तब बालचन दा के साथ-साथ अन्य चार लोगों को गोली लगती है। तीन को तलवार-लाठी की चोट थी। घायलों में बालचन की स्थिति ही ज्यादा ख़राब लग रही थी। ख़ून से लथपथ हुआ था। तब डॉक्टर राजकुमार साहब ने रात में ख़ुद जागकर अपने सरकारी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के स्टॉफ को भी बुला लिया था। और—"बिना नागा पट्टी बदल रहे थे। महँगी सुई-दवा सब। किंतु घाव सुखने का नाम नहीं ले रहा था। आख़िर जीप ठीक की गयी। रामकुमार बालचन को लेकर राजधानी के सबसे बड़े डॉक्टर के यहाँ दिखाने ले गये।"[448]

'पारधी' उपन्यास में शंभुरावकील एवं उनकी पत्नी शकुबाई आदिवासी पारधियों के प्रति सकारात्मक सोचते रहते हैं। समाज का उत्तरदायित्व निभानेवाला वकील पारधियों का आधार है। आदिवासी पारधियों के जीवन के संदर्भ में सोचते हुए वकील चिंतित हो जाता है

---

[446]हाकुमी, पृ.सं. 06.

[447]वही, पृ.सं. 102.

[448]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 42.

और कहने लगता—“कितना आश्चर्यकारक है ! इनका ख़ुद का मकान नहीं, स्वयं का गाँव नहीं और जीने के लिए स्वयं की खेती नहीं। मतलब ये कैसे मनुष्य है ?”[449]

फासे पारधियों को मुख्यधारा में लाने के लिए वकील एवं उनकी बीवी शकुबाई पूर्णतः प्रयासरत रहते हैं। वकील चित्र्या को बस डिपो में नौकरी दिलाता है और शकुबाई चित्र्या के बीवी खारी को अपने घर पर ही काम देती है। किंतु पारधियों के प्रति समाज का नज़रिया चोर या डाकू का ही है। पारधी चोर तथा डाकू नहीं होते इसकी पुष्टि करने के लिए शकुबाई कहती है—“तुम लोग उस बेचारी पर बिना वजह क्यों संदेह करते हो ?हमें उसका पूरा अनुभव है। वह हमारे पास डेढ़-दो महिनों से काम करती है। उसकी एक भी शिकायत नहीं है।”[450]

‘काला पादरी’ उपन्यास का नैरेटर आदित्य भी सकारात्मक सोचवाला पात्र है। आदित्य, सौरभ, जेम्स खाखा बैंक में बैठकर गांधी पर बहस करने लगते हैं। तब एकाएक जेम्स खाखा की एक बात उसको बेचैन करती है और आदिवासियों प्रति सोचते हुए कहता है—“मैं जानता था कि जिनके खाते मेरे बैंक में है और गांधी का नाम ले लेकर जिन लोगों ने यहाँ के आदिवासियों की कोठरियों में रखा अनाज़ का आख़िरी दाना अपने गोदामों में भर लिया है, उन सबको मैं बर्दाश्त कर लेता हूँ। गांधी के नाम पर जारी वह सारी लूट खसोट, अगर मैं सहजता के साथ स्वीकार कर लेता हूँ तो जेम्स खाखा की एक असहमति पर मैं उसके साथ बातचीत क्यों नहीं कर सकता ?”[451] और आगे कहता है कि—“पता नहीं कितने टोप्पो, मिंज, तिग्गा, लकड़ा और

---

[449]पारधी, पृ.सं. 35.

[450]वही, पृ.सं. 76.

[451]काला पादरी, पृ.सं. 25.

खाखा थे जो बेगार की मजदूरी करते-करते अचानक बेगार की प्रार्थना में शामिल हो गये थे और फिर मर गये थे, जैसे कि उन्हें मरना था ।”[452]

‘कोळवाडा’ में दत्तू नामदेव तेली, बाबू मुसलमान, लक्ष्मीबाई पाटील आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सोच रखनेवाले पात्र हैं । दत्तू नामदेव तेली कोळी आदिवासियों के बच्चों को पढ़ाना चाहता है इसलिए वह कोळीवाडा में जाकर बच्चे जमा करता है । कोळी समाज में स्त्री-शिक्षा को लेकर बहुत ही निराशा है इसलिए तेली गुरूजी लड़कियों के पढ़ाई के ऊपर जोर देकर कहते हैं—“अब क्या कहूँ तुम्हें, अरे अपने देश में इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी आपको पता है । वह भी एक स्त्री ही है ना ? अब आप ही बताओ कि अगर वह नहीं पढ़ती तो प्रधानमंत्री कैसे बन पाती ?”[453]

बाबू मुसलमान कोळीवाडा में रहनेवाला है । उसकी पहचान भी कोळीवाडा ही है । बाप से भक्ति सीखकर कोळीवाडा में रोगी लोगों को देखता है । वह कोळी लोगों का पुजारी होने के कारण समाज में उसे सम्मान मिलता था । “बामण समय पर न मिलने के कारण बाबू ही पूजा करता था । कोळी लोगों का पुजारी बाबू मुसलमान ही था । इसलिए उसके बगैर पत्ता तक नहीं हिलता था । बाबू भगत होने के कारण लोग डर के मारे उसका आदर करते थे ।”[454]

‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में गुरू गोविंद एक बनजारा समाज के होते हुए भी आदिवासियों की काया पलट करना चाहते हैं । वे हर बार अपने भक्ति के माध्यम से यहीं बातें करते हैं कि, दारू, तंबाकू की लत छोड़ दो और शिक्षा, भक्ति का मार्ग अपनाओ ऐसी सलाह देते

---

[452]वही, पृ.सं. 55.

[453]कोळवाडा, पृ.सं. 24.

[454]कोळवाडा, पृ.सं. 20.

हुए कहते हैं कि—“पढ़ाई लिखाई के महत्त्व को समझो। मैं स्कूल में नहीं पढ़ा, लेकिन इधर-उधर से आखर ज्ञान सीख लिया। तुम भी सीखो। बच्चों को पढ़ाओं। तभी वे समझदार बनेंगे। गाँव-गाँव में जो भी थोड़ा पढ़ा-लिखा हो, उसका धर्म है कि अन्य लोगों को पढ़ाये। पढ़ाई घर के वातावरण से होती है इसलिए बड़े आदमी भी शिक्षा प्राप्त करें। राजा, जागीरदार, हाकिम की बेगार मत करो।”[455]

‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ में पुलिस दल में होते हुए भी कुमार ने आदिवासियों तथा डाकुओ के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। काली ने कुमार को चिट्ठी लिखकर कहता है। ‘मेरी भतीजी को साँप ने डँसा, भैय्या को आप और पाण्डेजी ने मिलकर डंसा, पत्नी को किसी औरत बेचनेवाले ने।’ इतना पढ़कर कुमार उदार हो जाता है। “बिसराम को इंटरोगेशन के दौरान इतना मारा गया था कि जान से मार देने के अलावा कोई चारा न रह गया था। पाण्डेय जी के लिए। काली को पकड़ने के लिए ही सारा जाल बिछाया गया था, लेकिन भाई के मरने के तीन दिन बाद भी न आया तो लाश फुकवा दी गयी। उसकी औरत और बच्ची को हज़री बाग ट्रान्सफर किया जा रहा है।”[456]

‘ब्र’ उपन्यास में प्रफुल्ला, डॉ. दयाल, एंजल्स आदिवासियों प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। प्रफुल्ला ‘प्रगत स्वयंसेवी संघटना’ के माध्यम से आदिवासी महिलाओं के संपर्क में आती है। उपन्यास के नैरेटर प्रफुला ने ‘ग्राम पंचायत में आदिवासी महिला सरपंचों पर अविश्वास प्रस्ताव’ पर प्रोजक्ट वर्क में कार्यरत है। इस प्रोजेक्ट में काम करते हुए आदिवासी पर होनेवाले अन्याय

---

[455]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 70.

[456]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 194.

की अनुभूति उसे होती है तब प्रफुल्ला कहती है—“मेरे ही समकालीन, आदिवासियों के रूप में पहचाने जानेवाले मनुष्य वहाँ एक अलग ही दुनिया में जी रहे है। उनका संघर्ष, खुशी, वेदना, विचार पूर्णतः अलग है।”[457]

डॉ. दयाळ एवं एंजल्स आदिवासियों की सेवा करने के लिए अमेरिका से भारत आते हैं। डॉ. दयाल का कार्य इतना फैल गया था कि वहाँ के राजकारणी तथा स्थानीय लोगों को आदिवासियों को फँसाने में दिक्कते आ रही थीं। तब डॉ. दयाल के स्कूटर को ट्रक से उड़ाते हैं। इतना होने के बावजूद डॉ. दयाल आदिवासियों के लिए डटकर काम करते हैं। इन आदिवासियों को राजनीति तथा सामाजीकरण की समझ नहीं है। इसलिए डॉ. दयाल कहते हैं—“ये आदिवासी ऐसे ही न रहते हुए। यह सब कुछ बदलना चाहिए।”[458]

‘टाहो’ उपन्यास में मामलेदार, यशोदा एवं मीरा आदिवासी-समाज के प्रति सहानुभूति जताते हैं। मामलेदार के उच्च विचारों से ही भीम्या एल.एल.बी. तक की पढ़ाई करता है। भीम्या को जंगल से ले जाने से पहले मामलेदार साहब भीम्या के पिता रामू से वचन देता है कि—“पालूँगा, बड़ा करूँगा, उच्च शिक्षा दूँगा और दुनिया की सारी जानकारी उसके लहू में भर दूँगा। उसे मनुष्य बनाऊँगा, फिर आपके जंगल में वापिस लाकर छोड़ दूँगा।”[459]

डॉ. मीरा से भीम्या कहता है कि, मैं एक जंगली मनुष्य हूँ तब डॉ. मीरा कहती है- अरे इस देश का सच्चा मालक तू ही है, तुम ही मूलनिवासी हो, तू पसंद है मुझे कहती है। जब भीम्या अपने समाजसेवा कर रहा था तब उपन्यास के अंत में डॉ. मीरा भीम्या के पास जाकर कहती

---

[457]ब्र, पृ.सं. 09.

[458] वही, पृ.सं. 312.

[459]टाहो, पृ.सं. 42.

है—"मेरी डॉक्टरी कब काम आएगी ? मेरी एम.बी.बी.एस. का उपयोग मैं इन जंगलियों के लिए करूँगी। इनके बीमारी का इलाज करूँगी। कुपोषण से छोटे-छोटे बच्चे मृत्यु-मुखी पड़ रहे है। मेरी सेवा की उन्हें सख़्त जरूरत है। भीम्या तेरी इस लड़ाई को मैं समझ गयी।"[460]

'तंट्या' उपन्यास में राजाभाऊ वकील, यशोदा, नाना पाटील, माधवराव पाटील, जसू पाटील और कुछ पुलिस। शिवबा पाटील जब तंट्या को मारकर जेल भेज देता है तब उसकी बेटी यशोदा को तंट्या के प्रति सहानुभूति जागृत होती है। इस सहानुभूति को ही समाज के लोगों ने अन्य अर्थ निकालकर यशोदा को बदचलन कहने लगते हैं। इन अफ़वाओं से न डरते हुए यशोदा आदिवासियों के प्रति सहानुभूति जारी रखती है और अपने पिता से कहने लगती—"मैं पूछ रही हूँ, हुआ क्या आपका समाधान उसके ज़मीन हड़पकर ? और ऊपर से उसे ही झूठे इल्जाम लगाकर जेल भेज दिए।"[461]

5.2.6. प्रमुख-पात्र

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में समाज परिवर्तन करनेवाले पात्र, सकारात्मक सोचवाले पात्र हैं उसी तरह कुछ प्रमुख भूमिका निभानेवाले पात्र भी आते हैं। ये पात्र उपन्यास के कथावस्तु के साथ-साथ चलते हैं। उपन्यास के नायक-नायिका की कहानी को आगे बढ़ाने के लिए मदद करते हैं। इसीलिए उपन्यासों में इन पात्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनको हम काव्यशास्त्रीय भाषा में 'पताका' या कहानी को आगे बढ़ाने वाले पात्र भी कह सकते हैं।

---

[460]वही, पृ.सं. 99.

[461]तंट्या, पृ.सं. 172.

'हाकुमी' उपन्यास में कन्ना के पिता-डोंबी, माता-चुक्को, भाई-जुरू प्रमुख भूमिका निभानेवाले पात्र हैं । डोंबी को कन्ना के ऊपर गर्व होता है इसलिए वह कन्ना की कोई बात नहीं टालता । पवरी शादी के पश्चात नग्न रहने से इन्कार करती है तब घर का प्रमुख होने के नाते वह कहता है कि—"माडिया के स्त्रियों ने आजतक कभी बदन पर कपड़ा पहना नहीं । मेरी माँ नहीं पहनती थी, तेरी भी याया (माता) नहीं पहनती है । घर के बहू भी नग्न ही रहती है । इस पवरी के पास इतना क्या है ? मैं कुछ सुननेवाला नहीं हूँ ।"[462] लेकिन अपने बेटे के प्यार के वजह से डोंबी पवरी की बात मान लेता है । और पंचायत का आधा खर्चा देकर रीति-रिवाज़ तोड़ने पर मजबूर करता है । डोंबा गाँव का मुखिया होने के नाते वह कन्ना के हर परिवर्तन कार्य में सक्षम सहभागिता दिखाता है ।

रूपी जुरू के घर में घुसती है तब जुरू को इस बात का अंदाजा रहता है कि रूपी मेरे लिए नहीं आई है वह तो कन्ना के लिए आई है । जुरू पंचायत के निर्णयानुरूप अपने भाई की प्रेमिका रूपी से ब्याह करता है । लेकिन रूपी को अपनाता नहीं है बल्कि कन्ना के लिए छोड़ देता है । और कन्ना से कहने लगता है —"रूपी मेरी बीवी थी किंतु मैं उसका पति बन नहीं पाया । रूपी के मन में तेरी चाहत को मैं नज़रअंदाज नहीं कर पाया । हम साथ में रहे परंतु कभी एकरूप नहीं हो पाए ।"[463]इसलिए उपन्यास में डोंबी, जुरू अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं ।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में बालचन दा, लालचन दा, सोमा, भीखा, बुधनी, इतवारी गौणप्रमुख भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं । उपन्यास में जब भौंरापाट स्कूल आदिम जाति के बच्चियों के लिए खोला गया था । लेकिन उनके दस प्रतिशत से भी कम बच्चे असुर

[462]हाकुमी, पृ.सं. 15.

[463]वही, पृ.सं.44.

समाज के थे । तब लालचन और रूमझुम मिंज मैडम से शिकायत करते हैं । तब मैडम कहती है 'सबका टेस्ट होगा, टेस्ट के रिजल्ट के हिसाब से क्लास एलॉट होगा' इस चुनौती को स्वीकार करके लालचन, रूमझुम के साथ सोमा और भीखा भी मुहिम में शामिल होते हैं । सोमा और भीखा इंटर पास लड़के थे । इन लोगों की एक महिने की मेहनत काम आती है । "असुर, बिरजिया और कोरबा आदिम परिवार की सड़सठ बच्चियों का एडमिशन हुआ ।"[464]

सोमा उपन्यास का प्रमुख पात्र है । समाज के प्रति जागृत युवक है । जब लोग आदिवासियों के कोरे कागज़ पर ठप्पा लेकर फँसा रहे थे, उसी तरह सोमा के बाबा एक एकड़ खेत मात्र पाँच हज़ार रूपये में बेच देता है तब सोमा अपने पिताजी के साथ-साथ समाज का भी विचार करते हुए चिंता व्यक्त करता है—"बिना घर में बात विचार किए, जवान-जहान बेटे के भविष्य का ख़्याल किए, सादे कागज़ पर ठप्पा लगाया, क्यों ? सवाल सोमा के बाबा का ही नहीं था । जिसे देखों वहीं फुसलावन-लस्सा लगावन के चक्कर में पड़ रहा था ।"[465]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' में जोरमी, कामी, लालडेङा, भुचेङा, गाँव बूढ़ा आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं । मिजो और गैर-मिजो में फ़र्क बताते हुए एक युवक कहता है—"तुम लोग बहुत जल्दी धैर्य खो देते हो । कमाई के लिए निकले हो तो कमाई पर ही ध्यान रखना चाहिए । देखते नहीं 'वाइ' वर्षों हमारे बीच अपने वतन से दूर पड़ा रहता है । भिखारी की तरह आता है,

---

[464]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 21.

[465]वही, पृ.सं. 26.

किंतु नवाब की तरह जाता है । और हम है कि अपनी स्थिति से एक कदम भी ऊपर नहीं उठ पाते ।"[466]

'कोळवाडा' उपन्यास में रामभाऊ गायकवाड, शिवज्या, काळू कहाड़े, धोंड्या लांडे आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं । रामभाऊ गायकवाड कोळी समाज का प्रामाणिक, इज्जतदार और विश्वासु व्यक्ति के रूप में चित्रित होता है । कोळी समाज का नायक होने के नाते गाँव के सभी लोगों का भरोसा रामभाऊ पर होता है । इसलिए गाँव के लोग मजदूर देखने रामभाऊ के घर आते हैं । "ये देखों उसका बकाया देने की जिम्मेदारी मेरी है । तब तो ठीक है ना... । चलो खामोशी से हाथोड़ा ले आओ । अरे हम लोग एक ही गाँव में रहनेवाले हैं । थोडे ही घर छोड़कर कहीं भागनेवाले हैं ।"[467]

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में मेमा, हिरजी, हादू, कमली, दिन्या, भनज्या, मानजी डामोर, रूपाजी आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं । मेमा ने गुरू गोविंद के विचारों को आत्मसात किया था, और उन्हीं के विचारों के पथ पर चल रहा था । वह बेगार का विरोध करता है और बेगार के बदले कही जाकर काम धंधा करने को सोचता है । "मैं इनका विरोध नहीं करता । यह सब होना चाहिए । बुरे रीति-रिवाज समाप्त होने चाहिए । हममें जो बुरी आदतें हैं, वे मिटनी चाहिए । पर मेरी भात खेती की ज़मीन पर लगान, वनों की उपज पर पाबंदी व वसूली, बेगार और हम पर बिना कोई दोष के आए दिन होनेवाले अत्याचार है । हमारी बहन-

[466]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 110.

[467]कोळवाडा, पृ.सं. 08.

बेटियों की इज्जत बिगाड़ने से नहीं चूकते हैं अहलकार, रियासती जागीरदार और उनके छुटभैये ।"[468]

'एका नक्षवाद्याचा जन्म' में लमड़ी, लालसू, कन्ना पटेल, मालू, कोपा आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आदिवासियों को ठेकेदार, साहूकार, जमींदारों ने लूटा ही है किंतु उपन्यास में महाराज विधायक भी उनकी लूट करता है । विधायक ठेकेदारों से पैसे लेता है तो लमड़ी कहता है—"ई आम्मा, महाराज पक्का पैसा खातो ।"[469]

जुरू को पुलिस जमादार नक्सलवादी घोषित करता है तब कन्ना पटेल जुरू के परिवार का जिम्मा लेते हुए कहता है—"जुरू दादा, हमें माफ कर दे, हम तुम्हारे पत्नी की रक्षा करेंगे। तू जंगल में ही रहना या कहीं ओर निकल जाना ।"[470]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में गोकुल, जोगी, रामजी ठाकुर, रामजतन तुनिया, परेमा, मनोज बाबू आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आदिवासी या डाकू किसी को शब्द देते हैं तो वह निभाते हैं । लेकिन कुमार, नोनिया को भाई कहकर धोके से फँसाता है । तब रामजतन नोनिया कहता है—"हुजूर, भाई कहा है तो भाई जैसा पवित्तर नाता का लाज रखना ।"[471]

'ब्र' में अशोक, सुक्कर भाऊ प्रमुख भूमिका निभाते हैं । आदिवासियों के अज्ञानता का फायदा उठाते हुए आज अनेक एन.जी.ओ. स्थापित हुए हैं । उन्होंने आदिवासियों के नाम पर सरकार की ओर से फंड तो उठाते हैं किंतु उन तक नहीं पहुँचाते । इस संदर्भ में अशोक कहता

---

[468]धूणी तपे तीर, पृ.सं.117.

[469]एका नक्षवाद्याचा जन्म, पृ.स. 43.

[470]वही, पृ.सं. 246.

[471]जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 165.

है—“गैर-आदिवासियों ने आदिवासियों के लिए कार्य करने के बहाने अपने घर लिए है, हमारा इस्तेमाल किया गया।”[472]

‘जो इतिहास में नहीं है’ उपन्यास में जादिक मुरमू, मोतिया, सिदो, आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं। सिदो अन्य समाज के स्त्रियों तथ बच्चों से कोई शत्रुत्व नहीं रखता है। उसके शत्रु थे इसराई भगत और तिलक भगत। सूदखोर महाजन और उसके अपराधों को का दंड इन्हें भोगना था। सिदो जब उन्हें पकड़ता है तब वे धोती में ही धार छोड़ देते हैं। सिदो कहता है—“तेरे गोमके ने हमारा खून पिया। तेरे महाजन ने पाप किया रे। तुने महाजन का साथ दिया। पाप का लाभ लिया तो पाप का फल नहीं भोगेगा रे ठूँठा ?”[473]

नांगला मुण्डा अपने खेत की बुआई के लिए महाजन कर्ज़ा लेता है। खेत में मकई और बाजरा लगाया था। परिश्रम जवान हुआ। फसल तैयार हुई तो खेत पर शंखचूड़ नाग की भाँति फन फैलाकर आ बैठा महाजन। नांगला, महाजन का विरोध करता है तो उसे हाथियों को शराब पिलाकर उसे मारा जाता था। कर्ज़ और आदिवासी के अन्योन्याश्रय संबंध को कुछ भयावय कर गयी थी नांगला की मृत्यु। “खत्म हो गया था नांगला मुण्डा नामक एक जीव। समाप्त हो चुका था एक आदिवासी का एक भूमंडल से अधिकार। समाप्त हो गई थी नांगला की कथा। कहते-सुनते हल्के हो गये थे लोग। यात्रा की थकान बिसरा रहे थे लोग मद्धिम पड़ती जा रही थी अलाव को आँच। छिजती रही थीं रात... !”[474]

---

[472]ब्र, पृ.सं. 328.

[473]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 193.

[474]वही, पृ.सं. 61.

'टाहो' उपन्यास में सदूचाचा, रामू, बजी आदि प्रमुख भूमिका निभानेवाले पात्र हैं । सदूचाचा आदिवासियों के नृत्य संस्कृति को बरकरार रखते हुए कहता है—"तुम सब लोग नाचों, हमारे जीवन में नाचने के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है । यह पहाड़, यह जंगल अपने नाचने से आनंदमय होगा । हम जंगल के शेर है, नाच-नाचकर मैं बूढ़ा हो गया हूँ, पर मैंने अपने चेहरे की खुशी नहीं गंवायी । हमें जीना है इस जंगल के साथ !"[475]

'तंट्या' उपन्यास में नहाल मामा, जीवनी, भीखी, किसन्या, भाऊसिंह, गणपत, मंगळ्या, हि-या आदि पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हुए परिलक्षित होता है । तंट्या के बढ़ते दहशत के कारण पुलिसवालों ने आदिवासियों को सता रहे थे । तंट्या का पता बताने के लिए आदिवासी पीटे जा रहे थे । तंट्या वहाँ से पलायन होने के पश्चात समाज का क्या होगा ? ऐसासोच रहा था तब नहाल मामा कहता है— "हमें क्या परेशान करेंगे ? हमारी तो उम्र हो गयी । तुम्हारी बहादुरी देखकर आगे की जिंदगी की कोई चिंता नहीं रही ।"[476]

5.2.7. गौण-पात्र

किसी भी कहानी तथा उपन्यास में प्रत्येक पात्र महत्त्वपूर्ण होता है । उपन्यासों की कथावस्तु में प्रत्येक पात्र कोई-न-कोई भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं । किसी भी पात्र को अनदेखा कर उपन्यास की कथावस्तु पूर्णत्व की ओर बढ़ नहीं पाएगी । इसलिए गौण पात्रों का भी उपन्यासों में उचित स्थान होता है ।

---

[475]टाहो, पृ.सं. 13.

[476]तंट्या, पृ.सं. 350.

'गाथा भोगनपुरी' की कथावस्तु में गौण कहानी को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं। इसमें रमई, शैतान सिंह, रामरसन, रज्जाक, शिवहरे, भुशन्डीलाल, केदारीमल, करधना, रामपरसाद, जगत प्रसाद माली आदि पात्र आते हुए दिखाई देते हैं।

'हाकुमी' उपन्यास में राम, मेस्सी, बड़ा बा, भूमया, पावरा आदि पात्र समय-समय पर कहानी को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में लालचन का बेटा-रमेश, मैनेजर कुजूर साहब, जेम्स, मिंज मैडम, सुनिल, विधायक रामअधार बाबू आदि गौण दिखाई देते हैं।

'झेलझपाट' में मोपा मामा, विठ्ठ, संपत, बूढ़ा हिराजी, गज्या गवळी, शंकर गवळी, डॉक्टर आदि गौण दिखाई देते हैं।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में नुथलुई, रौपरी, रिनपुरी, साइकिया, माइकल, पू ङुरचुइया, लालम्हुआका, गाँव बूढ़ा, मङाइया उर्फ़ बकवासी लाल, सुबेदार, कपी तथा करी आदि पात्र कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में पात्र आगे बढ़ते हुए परिलक्षित होते हैं।

'काला पादरी' उपन्यास में डॉ. शर्मा, सोजोलिन मिंज, अनास्तमिया, लुईसा टोप्पो, राय साहब आदि पात्र कथा को गति देने का कार्य करते हैं।

'पारधी' उपन्यास में मनी, लव्हज्या, मौज्या, क्लार्क, सेक्यूरिटी गार्ड, पुलिस, आदि अनामी पात्र आते हैं।

‘कोळवाडा’ उपन्यास में नागू गायकवाड, वाळू, अंजी, मंजी, मुरल्या, रघू झनकर, रतन, लक्ष्मीबाई पाटील, वासुदेव पाटील, अण्णा पाटील, भानुदास पाटील, रूमाल्या, लक्ष्मण माळेकर आदि पात्र उपन्यास में दिखाई देते हैं।

‘धूणी तपे तीर’ में रामा, गोमना, कुरिया का बाप सांवता, डूंगर परमार, हिरल्या के पुत्र हिरा और भजन्या, घसीटा, कर्नल वाल्टर्स, कर्नल ब्लेयर, कैप्टीन ब्राइटलैंड, लारेंस, मैसन, सुंदर, जोरिया, थावरा, सोपन, रासबिहारी, गोसावी, भरत्या, भोपा, धर्मभाई ऐसे अनेक पात्र उपन्यास में परिलक्षित होते हैं।

‘एका नक्षलवाद्याचा जन्म’ उपन्यास में शांताक्का, शंकर, पेडा, समय्या, मालू, पेका, झोरण्णा पटेल, ईरपा, कोपण्णा, गिलू पाटील आदि पात्र है।

‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ में लखन, सुलेमान खाँ, कल्प विलास, लल्लन बाबू, मनोज बाबू, उर्मिला, सोखाईन, सलमा चूड़िहारिन आदि पात्र हैं।

‘ब्र’ उपन्यास में महावीर, सुमेध, बिट्टू, साहेब, शांताबाई, मालिबाई, सुमनबाई, मालीबाई, सविताबाई, सुनंदाबाई, रेवती, तारूबाई, जयाबाई आदि पात्र दिखाई देते हैं।

‘जो इतिहास में नहीं है’ उपन्यास में किसकू, भेखन, राजा गोमके, जेम्स पॉटेण्ट, लुखीराम बेसरा, भादू, सुन्नू, मोतिया, होरिल मुण्डा, पिलाचु हड़ाम, राजेश्वर दयाल सिंह शाहदेव, कीरत, महतो मंगरा कुजूर, मेघवा, चाँद, भैरव आदि पात्र उपन्यास के कथा को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं।

‘टाहो’ उपन्यास में राघोबा, कोंडीबाई, काश्या, बजी, महाद्या आदि पात्र उपन्यास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं।

‘तंट्या’ उपन्यास में बुध्या, भुखा, गेणु पाटील, गजा, नर्मदाबाई, विठ्ठल, देवसिंग, गजरी, श्यामसिंग, रामनारायणजी, ठाकुर नारायण, नारायण कोतवाल, इन्स्पेक्टर इब्राहीम बेग, रतिलाल शेठ, बक्षीसिंग आदि।

षष्ठम अध्याय

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों की भाषा एवं औपन्यासिक-कला

6.1. अंतर्वस्तु

साहित्य सृजन एक प्रकार की साधना है जिसका स्तर सामान्यजन की शक्ति एवं सामर्थ से रचनाकार के जड़ाव पर निर्भर है। किसी भी सृजन के लिए एक विशेष प्रकार की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। प्रत्येक रचनाकार अपने जीवन-विवेक के अनुसार ही जीवन जगत अथवा उसके किसी तथ्य को आत्मसात कर पाता है। रचनाकार द्वारा आत्मासात कृत जीवन जगत एवं उसके बाह्य जीवन जगत के बीच द्वंद्व एवं सामंजस्य की प्रक्रिया निरंतर घटित होती रहती है। और इस क्रम में उनमें संशोधन, परिवर्धन, परिवर्तन आदि भी होता रहता है। रचनाकार के अंतर्गत एवं बाह्य जगत के बीच निरंतर चलनेवाले इस घात-प्रत्याघात के क्रम में "जब अंतर्तत्त्व व्यवस्था का अंगभूत कोई मनस्तत्व एक तीव्र लहर के रूप में उत्थित होकर मन की आँखों के सामने तरंगायित और उद्घाटित और आलोकित होते हुए, अभिव्यक्ति के लिए आतुर हो उठता है, तब वह कला के वस्तु तत्त्व के रूप में प्रस्तुत हो जाता है।"[477]

उपन्यास की अंतर्वस्तु का संबंध लेखक की अनुभूतियों तथा भावनाओं से है जो पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इन आंतरिक शक्ति के अभाव में उपन्यास का बाहरी रूप निर्मित नहीं हो सकता। उपन्यास की इसी आंतरिक चेतना को 'वस्तु' के नाम से संबोधित किया जाता है। उपन्यास में अंतर्वस्तु निर्विवाद है। जिस प्रकार बिना बीज के वृक्ष तथा बिना आत्मा के शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार वस्तु के बिना उपन्यास निर्माण की परिकल्पना नहीं की जा सकती।

[477]मुक्तिबोध रचनावली, पृ.सं. 109.

‘वस्तु’ शब्द अंग्रेजी के कन्टेण्ट (Content)शब्द का पर्याप्त है । हिंदी में प्रचलित ‘वस्तु’ शब्द को अनेक समानार्थी शब्दों— कथ्य, अनुभूति, भाव, वर्ण्य विषय आदि के संदर्भों में प्रयुक्त किया जाता है । वस्तु उसकी आंतरिक चेतना से है जो सर्जक के मानस पटल पर उसके परिवेश, परिस्थितियों तथा दृष्टिकोणों में परिवर्तन के फलस्वरूप प्रथम बार अवतरित होता है । वस्तु की अनुभूतियाँ या उसका भावबोध ही वह वस्तु तत्त्व है जो समक्ष शिल्प पाकर उपन्यास का रूप ग्रहण करता है । विषय के साथ लेखक का रागात्मक और संवेदनात्मक स्तर एकत्व हो जाता है तभी वस्तु का जन्म होता है । ऐसे में विषय को आलंबन के रूप में ग्रहण कर रचनाकार जो वर्णन करता है, उसे कथ्य और वर्ण कहा जाता है । वह कथ्य और वर्ण ही वस्तु कहलाती है ।

कला के वस्तु का सामाजिक विषयों से सीधा संबंध नहीं है । बचपन से ही बाह्य जीवन-जगत का कवि-मन में आभ्यांतरीकरण होता रहता है । इस प्रक्रिया में लेखक-प्रकृति और जीवन-जगत का जबरदस्त द्वंद्व जारी रहता है । इस द्वंद्व के पश्चात ही एक मनस्तत्त्व का निर्माण होता है जो वस्तुतः ‘बाह्य जीवन-जगत का संशोधित-संपादित तत्त्व’ होता है । यह मनस्तत्त्व ही काव्य का वस्तु है । इस मनस्तत्त्व की कलात्मक अभिव्यक्ति भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं है । कलाकार उन्हीं विषयों को कलात्मक रूप देने के लिए प्रयासरत होता है जो ‘युग-प्रवृत्तियों के अनुकूल’ हो । कला के वस्तु तत्त्व को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं—“कला के वस्तु तत्त्व वे अंतर्तत्त्व हैं जो बाह्य जीवन-जगत के आत्मसात किये हुए जीवन-मूल्यों द्वारा संयुक्त होकर मन की आँखों के सामने आलोकित और तरंगायित हो उठते हैं, और जिनके बारे में यह प्रतीत होता रहता है कि वे अभिव्यक्ति के लिए, अर्थात कलात्मक बाह्यीकरण के लिए, किसी-न-किसी प्रकार से महत्त्वपूर्ण है । इस महत्त्व-भावना के अभाव में कलाभिव्यक्ति असंभव है ।”[478]

---

[478]मुक्तिबोध रचनावली, भाग पाँच, पृ.सं. 112.

6.2. रूप

साहित्यालोचना के उद्भव से ही वस्तु और रूप के संबंध में विवाद रहा है। साहित्यालोचना के लंबे इतिहास में मुख्य रूप से जोर साहित्य के रूप पक्ष पर ही था। भारतीय आलोचना के मुख्य सिंद्धातों पर ध्यान दें तो अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, औचित्य और बहुत हद तक रस संप्रदाय भी साहित्य के रूप पक्ष तक ही सीमित थी। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक बच्चन सिंह कहते हैं—"कला निर्मिति में संयोजित उपकरणों की समग्रता रूप है। इसी को कुंतक अलंकार-सहित और अवयव-रहित कहता है। अलंकार (व्यापक अर्थ में) अवयव हैं। किंतु कलाकृति में संयोजित होकर वे अपनी पृथक सत्ता खो देते हैं। और समग्रतः जो आकार ग्रहण करते हैं उनकी चरम परिणति रूप है।"[479]

भारतीय काव्य चिंतन परंपरा में सर्वप्रथम भामह ने अलंकारों को ही काव्य सौंदर्य का एक मात्र कारक घोषित किया। इसलिए ये हमारी काव्यशास्त्रीय परंपरा में रूपवादियों के आदि गुरू है। भामह अलंकार को काव्य सौंदर्य का मूल कराण मानते हुए उसे ही काव्य का सर्वस्व घोषित करते हैं। इनके बाद वामन ने 'रीति' को काव्य की आत्मा और विशिष्ट प्रकार की पद-रचना को 'रीति' कहा है। 'रीति' को आज की भाषा में 'शैली' या अंग्रेजी का 'Style'कहते हैं। परंतु 'रीति' का काव्य शास्त्रीय अर्थ काव्य-नियम या काव्य सिद्धांत के व्यापक रूप में नहीं, अपितु विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति पद्धति के अर्थ में प्रचलित रहा है और आज भी हिंदी में उसका पर्याय वाची 'शैली' (रूप) इसी अर्थ का द्योतक है।

कुंतक वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रवर्तक है। कुंतक ने अलंकारवादियों में सबसे अधिक संगत दृष्टिकोण अपनाकर शब्द, अर्थ और अलंकार की समष्टि को काव्य कहा है। लेकिन उन्होंने अपने

---

[479]हिंदी आलोचना के बीज शब्द, 98.

सिद्धांत में कथ्य के स्थान पर कथन शैली पर ही ध्यान केंद्रित किया है । कुंतक वक्रोक्ति को महत्त्व देते हैं। इसी कारण वे रूपवादियों की कतार में खड़े हो जाते हैं।

रूप के संदर्भ में विवेचन करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखतें हैं—"जब रूप विन्यास अंग-प्रत्यंग से यथोचित सन्निविष्ट, संश्लिष्ट तथा संन्धिबद्ध होता है तभी वह स्वाभाविक प्रतीत होता है । भावों के साथ उसका मेल भी तभी बैठ सकता है और ऐसी ही स्थिति में किसी प्रकार के आभूषण बिना ही शरीर विभूषित मालूम होता है। 'रूप' है ।"[480]

इस संदर्भ में डॉ. रवि रंजन की मान्यता है कि—"'रूप' शब्दस्वयं में इतना अस्पष्ट है कि सामान्यतः इसकी कोई परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकती । फिर भी रूप शब्द से सौंदर्य बोधक भावना का प्रकाशन होता है और सुडौल अंग यष्टि अपने आप ही शोभन है । इसी को आचार्यों ने'रूप' अथवा 'फार्म' की संज्ञा दी है ।"[481]

साहित्य का रूप-पक्ष भी केवल छंदगत संरचना, लयात्मकता अंतर-क्रीड़ा, विशिष्ट मुहावरा और संयोजित शब्द रचना नहीं है, वह इससे कुछ अधिक है। रेने वेलेक ने लिखा है—"सामान्य रूप से पुराना वाग्मिता-संबंधी जागरण और नव-क्लासिकल उपयोग, जो रूप को शाब्दिक रचना के तत्त्वों से जोड़ता है-लय, छंद, संरचना, शब्द-चयन, बिम्बावली से और वस्तु को संदेश, सिद्धांत से, छोड़ दिया गया है । हम मानते हैं कि रूप वास्तव में संदेश का आलिंगन करता है और इसमें इस तरह धँसता है कि यह अधिक गंभीर और वजनी मायनी उजागर कर सके बजाय अमूर्त संदेश के या अलग लोगने वाले अलंकार से ।"[482] रूप को जब केवल वस्तु तत्त्व के

---

[480]आधुनिक हिंदी काव्य में रूप वर्णन, पृ.सं. 18.

[481]प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, पृ.सं. 55.

[482]आलोचना की धाराएँ, पृ.सं. 29.

अभिव्यक्ति का एक माध्यम माना जाता है तब वह वस्तु से भिन्न कोई तत्त्व दिखाई पड़ने लगता है। या फिर रूप को ही कलाकृति की श्रेष्ठता का एकमात्र मानदंड समझना भी उसे वस्तु से दूर और भिन्न करता है।

6.3. अंतर्वस्तु और रूप का द्वंद्व

दरअसल रूप और वस्तु की श्रेष्ठता का सारा विवाद दोनों को अलग-अलग मानने के कारण है। अक्सर आलोचना वस्तु को आंतरिक और रूप को बाह्य तत्त्व समझकर दोनों की एकीकृत निर्माण प्रक्रिया को अनदेखा कर देते हैं। मुक्तिबोध का दावा था कि कवि के मनोजगत में वस्तु, रूप के बिना प्रकट ही नहीं हो सकती और रूप का जन्म और स्वरूप निर्धारण भी कवि के आतंरिक संसार में ही होता है। कला-सृजन के क्षणों में जिस प्रकार आंतरिक और बाह्य दबावों में वस्तु-तत्त्व की संरचना निरंतर बदलती रहती है वैसे ही रूप तत्त्व भी संशोधित होता रहता है। वस्तु और रूप भी एक दूसरे को परिवर्तित और विकसित करते रहते हैं। वस्तुतः कला-सृजन एक संश्लिष्ट क्रिया है जहाँ रूप और वस्तु का अंतर सक्रिय नहीं होता है।

वस्तु और रूप के विवाद का जटिल, एकांगी और संकीर्ण हो जाने का कारण यह था कि यह विवाद साहित्य की समझ विकासित करने की प्रक्रिया में नहीं पैदा हुआ था, बल्कि विशेष वैचारिक समझ के प्रति दुराग्रह के साथ यह साहित्य का मूलांकन कर रहा था। आलोचक वैचारिक पूर्वग्रहों के, आवेग में साहित्य में वस्तु और रूप की महत्ता पर विचार कर रहे थे। इसी कारण साहित्य की संश्लिष्टता उनकी समझ के बाहर थी, और शायद इसीलिए वस्तु और रूप के द्वंद्वात्मक संबंधों को तमाम आलोचकों की तुलना में कवि मुक्तिबोध ज्यादा गहराई से समझ सके।

रूप और वस्तु के संदर्भ अपना मत व्यक्त करते हुए शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं—“रूप तत्त्व या वस्तु के विश्लेषण का मैं विरोधी नहीं हूँ, क्योंकि विश्लेषण साहित्य के मूल्यांकन की

प्रणाली का अनिवार्य प्रथम चरण है। लेकिन विश्लेषण को ही साहित्यालोचना का अंतिम लक्ष्य मान लेना और वह भी रचना के केवल वस्तु या केवल रूप पक्ष के विश्लेषण को ही, मैं समझता हूँ, सर्वथा एकांगी है।"[483]

अंततः यह कहा जा सकता है कि, वस्तु और रूप विवाद का एक जटिल पक्ष इनके निर्माण और निर्धारण के आधारों की खोज था। वस्तु और रूप के द्वंद्वात्मक संबंधों की स्वीकार्यता के बावजूद इनमें से किसको किसके द्वारा निर्देशित माना जाए ? वस्तु के आधार पर रूप निर्मित होता है या रूप के आईने ने वस्तु ? रूपवादियों का विचार था कि साहित्य की साहित्यिकता उसके रूप पर निर्भर होती है। वस्तु तो हर युग में एक ही रहे हैं लेकिन हर युग की कला अपनी अपनी भिन्न पहचान रूप के आधार पर निर्मित करती है। प्रयोगवादी अज्ञेय लिखते हैं—"काव्य का 'रस' कवि में, या कवि के जीवन में या वर्ण्य विषय अथवा अनुभूति में या किसी शब्द विशेष में नहीं है, वह काव्य रचना की चमत्कारिक तीव्रता में है।"[484] और यह ठीक भी है क्योंकि वस्तु यदि विचार है तो शिल्प विचाराभिव्यक्ति का एक प्रकार। व्यक्ति के भीतर पहले विचार पैदा होते हैं तब वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए उचित माध्यम की तलाश करता है। जो अपने विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति में सफल हो जाते हैं।

अंतर्वस्तु और रूप विवाद के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि, समकालीन हिंदी और मराठी के आदिवासी उपन्यासों में लय, छंद, शब्द-चयन, बिम्ब, प्रतीक, भाषा, मुहावरा आदि हमें देखने को मिलते हैं। इन बिंदुओं का ब्यौरा स्वतंत्र रूप से किया गया है।

6.4. भाषा-शैली

[483]आलोचना के मान, पृ.सं. 38.

[484]त्रिशंकु, पृ.सं. 44.

किसी भी उपन्यासकार के पास अपनी रचना के निर्माण के लिए केवल एक ही माध्यम होता है- शब्द । जिस प्रकार संगीतज्ञ के पास ध्वनि और चित्रकार के पास रंग होता है, उसी प्रकार उपन्यासकार के पास शब्द होते हैं। उपन्यासकार जीवन की लालिमा और बहुवर्णी छटा को प्रस्तुत करने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है अथवा स्मृति और अनुभूति के अंधकार व प्रकाशपूर्ण क्षणों को अक्षरों में बाँधने की चेष्टा करता है। वह शब्दों का चित्र अंकित करने की क्षमता से युक्त होना चाहिए। उसमें ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि न केवल चित्र को बल्कि ध्वनि को भी व्यंजित कर सके। भाषा की शाब्दिक अर्थ है— भाव प्रकाश करने का साधन जन समाज में प्रचलित शब्दावली और उसके बरतने का ढंग, बोली एवं व्यक्ति विशेष के लिखने का ढंग। भाषा संप्रेषण का माध्यम है। कोई भी विषय कितना ही सुंदर क्यों न हो पर अगर भाषा का सही सहारा न मिला हो तो वह विषय अपनी पूरी महत्ता के साथ हमारे सामने सम्मुख नहीं हो पायेगा। "भाषा ऐसे शब्द समूहों का नाम है, जो एक विशेषक्रम से व्यवस्थित हो कर हमारे मन की बात दूसरे मन तक पहुँचाने और उनके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है। अतएव भाषा का मूल आधार शब्द है।"[485] भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है तथा उसे जिस ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाता है, वह ढ़ंग ही शैली कहलाती है। वैसे—"भाषा और शैली दो विभिन्न तत्त्व है, किंतु दोनों के बीच घनिष्ठता के कारण दोनों को एक माना गया है। भाषा शैली भावों तथा विचारों की वाहक हैं। इस तत्त्व के बिना कथ्य कथा का रूप धारण नहीं करता। इस तत्त्व के समीप होने पर कथा के दूसरे तत्त्वों की दुर्बलता छिप जाति है।"[486]

उपन्यासकार को अपनी अभिव्यक्ति में मौलिकता लाने के लिए अत्यंत सरल एवं सहज भाषा शैली अपनानी चाहिए। लेखक का अपनी भाषा पर जितना अच्छा अधिकार होगा,

---

[485]बृहत हिंदी कोश, पृ.सं. 944.

[486]हिंदी उपन्यासः उद्भव और विकास, पृ.सं. 16.

उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति सशक्त होगी। भाषा सरल, स्वाभाविक एवं पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षित एवं अनपढ़ व्यक्ति की भाषा में अंतर स्पष्ट होना चाहिए। जहाँ तक हो सके उपन्यास में लंबे समास, एवं कठिन तथा अपरिचित शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। भाषा में चित्रात्मकता, रोचकता, प्रवाहमयता आदि गुण होने चाहिए। आवश्यकतानुरूप उसमें मुहावरें एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भी होना चाहिए।

कहने को तो भाषा 'कोश' में आए शब्द ही हैं जो हर समय वही अर्थ देते हैं, जो हम बोलते हैं, पर साहित्य में उतरने के बाद भाषा कुछ और हो जाति है। उसमें लेखक की सृजनात्मकता भी आ जाति है। इसी सृजनात्मक भिन्नता के कारण एक लेखक दूसरे लेखक से अलग दिखाई देता है। "भाषा का इस्तेमाल एक जोखिम से भरा हुआ काम है। इस जोखिम को भुगतना हर उस व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता जो 'लिखता' है। जो लेखक या लेखक पीढ़ि इस जोखिम को उठाती हैं वही कुछ कर पाती है। नहीं तो भाषा हमें मिलती है वही कुछ कर पाती है। नहीं तो जो भाषा हमें मिलती है वह अपूर्ण होती है और नई भाषा की खोज में यह खतरा भी होता है कि वह वैचारिक संवाद की भाषा बन भी पाएगी या नहीं। इस खतरे को या जोखिम को सृजक, लेखक ही वहन कर सकता है।"[487]

प्रेमचंद ने पहली बार बोधगम्यता की आवश्यकता को समझा एवं सरल-सुबोध, आम बोलचाल की भाषा पर जोर दिया। प्रेमचंद की भाषा उनके तक ही सीमित न रहकर उस युग की भाषा हो गयी थी। जैनेंद्र एवं अज्ञेय के माध्यम से भाषा में एक बदलाव आया। वैसे तो सामान्य जीवन में हम भाषा का प्रयोग कई स्तरों करते हैं। बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा में अंतर होता है। साहित्य की भाषा बोलचाल का ही एक रूप होती है। वह उससे बिल्कुल पृथक हो ही जाति है। भाषा और हमारी सोच और अनुभव का रिश्ता बड़ा गहरा होता

---

[487]नयी कहानी की भूमिका, पृ.सं. 167.

है । जो भाषा जितनी ही विकसित होती है उसकी सोच और अनुभव उतना ही परिष्कृत तथा समृद्ध होता है ।

इसलिए हिंदी और मराठी आदिवासी उपन्यासों के भाषाओं में विविधता में एकता दिखाई देती है । साथ में पारंपारिक एवं आधुनिक भाषा का भी उपयोग लेखकों ने किया है । जिसमें उन्होंने हिंदी के साथ भोजपुरी, असुरी, ग्राम्य भाषा, फारसी, अरबी तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया है । किसी भी रचनाकार के लिए भावों को व्यक्त करने का साधन भाषा ही है । अतः भावों का तथा भाषा का अविच्छिन्न संबंध है । कोई भी भाव बिना भाषा के व्यक्त नहीं किया जा सकता है और कोई भाव रहित नहीं होती, किंतु वही भाषा सफल समझी जाति है जिसमें भावों को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता हो ।

6.4.1.आदिवासी बोली-भाषा के शब्दों का प्रयोग

समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की बोली भाषा, ग्राम्य बोली, हिंदी, मराठी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया है । 'ग्लोबल गाँव के देवता' की भाषा रणेंद्र की अनुभव की भाषा है । तथा साथ में पारंपारिक एवं आधुनिक भी है । उपन्यास में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, और साथ में बोली भाषा का भी प्रयोग किया है । उस इलाके के सिपाही की भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं—“का खा कर कोल कूकुर, असुर-वानर सब नेतागिरी करेगा ? नेतागिरी का होता है, ई बूझता भी है का सब ?”, “अरे ! हमरा इलाका में होता तो दूइ, मिनट में गरमी झाड़ देता । कल्हे शाम को तो अंबाटोली में एक-दो लड़के की भरपेट पिटाई की थी । ऊ भी बूझता होगा कि किसी से भेंट हुआ है

।"[488]इस उपन्यास में असूरी बोली के— ई, दूई, कल्हे, ढ़ो, का, खा, कोल, कूकुर आदि शब्दों की लकब झलकती है । ऐसी ही लकब पारधी उपन्यास में आए हुए है । जैसे— हाय, नाय, म्होरं, ठावं, अरं, व्हय, म्या, रोट (मोठी-सी रोटी) बि-हाड, हैस, नायरं आदि ।

हिंदी उपन्यासों मेंजहाँ बाँस फूलते हैं— मिजो बोली,जो इतिहास में नहीं है— संथाली भाषा, जंगल जहाँ शुरू होता है— थारू बोलीतथा मराठी हाकुमी, एक नक्षलवाद्याचा जन्म— इन दो उपन्यासों में माडिया गोंड बोली का प्रयोग हुआ है । तंट्या— भीली, झेलझपाट—कोरकू तथा ब्र— कोरकू, माडिया, गौंडी आदि बोलियों का प्रयोग हुआ है ।

मिजो बोली के कुछ शब्द इस प्रकार हैं— मामाते-बच्चों, कपू-श्रीमान, वाइ- गैर मिजो, पुआन-लुंगी, जू- स्थानिय शराब, चिवाइ-प्रणाम, त्लवडाल-युवक, थी- मरणा, पा-पिता, नुपुई मान- दहेज, सुआल लुक-तुक ई हुर- बदमाश, कामुक, जोङ-जोङ-युवक और युवतियाँ, वान हुआई-भूत, छाङ- तिब्बती शराब, मेलछिया-बदसूरत आदि शब्द दिखाई देते हैं ।

संथाली—माँझी-मुखिया, नायके-प्रधान पुजारी, परगनैत-ग्राम पंचायत का प्रधान, गगरी हँड़िया-चावल की मदिरा, छूतका-सूतक, कुरी-लड़की, कोड़ा-लड़का, बिटलाहा-यौन अपराध का दंड, जाति बहिष्कार, चक्का-सूर्य, भूत नासान-बोंगा- बुरी आत्मा, जनी-पत्नी, छऊआ-पुता-नाती, पोते, रायबिरौच-विवाह की बात चलाने वाला बिचौलिया, चाँदो बोंगा-चंद्र देवता, बुरू बोंगा-पहाड़ देवता, बोंगा-बोंगी-देवी-देवता, अबुआ दिशोम-अपना देश, हूल-विद्रोह, डोरी-महुए का फल, करमाडार-सहेलियाँ, ओड़ाक बोंगा-गृह देवता, जलखई-जलपान, माजवान-दोपहर का भोजन, बखेड़-मंत्र, माकतोम गेले-महुवे के फूल, सेनुर-साकोम-सिंदूर-चूड़ी, अबगे बोंगा-परिवार देवता, बछर बियानी-हर वर्ष बच्चे जनने वाली आदि ।

---

[488]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 87.

माडिया गोंड बोली— लांबाडा-घरजवई, याया-माता, कैतुली-झोपडी, पेरमा,भूमया-भगत, पंडूम-त्यौहार, घोटुल-युवागृह, हाकुमी- पितल का चमनेवाला सिंग, गोरगा- स्थानिय शराब, डफेदार-जंगलखाते का अधिकारी, गेतेंग-कपड़ा (हाकुमी) । नेगल पेंडा- शेर की गांड, लमाणे-घरजवई, घोटुल-युवागृह, चुटा- बीडी, पांडुम-त्यौहार, खेतुल-झोपड़ी, कल्लू-शराब, पोलके- वस्त्र, थुंबा-भूंगा, तप्पे-बाप, गेडातोर-नक्सलवादी, होड-पैसा, मेट-मुनिम (एका नक्षलवाद्याचा जन्म) । लांबजाना-घरजवई, चिडी-बत्ती, जांगडी-गैर आदिवासी, भूमका-भगत, ससना-मुर्गीयों का घर, डोम-पाणी का खड्डा, तुंबा-भुंगा, हाण्डोर-मछली पकड़ने की जाल (झेलझपाट) । खंदाड्या-घरजवई, पाडा-वस्ती, चौचाल-चाबरी, देज-दहेज, जिखनां-पहेली, देवकरी-भगत, बंदार-सुखी मच्छली, पातला-वीटभट्टी, घुड्याचे-चावल के, वेलगड-खेकड़ा, घाटो-चावल, मेज-अंडा, उल्लिंगा-रसोई, पलक-दात, पोलो-चुनाव, पट्टे-पक्ष (ब्र) ।

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की बोली में जो शब्द परिलक्षित होते हैं वे सामाजिक, सांस्कृतिक, रहन-सहन, खान-पान, देवी-देवता, रिश्ते आदि से संबंधित है । किंतु हिंदी तथा मराठी के उपन्यासों में गैर-आदिवासियों को नकारात्मक तौर पर अगल-अलग नामों से, शब्दों से उन्हें बुलाया गया है ।

काला पादरी, अल्मा कबूतरी, गाथा भोगनपुरी इन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी बोली भाषा का प्रयोग न के बराबर है । वैसे मराठी के टाहो, कोळवाडा, पारधी इन उपन्यासों में आदिवासी बोली भाषा का इस्तेमाल नहीं हुआ है ।

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की जो बोलियाँ है वह भिन्न-भिन्न हैं किंतु हिंदी के आदिवासियों की बोलियों में भिन्नता दिखाई देती है । वही मराठी उपन्यासों के आदिवासियों की बोली मेंमानता दिखाई देती है ।

6.4.2. यूरोपीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

हिंदी तथा मराठी के आदिवासी उपन्यासों मेंअधिकांश अंग्रेजी शब्दों का प्रभाव दिखाई देता है । अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सुशिक्षित पात्रों के मुख से तथा उपन्यासकार के निवेदन से दृष्टिगोचर होता है । जैसे— ओनली गॉड नोज, स्टेशन, आईडिंटीफिकेशन, ऑफिस, गवर्नमेंट, पर्सनल लाईफ, एजुकेटेड, कलेक्टर, पॉलिटीकल, पूअर, एज्युकेशन, एनर्जी, इंटेक्ट, इंटेसिटी, एक्टिविटी, हाउस, ड्यूटी, कम्युनल, सिस्टर, फादर, रीलेटिव, इंडिया, इमेज, बिजनेस, इम्पार्टेंट, स्टैटस, फीलिंग, रिएक्ट, कैजुअली, लॉस, ब्रदर्स, लॉर्ड, प्रेअर, कॉर्नर, डीटेल्स, मिनिस्ट्री, हैंडपंप, डॉक्टर, वार्ड, लाइक, मँडम, प्लीज, टाईम, डिटेल, वाइफ, ट्रीटमेंट, आफकोर्स, स्टेंटमेंट, फोटो, सरप्राईजिंग, सडन, ऐलिनियेटेड, सोसायटी, सिविलाईजड, होम, कॉल्ड, वैरी राईट, एक्सपेक्टड, लाईफ, एडाप्टेड, रिस्पेक्ट, पीपल, डिस्गस्टिंग, रिवोल्युशनरी, जंजमेंट, सरटेनली, इनडेबटेड, एक्सप्लायट, कन्सर्न, एंजाय, अपार्चुनिटी, लिस्ट, एक्सक्यूज मी (काला पादरी) ।

'काला पादरी' उपन्यास में जेम्स खाखा, आदित्य तथा सोजोलिन मिंज ने अधिकतरअंग्रेजी का प्रयोग किया है उसी तरह मराठी के 'ब्र' उपन्यास में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है । जैसे— ट्रफिल, बस स्टँड, कँन्टीन, बँग, लाईट, गेस्ट हाऊस, व्हीआयपी, रिजर्व्हेंशन, टँक्सी, इंडियन, ग्रीन, ऑकर, फील्डवर्क, हॉल, मीटींग, पॉलिटीक्स, इलेक्शन, मेंबर, हॉस्पीटल, नर्स, सिस्टर, पोलिस, ऑपरेशन, पेंटीग, वार्ड, रेकॉर्ड, डॉक्टर, डायमेन्शन, कॉलनी, मशीन, पेशंट, अँडमिशन, फोन, रोमांटिक, ऑफिस, इंटरेस्टींग, डॉक्युमेंटेशन, प्रोजेक्ट, कंडक्टर, इमोशनल, कॉफी, सेमिनार, प्रोब्लेम, फंडिंग एजन्सीस, मँडम, सर, डिजाईन, वाशिंग, पॉलिश, डिटेल्स, डेव्हलेपमेंट, कॉर्पोरेशन, पॉकेट, फँक्स, न्यूज पेपर, शॉर्ट, फँसिलिटीज, टिपीकल, अँक्सेप्ट, क्लिनिक, डँशिंग, टाइम्स, टॉयलेट, केबिन, सिमेंट, कॉंक्रिट डँडी, बँग, कोर्ट, एडमिशन, बिजी, लॉज, स्टेशन, ग्रज्युएट, फाईल्स, लाईफ स्टाईल, प्रेग्नेंसी, बेसिन, ड्रेसिंग, कन्फर्म, हार्म, रेग्युलर, कॉन्ट्रक्टर, टीपॉय, कलेक्टर, अँगल, हेड क्लार्क, लवँरेल आदि (ब्र) ।

'ग्लोबल गाँव के देवता' में अंग्रेजी शब्दों का बहुतायतसे प्रयोग हुआ है जिसमें आधुनिकता की तलाश की जा सकती है । जेसे— रेजिडेंशियलएस्कूल, प्रिमिटिव ट्राइब्स, पोस्टिंग, डायरेक्ट, फाइनल, सिक्रेटरी, ज्वायनिंग, लेडी पिऊन, हेडमिस्ट्रेस, टिचर्स, ऑफिस, टाईम, मायनर, हॉस्टेल, कँम्पस, क्रिम कलर, सेव्हिंग किट, रजिस्टर्ड, प्रैक्टिशनर, सीजन, नॉर्मल, प्रिंसिपल, ग्रेजुएशन, ओवरलोडिंग, अँफसर, लास्ट, सीन, फिक्सड, ऐंथ्रोपोलोजी, स्किल्ड लेबर, क्लर्क, बिल्डिंग, एडमिशन, हॉल्फईयरली, टेस्ट रिजल्ट, क्लास एलॉट, इंटर पास, फमेंटेशन, साईन्स टीचर, आदि ।

'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में अंग्रेजी शब्द— पुलिस, गार्ड, हॉल, रेंजर, फॉरेस्ट, डीजी, मिटींग, जेल, फोटो, हॉस्टेल, रिपोर्ट, लीडर, कमांडर, आय.पी.एस, एस.पी, सँल्यूट, मील, पार्टी, मेंबर, कमिटी, डिस्ट्रिक्ट, फ्रोजेड, गुड़ अफ्टरनून, लाईट, ऑर्डर, सर्व्हिस, सिगारेट, मिलिटरी, ट्रेनिंग, ट्रक, गेस्ट हाउस, स्टँड कँमेरा, प्रेस कॉन्फरन्स, वायर मँन, इंजिनियर, टॉवेल, टेबल, हार्ड कोअर, बँडेज, स्टँड, कमांडर, सोशल रिफॉर्म, क्रिएटिव्ह, जेल, रिपोर्ट, बॉम्ब, कॉम्रेड, गन आदि ।

अंग्रजी शब्दों का प्रयोग 'हाकुमी' उपन्यास में परिलक्षित होते है । जैसे— स्टेनगन, गार्ड, ट्रक ड्रायव्हर, टॉवेल, मलेरिया, कॉलरा, टायफाईड, लॉजिक, एस्टँबलिशमेंट, लोकल, अँनेस्थेशिया, ऑपरेशन, पोलिस, डॉक्टर, हेडमास्टर, केस, सीट, कंडक्टर, बस, मिडपॉइंट, सन्, यस्, थैंक्स, वेरीमच, इन्सीजन, बँडेज, इम्पॉसिबल, बिझिनेस, कॉट्स, सेफ्टी, सॉरी, प्लीज, मिशनरी, टाइम, इंजेक्शन, मोटार सायकल, रिलँक्स, पेशंट, ऑल क्लीअर, कॉम्रेड, कमिंग, सिटीझन्स, हेल्प, ट्रस्ट आदि ।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है । जैसे— वारंट, पुलिस, ऑर्डर, मिनिस्टर, कोर्स, शूट, कंपाउडर, कमीशन, इलेक्शन, क्रैशर, मोटर सायकिल, सर्च लाइट,

हैडपंप, ओपरेशन, ब्लूस्टार, रैड़-स्टार, पेंशन, फंड, इनकम, चैयर मेन, एडवांस, सरकीट हाउस, कोलेज, प्रोग्राम, स्टेशन मास्टर, स्पोट, ड्यूटी, स्टाफ, मिटींग, होर्न, हैलिकोप्टर, पोस्ट मार्टम, पार्टी इत्यादि ।

'झेलझपाट' उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग— जर्नल, कोलटेक्नी, कंपनी, ऑफिस, क्वार्टर, प्रोजेक्ट टाईगर, मँट्रीक, ब्रकबॉण्ड, हेअर पिन, प्लास्टिक, सेक्रेटरी, रजिस्टर, टेरीकॉट, रिस्टवॉच, एंड्रीन, सोसायटी, स्टॉक, फादर, ऑर्डर, डॉक्टर, पेशंट, ड्राव्हर, स्ट्रील, टेबल, प्रायमरी आदि ।

'जहाँ जंगल शुरू होता है' उपन्यास में अंग्रेजी के शब्द— जीप, स्ट्रार्ट, सर्किट हाउस, मीटिंग, कांस्टेबुल, हॉल, ऑपरेशन, ब्लैक, पाइथँन, अनएक्सेसीबुल, फॉरेस्ट, एक्सिडेंट, मिस्टर, इंचार्ज, जनरल, सिंगल, इन्फॉरमेशन्स, स्ट्रेटेजी, माइंड, प्रेजेन्स, इंट्यूशन, प्लानिंग, हेलीकॉप्टर, हेडक्वार्टर, बायोडाटा, सैल्यूट, बेस्ट ऑफ लक, पेट्रोल, आर्म्स, ऐडवेंचर, ट्रैक्टर, सायकिल, मोटर सायकिल, इंस्पेक्टर, डॉक्टर, पुलिस, ऑफिस, मिनिस्टर, गार्ड, प्रमोशन, ड्राइव, एक्टीविटी, रिटायर्ड, रिपोर्ट, ऑपरेटर, टॉर्च, कॉम्बिंग, रेकॉर्ड, अफकोर्स, पब्लिक, पेट्रोमैक्स, स्टीयरिंग, डाइलॉग, टॉकीज, लाइन, डेटा, स्कूल, स्पॉट, गवर्नमेंट, मोबिलाइज, डिजर्व्स, ट्रेनिंग, टेलिस्किपीक, मस्टराइन, ट्रैक सूट, कैम्प, व्हिसिल, मास्टर, पॉलिशी, डॉग, पैरासाइट, फीड बैग, डेवियेटेड, लेटर बॉक्स, स्ट्रेज स्टोरी, अपीलिंग, थ्रीलिंग, चार्मिंग, सेक्योरिटी, विजिलेंस, लीकेज, रेप, बायोनेट, हेट्रेड, डिजॉल्व, प्रेसिपिटेशंस, स्पार्क्स, न्यूक्लियस, टेरिलिन, एनकाउंटर, मदर, फेंशिंग आदि ।

मराठी के 'टाहो' उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है— ट्रक, हॉस्टेल, पार्टी, डिझाइन, फर्निचर, स्पोट, लँन्ड लॉर्ड, डॉक्टर, फेंडशीप, रेल्वे स्टेशन, प्लँटफार्म, पार्लमेंट,

फंडामेंटल राइट, बोर्ड, कोर्ट, पँवल, मेंबर, जेल, हाउस, पोलिस, टिकिट, बजेट, टाई, सूट, इलेक्ट्रीक, जज, निमोनिया, बँनर, कमऑन आदि।

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास के अंग्रेजी शब्द—किलोमिटर, प्रायमरी, पाइप, ट्रक, सायकिल, रेल्व स्टेशन, टिकट कलेक्टर, जीप, कार, ड्रायवर, सर्वेन्ट, बाउड्री, कम्पाउण्ड, ट्रान्सपोर्ट, कंपनी, ड्राइंग रूम, ऑफिस, हॉल, बिल्डिंग, टीन, गेस्ट रूम, बाथरूम, जियोमेट्री, प्रीवी पर्स, रजिस्टर, एंट्री, सिमेंट, सेल्फ सर्व्हिस, पेट्रोल पंप, रोडवेज, म्यूनिसिपैलिटी, हाउस टैक्स, वॉटर टैक्स,एसेसमेंट, नोटीस, कलेक्ट, सर्किट हाउस, लेफटिस्ट पार्टी, न्यूज़, रिपोर्ट, डिजाइन, मजिस्ट्रेट, ट्रांसफर, लाइट, सेक्रेटरी, टेलिफोन, फाइल, सस्पेंडेड, चार्ज, कलेक्टर, ड्यूटी, गारंटी, बैंक, पासबुक, रेंजर, गार्ड, फादर, डिप्टी कलेक्टर, इंजिनियर, प्राबलम, मिनट, पिक्चर, लाइसेंस, सस्पेंशन, सर्वे, लिस्ट, होल्ड इट, ब्लाक, प्राइवेट, पेसेन्जर्स, एफिडेविट, लेबर, बान्डेड, विजिलेंस, कमिटी, सेक्शन, एक्सप्रेस, कमिश्नर आदि।

'कोळवाडा' उपन्यास में अंग्रेजी के शब्द— नॉन मट्रीक, पोस्टमैन, पाकिट, डिपार्टमेंट, कँशियर, एम्प्लॉमेंट, सस्पेंड, कॉलरशिप, पँन्ट, पोलिस, जेल, कॉल, फोटो, रजिस्टर, ड्रेस, पॉईंट, डॉक्टर, केस, नर्स, ऑपरेशन, पाईपलाईन, टेरीकॉट, पेपर, मार्क्स, स्टेज, वॉचमन, कलेक्टर, टी.व्ही, इरिगेशन, इंजिनियर आदि।

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में अंग्रेजी शब्द— शटअप, कंपनी, बाक्साइट, अरेस्ट, अमेजिंग, राइजिंग, वाइल्ड, सिरियसली, रेवेलियंस, सिम्पली, मोमेण्ट, ट्राइस, पोलिस, गवर्नमेंट, फायर, गवर्नर, जनरल, स्टेट, टारगेट, इन्फोर्मेट, फालोइंग, डेस्ट्राय, किलोमिटर, रेजिमेण्ट, लेफ्टिनेण्ट, लिपट्रेप, गॉर्डन, इंजन, गार्ड, राइफल्स, गन, ड्यूटी, एनिमल्स, वाइल्ड, बजट, लाइन, अरेस्ट, अमेजिंग, राइजिंग, सिम्पली, रायट, रेवेलियंस, श्योर, आर्म्स, अंगेस्ट, क्वायट, ब्राउन, वाइल्ड, सिरियसली, क्रश, ट्राइस आदि।

'तंट्या' उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है । जैसे— पोलिस, कोर्ट, मिशनरी स्कूल, शर्ट, पोलिस स्टेशन, टेबल, विटनेस, वॉर्डन, जेल, रेकॉर्ड, रेल्वे स्टेशन, हंटर, ऑर्डर, ज्युडिशियल, जेलर, मास्टर, पेपर, सर, टेलीग्राम, कस्टडी, गार्ड, डिप्टी कमिशनर, सेंट्रल, प्रॉव्हिन्स, गँजेट, पोस्टमन, नोटिस, सिव्हिल, लाइन, डॉक्टर, इंन्सपेक्टर, फोर्स आदि ।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास के अंग्रेजी शब्द— स्टेट, कर्नल, रेजिमेंन्ट, प्रेसीडेंसी, पाइप, क्वार्टर, गार्ड, रोल कॉल, सुपरिटेंडेंट, कैप्टन, रिपोर्ट, कॉल, ड्रिंक, स्कॉच, ट्रे, कमाण्डेंट, प्लेट, टेबिल, जनरल, गवर्नर, कौंसिल, पोलिटिकल, एजेण्ट, रायफल, बटालियन, परेड, ग्राउण्ड, सीलिंग, सेल्यूटिंग, क्वार्टर गार्ड, एड्ज्यूटेंट, रेस ट्रेक, सेल्यूट, हॉल, इम्पीरियल, इन्स्टीट्यूट, मैडम, स्टार, इंडिया, कंपनी, पोलिस, रेस्ट हाउस, माउण्टेड, नोटिस, डॉक्टर, मेजर, कवर पेज, स्टोरी, ऑफिसर्स, म्यूटिनी, एरिया, डिस्कसन्स, एक्सपीरियेंस, लेटर, स्टेशन, ट्रेन, डिनर,मिशन, कमीशन, मजिस्ट्रेट, रेजिडेंट, ऑपरेशन, कमीश्नर आदि ।

'पारधी' उपन्यास में अंग्रेजी के शब्द— ब्लाऊज, ऑफिस, डिपो, टँक्सी, सस्पेंड, गव्हर्नमेंट, ट्रान्झीस्टर, रेडिओ, पँन्ट, शर्ट, हँण्डबँग, हायब्रीड, रेड, पोलिस, कोर्ट, हॉल, मँजिस्ट्रेट, क्लार्क, वर्क, पॉकिट, ड्रेस, वॉचमन, कार्ड, स्टेशन, तिकिट, प्लँटफॉर्म, कॉल, गेट, ट्रंक, रिमांड, लाईट, पब्लिक, बँग, पोलिस कॉन्स्टेबल, मिस्टर, स्टँन्ड, सायकल, कर्नल वॉर्ड, स्पेशल कमिश्नर, चिफ कमिशनर, एक्शन, रिएक्शन, गवर्नर जर्नल,इंचार्ड, एक्स्ट्रा, डेप्युटी, थँक्यू, शेकहँड, रेसिडंट, रेग्यूलर, ऑफिसर, बटालियन, स्पेशल, सप्रेशन, इंन्फ्ट्री, सेंट्रल, प्रॉव्हिन्स, कंप्लेंट्स आदि ।

हिंदी और मराठी के उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का बहुतायत प्रयोग हुआ है । उपन्यासकार अपने वातावरण, कथन, पात्रों के संवादों को जीवंत रखने के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं । इन उपन्यासों के बहुतांश अंग्रेजी शब्दों के माध्यम से समानता ही दिखाई

देती है । किंतु हिंदी उपन्यासों में जो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है वह मराठी उपन्यासों से अलग प्रतीत होता है । क्योंकि आदिवासी-समाज के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं । उपन्यासकारों ने किसी एक समस्या को लेकर उपन्यास की निर्मिति की है । इसलिए अंग्रेजी शब्दों का अलग होना स्वाभाविक है ।

6.4.3. उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

हिंदी तथा मराठी उपन्यास आदिवासी-जीवन पर केंद्रीत उपन्यास होने के कारण इन में अरबी, उर्दू तथा फारसी के शब्द दृष्टिगोचर होते है । फ़ुरसत, जागीरदार, इंतज़ार, बुज़ुर्ग, पुरख़ा, वाक़ई, पुश्तों, दखलंदाजी, रियासत, अफ़सर, हरक़त, फ़रमाईश, ख्य़ाल, साहब, जिद, बकरा, लकड़ी, छोरा, ख़ेद, इशारा, आदि (धूणी तपे तीर),हिसाब, साले, गालियाँ, इलाज, सवाल, जुलुम, जिद, साहब, मशिद, शिकार, इन्तजार, इम्तेहान, ख़ून, सदियों, अक्सर आदि (कोळवाडा) ।

अफ़सर, ईनामी, हुजूर, आबादी, हुकुम, निहाल, साहब, चीज़, नज़र, तरकारी, ख़ुमारी, फोरौती, दारोगा, अख़बार, खुशामद, इशारा, ख़ता, अनुमान, निजात, ज़्यादा, ख़ुद, ख़ाया, हुलिया, कोसों, जोख़िम, ज़ख्मी, काइयाँ, तिज़ोरी, सड़क आदि (जहाँ जंगल शुरू होता है ।), मादरच्योद, लफ़डे, साले, भोसड़ीका, बेफ़िक्रिर, ज़ादू, बटवारा, जमादार, तहसीलदार, हुकूम, झिंदाबाद, हरामखोर, कबूल आदि (एका नक्षलवाद्याचा जन्म) ।

शौकिया, परवर दिगार, तकदीर, बदहवासी, जद्दोजहद, मोहताज, इलाज, बैखोफ, तारीफ, गिरोह, खुशफहमी, अख़बार, इन्तजार, गाली-गलौच, तौहीन, कफ़न, हिफाजत, शान, शौकत, जहीन, शहीन, लिहाज, दीगर, खारिज, काबिलियत, जल्लाद, माहिर, मैयत, हौसला, अफजाई, ताकीद, तोहफा, नायब, लियाकत, मुकममम्ल, फजीहत, तजरूबा, तकलीफजदा, रहम आदि (अल्मा कबूतरी), जवानी, बेवारस, ईज्जत, मुकाबला, चाबुक, साला, छोकरी,

ईलाज, इरादा, मुकाबला, हिसाब, जिंदाबाद, शहनशहा, पसीना, बरबाद, बीमार, छुपेरूस्तम, अब्रु, बिदा, जिंदगी, कहर आदि (टाहो)।

सहोदर, पुरख़ों, मुखिया, कबीला, बाँहों, जमींदार, बस्तीयाँ, बिसरा, साहिल, सहेलियाँ, झुँझलाहट, इजहार, विदाई, दिक़्क़त, दाम, तारीफ़, साहब, सन्तान, नायब-सजवाल, चरबी, ऐतराज, रियासत, गाली-गलौच, गवाहों, जुमना आदि (जो इतिहास में नहीं है), बेगमी, हुकुम, खजिना, जुलूम, पिता, तालेवार, कमजोर, शिकार, पोशाख़, ताक़द, शराब आदि (हाकुमी)।

अल्फाज़, हफ़्ता, ग़लत, ख़ुद, ख़ून, महसूस, इलाक़े, शौक़, ख़ूब, ख़ुमारी, बाज़ार, फ़र्क़, आवाज़, रोज़गार, ज़्यादा, ग़ौर, फ़रमाना, गुलज़ार, साफ़, ग़रीब, दरख़्वास्त, ज़मीन, आवाज़, ख़ासियत, आख़िर, दिक़्क़त, हज़ार, गिरफ़्तार, बातफ़रोशी, वक़्त, गुज़र, ख़ास, ख़बर, मर्ज़ी, सफ़ाया, हरक़तें, आख़िर, नज़रें, हक़िक़तों, मज़मून, अख़बार, ख़बरें, क़िस्मत, ख़िलाफ, क़ानून आदि (ग्लोबल गाँव के देवता), मालूम, ख़मीस, रिद, बकरा, बुरा जानवर, लड़की, दुपेर, मटन, पकड़ना, तेज़, मोहरम, दुक़ान, दुनिया, गांड़, शराब, उध़ार, बाज़ार, बेपार, तेज़ी, नशा, इस्तेमाल, सालोंबाद, तुवर, फोकट, क़र्ज़ा, झूठ, नबाब, गँवार, बेवकुफ, कपड़ा, हवालदार, औलाद, कसम, मेहमान, पहचान आदि (झेलझपाट)।

ज़िंदगी, औलियों, हालत, इशारा, गुजारना, नाजायज, औलादों, बे-ख़बर, हुलिया, ख़ास, नज़र, ख़ून, इन्तजाम, हाजिरी, मुगदर, गालियाँ, दुरूस्त, दफ़्तर, दख़ल, अफ़सर, शौकीन, आबाद, अक़्सर, उसूलों, चबूतरा, मक़ान, लिहाजा, साहब, क़िस्मत, सदियों, दरारें, अहसास, गसलखाने, नाकामयाब, साबित, कोशिश, मिसाल, जमाना, बरकरार, मशहूर, मुस्कान, हिसाब, जमाने, नाजिर, रिहायशी, मुक़दमा, दरख़ास्त, गायब, हवाला, दास्तान आदि (गाथा भोगनपुरी), जुलूम, आक्रोश, ख़बर, झूठ, नाम रोशन, दंडेलशाही, हिसाब, दुनिया, फिकीर, बे-फिकीर, बरक़त, बहादूरी, पहलवान, साला, दुकानदार, हवालदार, फौजदार, ठाणेदार, चौकीदार, नशीबवान, साल, हुकूम, ब्याज, मजार, ड़र, ख़ारिज, मुलूक, फौज़, मौत,

हुजूर, इल्जाम, हाजिर, मुजरिम, दंगामस्ती, बदमाशी, मादरचोद, जेल, कतार, बेसावध, मुर्दा, दोस्त, दीवार, निशाना, सैतान, फत्तर, सलाम, अलेकु, मुसाफिर, खब-या, बकरी, खाई आदि (तंट्या)।

नज़र, अदायगी, मिन्नत, लुत्फ, जश्न, शैतान, जबाब, निगाहें, अजनबी, बेफ़िक्री, इतवार, बदबू, साहब, ख़ामख़्वाह, एहसान, वक़्त, गालियों, हलचाल, ख़ामोशी, नशीब, आज़ादी, तलाश, कोशिशों, दरख़्त, उदास, मनहुस, कब्र, ताज़गी, पस्त, नब्ज, कराहता, ढलान, बदन, जाहिर, कीचड़, वतन, हुक़्म, ख़त्म, नसों, हरकत, आबादी, खुशबू, जिंदगी, बेचैन, बर्तन, मुखातिब, ख़बर, आलम, बेबात, वसुली, लम्बे, अर्से, ख़ास, तन्हाई, रफ्ता-रफ्ता, उम्र, बिस्तर, बदमाशों आदि (जहाँ बाँस फूलते हैं), हिसाब, मजुर, कुली, रखवालदार, हुकूम, सालों, अवलाद, सज्जन, दरोडेखोर, कैदी, हवालदार, कबूल, ड़र, फिर्याद, दवाख़ाना आदि (पारधी)।

तकरीबन, दोपहर, वक़्त, गुज़ारना, आवाज़, कदर, बदबू, फ़र्श, बुजुर्गवार, नक्शे, बदतमीज़ी, करीब, पेशाब, नज़र, मज़ाक, मुश्किल, दिक़्क़त, अलावा, फ़र्क़, सिर्फ़, तेज़, रफ़्तार, गुज़र, इतमीनान, काफी, सब्जी, मुकाबलें, ख़ुद, तल्खी, ग़ायब, ताज़गी, दीवारें, तारीख़, दवाख़ाना, इलाज, कारोबार, हिदायत, ख़त, नक़्शा, ज़मीन, क़र्ज़, ख़तरा, दस्तख़त, ख़ूबसूरत, हज़ार, मज़ाक, ज़रूर, इंतज़ार, मुलाक़ात, क़िस्सा, अख़बार, ख़बर, ज़हर, ज़्यादा, आजादी, वक़्त, ख़त्म, ज़ाहिर, क़मीज़, ज़ख़ीरा, ताज़ा, गुंज़ाइश, उम्मीद, चीज़, मज़दूर, निस्तेज़ आदि (काला पादरी), दादागिरी, दुकानदार, हिसाब, साली, छिनाल, बदनामी, दवाखाना, तहसीलदार, मेहनत, नौकरदार, जवाब, तबेत, ख़बरदार आदि (ब्र)।

हिंदी और मराठी उपन्यासों में उर्दू, अरबी, फारसी के शब्द अधिकांश उपन्यासों में दिखाई देते है। हिंदी उपन्यासों के तुलना में ब्र, पारधी, हाकुमी, इन उपन्यासों में उर्दू, अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग कम दिखाई देते है।

6.4. प्रतीक एवं बिंब

बिंब का अविर्भाव कल्पना से होता है और बिंबों से प्रतीक का । बिंब विधान कला का क्रिया पक्ष है । जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिंब उत्थित होते हैं और जब पुन्हः पुन्हः प्रयोग के कारण किसी बिंब का निश्चित अर्थ निर्धारण हो जाता है तब प्रतीक का निर्माण होता है । अतः तात्विक दृष्टि से बिंब कल्पना और प्रतीक मध्यस्त है ।

डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम के अनुसार—"बिंब कल्पना और स्मृति का वह क्रिया है, जो शब्दों द्वारा रूप (चित्र) प्रस्तुत करके पाठक के मन को प्रभावित करता है । बिंब-विधायक कल्पना पुनरूत्पादक कल्पना होती है । कवि-अतीत की घटनाओं, स्थितियों और अनुभूत पदार्थों को उनके रंग ध्वनि, गति, आकार-प्रकार के साथ शब्द-चित्रों के रूप में उपस्थित करता है ।"[489]

रॉबिन स्किलटन के अनुसार—"ऐन्द्रियनुकूल भाव जागृत करने वाला एक शब्द है ।"[490]

एजरा पाउण्ड—"बिंब का तात्पर्य चित्रात्मक अभिव्यक्ति नहीं वरन् इसका संबंध विचारों के एकीकरण या समानुकूल मानसिक एवं भावनात्मक मिश्रण से है ।"[491]

डॉ. केदारनाथ सिंह ने बिंब को परिभाषित करते हुए लिखा है कि—"बिंब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है ।"[492]

---

[489]साहित्य संदेश, पृ.सं. 07.

[490] The Poetic Pattern, पृ.सं.90.

[491]Parammes and Division, 174.

[492]आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान का विकास, पृ.सं. 23.

ह्यूंग के अनुसार—“यह पदार्थों के आंतरिक सादृश्यों की अभिव्यक्ति है । इसका निर्माण ऐंद्रिय उत्तेजना से होता है ।”[493]

बिंब एवं प्रतीकों का महत्त्व कथ्य की आवश्यकता के लिए स्वीकारा गया है । भाषा में बिंब एवं प्रतीकों के बहुस्तरीय महत्त्व को बताते हुए राजेंद्र यादव ने उपन्यासकार, पाठक तथा कृति तीनों के लिए सहयोगी मानते हैं—“प्रतीकों की लाक्षणिक प्रतीक ने जहाँ गंभीर अर्थवत्ता को पकड़ने और उसके संप्रेषण के साधारणीकरण की दिशा में अनेक प्रयोग करने का गौरव दिया, वहाँ व्यक्ति को अनुभवों को तटस्थ होकर देखने की निर्वैयक्तिकता भी दी, अनुभवों से हटकर उन्हें दूसरे आदमी की निगाह से देखते हैं, उन्हें परिष्कार देते हैं और अनजाने ही यह ‘दूसरे की निगाह’ पाठक के साधारणीकरण की समस्या को भी हल कर देती । उनके अधूरे और नाकामी पन को पाठक अपनी कल्पना से कर लेता और जो कुछ उपलब्ध होता है वह उसे दृष्टि संस्कार देता है, उसके अपने राग बोध का अंग हो जाता है ।”[494]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में प्रतीक एवं बिंबों को हम देख सकते हैं । जैसे—“किसन सिंह ने दल्ली को यूं समझाकर अंदर कमरे में भेजा था । दल्ली के भीतर घुसने के पहले ही सुबेदार हिंसक जिनावर की तरह शिकार पर हमला करने के लिए तैयार बैठा था । दल्ली को देखते ही उसने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया ।”[495]उसी तरह का बिंब मराठी के ‘टाहो’ उपन्यास में है—“ती (पारू) धीर दरून आत गेली. प्यारेलाल लगेच दाराकडं आला. त्यानं आतून कडी लावली. तो जोर जोराने हसायला लागला. (पारू धैर्य से अंदर गयी थी । प्यारेलाल तुरंत

---

[493] https://hi.wikipedia.org/wiki/बिंब.

[494]एक दुनिया समानांतर, पृ.सं. 67-68.

[495]धूणी तपे तीर, पृ.सं. 345.

दरवाजा का कुंडी लगाते हुए जोर-जोर से हसने लगता है ।)"[496] इन दो उपन्यासों में आदिवासी लड़कियों पर होनेवाले बलात्कार का बिंब निर्माण किया गया है । किंतु 'धूणी तपे तीर' में सुबेदार बलात्कार करता है और मराठी के टाहो उपन्यास में सेठ-साहूकार बलात्कार करता है ।

हिंदी और मराठी उपन्यासों में प्रकृति के माध्यम से बिंब-प्रतीक निर्माण किया गया है । जैसे—"कोहरा छट गया था । धूप पर्वत पर नाचने लगी थी । दूरस्थ पेड़ों के साए गड्डुमड्डु हो कर घाटियों और टीलों पर गिर पड़े थे । उन्हीं की चाँप में पूरा झोपा गाँव पड़ा था । रात भर बदली व कोहरे का राज रहा था, इसलिए शीत कहीं न थी ।"[497]"माघापासून उन्हाचा पूर चढत होता. झाडाची पानं पिवळी धम्म झालेली. गळणारी पानं वा-यासंग भिरभिरत जमिनीवर विसावत होती. सळसळ करीत दरीतील झाड्यांच्या बोडख्यावर बसत होती. (माघमास से धूप चढ़ती जा रही थी । पेड़ के पत्ते पिले पड़ रहे थे । पत्ते हवासंग जमीनपर भिरभिरते हुए खाही के पेड़ों पर जा गिर रहे थे ।)"[498]"दोपहर हो चली । एक फर्लांग का घेरा बनाकर ये जंगल को खँगालने लगे-कॉम्बिंग ऑपरेशन ! जंगली पेड़ों के नीचे चौड़े-चकले पत्तों की झाड़ियाँ । लताएँ अभी छोटी थीं, पर नीचे कुछ भी साफ देख पाना मुश्किल था । अभी तो महज पहली बारखा का पानी मिल पाया है इन्हें । एक माह बाद क्या स्थिति होगी, जब तरह-तरह के खर-पतवार ढक लेंगे रही-सही जगह को ? बेतिया के जंगल घने हैं, इसलिए कि बेंत से बुने हैं ।"[499]"" इन उपन्यासों में प्राकृतिक बिंब निर्माण धूप, पेड़, पत्ते,जंगल, झाड़ियाँ, पानी, पर्वत, खाई आदि के

---

[496]टाहो, पृ.सं. 64.

[497]जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 92.

[498]झेलझपाट, पृ.सं. 01.

[499]जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 46.

माध्यम से किया गया है । किंतु हिंदी उपन्यासों में दिन तथा दोपहर के धूप का चित्रण है तो वही मराठी उपन्यास में माघमास के धूप का चित्रण किया गया है ।

गाथा भोगनपुरी में आदिवासियों को किस तरह फँसाया जाता है और उनके साथ कुत्तों से भी बदतर सलूक कियाजाता है । किंतु मराठी के ‘कोळवाडा’ उपन्यास में आदिवासियों ने अपने-आपको कुत्ते का प्रतीक देकर इरिगेशन साहब को डराते हैं । जैसे—“उनका अगर बस चलता तो आवेदनकर्ता के मुहल्ले के कुत्तों से भी ये रिपोर्ट माँगते कि क्या भई ये जनाब कही, रात को तीन बजे नींद से उठकर कुत्तों की तरह भौंकते तो नहीं हैं ।”[500]“आपल्या अन्यायाविरूद्ध लढा देण्याची उमेद त्यांच्यात आली व्हती. मग तो इरिगेशनचा सायेब आसो कि आणखी कोणाचा सायेब आसो. कुत्र्याच्या शेपटावर पाय देल्हा म्हणजे कुत्र झोंबणारच आसं समद्यांचं म्हणनं. तव्हा आपल्या शेपटावर पाय देणा-यांना ते सोडीत नसत . (अपने अन्याय के विरूद्ध लड़ने का हुनर उनमें आ गया था । इरिगेशन का साहब रहने दो या कोई अन्य साहब । सबका कहना है कि, कुत्ते के पूँछ पर पैर देने से कुत्ता काटेगा ही । तब अपने पूँछ पर पैर देनेवाले को वो कैसे छोड़ेगे ।)”[501]

हिंदी के ‘काला पादरी’ तथा मराठी के ‘हाकुमी’ उपन्यास में ईसाई धर्म के वर्चस्व की अनुभूति का बिंब दिखाई देता है । आदिवासियों ने धर्म परिवर्तन के पश्चात् जो भी श्रेष्ठ कार्य करते हैं तो वह केवल और केवल ईसाई धर्म में शामिल होने के वजह से । यही तथाकथिक समाज की धारणा रही है । जैसे—“वे हमें जीवन भर धूल का कीड़ा ही समझें, ही हैज़ टू रीकेग्नाईज़ अवर न्यू स्टैटस्, उसने कहा, हम लोग जब पढ़ लिख गये हैं, प्रार्थना का काम करते हैं, पूरी चर्च सम्हालते हैं, तो वे बार-बार हमारी बेगार के दिनों की जुगाली क्यों करते हैं

---

[500]गाथा भोगनपुरी, पृ.सं. 68.

[501]कोळवाडा, पृ.सं. 200.

?”[502]“देशाच्या इतर सर्व आदिवासी भागात-संस्थानात मिशन-यांच प्रस्थ होतं आणि जीवनावर चर्चचं नियंत्रण होतं. (देश के अन्य सभी इलाकों में मिशनरी संस्थानका प्रभाव था और उनके जीवन पर चर्च का नियंत्रण था ।)”[503] हिंदी उपन्यास के बिंब में ईसाई धर्म का वर्चस्व तथा आदिवासियों के प्रति उनका रवैया को दिखाया गया है किंतु मराठी उपन्यास में आदिवासियों पर चर्च का नियंत्रण मात्र को दर्शाया गया है ।

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासियों को शेर, चीता, जंगल का राजा तथा मछली आदि बिंबों द्वारा उद्धृत किया गया है । जैसे—“चीते की भाँति आँगन से बरामदे पर उछला था सिदो और हवा के झोंके की भाँति सहन पार कर घर से बाहर निकल आया था ।”[504]“जेलच्या भिंतीवरून तंट्यानं छलांग मारली आणि ते अंधारात मुसंडी मारून धावू लागले. न थांबता तीन घंटे ते पळत होते. फटफटता ते शिवाबाबाच्या दरबारात पोहोचले. (जेल के दिवार से तंट्या छलांग लगाकर अंधेरे में तेजी से भागने लगता है । न रूकते हुए तीन घंटे भागता रहा । सुबह-सवेरे शिवाबाबा के दरबार में पहुँच गया ।)”[505]“उन्हें नहीं पता था कि कबूतरा बालक मछली से ज्यादा तेज तैर सकता है । वे तो समझ रहे थे कि पानी के जीव-जंतु ही इस लड़के को चबा जाएँगे, लेकिन राणा इतना मुलायम कहाँ था ?”[506]

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ तथा ‘एका नक्षलवाद्याचा जन्म’ उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के प्रति बाप, दादा के उम्र के बुढ़े तथा पोलिस, सेठ, साहूकार, तहसीलदार, पटवारी, गार्ड आदि

---

[502]काला पादरी, पृ.सं. 46.

[503]हाकुमी, पृ.सं. 51.

[504]जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. 192.

[505]तंट्या, पृ.सं. 275.

[506]अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 83.

आदिवासी स्त्रियों को देखकर नाना प्रकार के कमेंट करते हैं और समयानुरूप शरीरिक मौज भी करते हैं । जैसे—"बाप-दादा की उम्र के थुलथुल, लेदहा, अधवयस्क मिश्राजी, सिन्हाजी, वर्मा, शर्मा, गुप्ताजी लोगों की हरक़तें अजीब थीं । कोई बेमतलब दाँत निपोर रहा, कोई फुसफुसा रहा, कोई लगातार खँखारे जा रहा । कोई पर्स निकालकर उसे दिखा-दिखाकर नोट गिन रहा था । सब उसे न जाने क्या समझ रहे थे ?"[507]

इसी प्रकार की समस्या मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में दिखाई देता है । जैसे—"काही वेळा गावावर संकट आले तर, रेंजर, तहसीलदार, जमादार अशा घाणेरड्या लोकांन बरोबर सक्तिने रात्रभर जोपावे लागत असे (गाँव पर संकट मँडराते समय कहीं बार रेंजर, तहसीलदार, जमादार जैसे गंदे लोगों के साथ नाइलाज से रात गुजारनी पड़ती थी ।)"[508]

6.5. लोकोक्ति एवं मुहावरे

सन् 1960 के बाद के उपन्यासों की भाषा को अधिक से अधिक विषय के निकट लाने में लोकोक्तियों और मुहावरों का बहुतायत प्रयोग होने लगा है । इसके प्रयोग में लेखक के स्पष्टीकरण को प्रचलित, प्रामाणिकता का बल मिल जाता है । लोकोक्तियों एवं मुहावरों के द्वारा गद्य लेखन की भाषा को एक मजबूत आधार मिलता है । इससे भाषा को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है । आज के लेखक पूर्व प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग कर रहे हैं तथ नवीन मुहावरों का निर्माण भी । लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है । वह 'गागर में सागर' के समान होता है । हिंदी और मराठी उपन्यासों में इस तरह लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।

---

[507]ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 70-71.

[508]एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 48.

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है । जैसे— 'काला अक्षर भैंस बराबर', 'कोई लाख सिर मारे', 'ईंट का जवाब पत्थर से', 'दाल न गलना','नाक कट जाना', 'सपना चकनाचूर होना', 'चित्त भी मेरी पट भी मेरी', 'आँखें दिखाना', 'पेट में दर्द होना', 'बस चलना' आदि ।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में लोकोक्तियों एवं मुहावरें— 'खून सवार होना', 'माथा मारना', 'गुहार नहीं लगना', 'चटख़ारे लेना', 'बुबक मरें विराने फिकरी', 'आँखों की रोशनी छिन जाना', 'पौ फटने से पहले', 'पापड़ बेलना', 'गुड़ गोबर होना', 'नाक का बाल बन जाना', 'दाँत पीसना', 'बाजार तहस-नहस हो जाना' आदि ।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में लोकोक्तियों एवं मुहावरें—'पोटली खोल देना', 'त्यौरियों में बल पड़ना', 'पाँव का फँदा बन जाना', 'होंठ सिल जाना', 'खिल जाना', 'टस से मस न होना', 'हँगडी मारना', 'मुँह पर थूकना', 'लकवा मार जाना', 'धड़कन रूख जाना', 'दम घुटना', 'मौत के घाट उतारना', 'पानी की तरह पी जाना', 'चप्पा चप्पा छान मारना', 'ढ़ह जाना', 'देह का खून तपना', 'आँखों में अंधेरा छाना', 'जी छटपटाना', 'बाल बाँका न होना', 'मुँह काला होना', 'दुनिया उलट जाना', 'जीभ पर लकवा पड़ जाना', 'उल्टी गंगा बहना', 'दिल दर्पण हो जाना', 'चेहरा पीला पड़ जाना', 'कूट कूट कर रोना', 'आँखें लाल करना', 'झण्ड़ा गाड़ना', 'दिल फिरना', 'बाजी मारना', 'धैर्य खण्ड खण्ड हो जाना' आदि ।

‘काला पादरी’ उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरें— ‘अचानक बाड़ आ जाना’, ‘माजरा क्या है’, ‘पश्चाताप करो और सुसमाचार पर विश्वास करो’, ‘इश्वर का भेजा हुआ बंदा’,‘सुके कुओं की मुंडेर पर दस्तक देना’ आदि ।

‘जहाँ जंगल शुरू होता है’ उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरें— ‘सीधी उँगली से घी नहीं निकलता’, ‘दूध का दूध पानी का पानी’, ‘बेटे के मरने का ग़म नहीं, जम के परकने का डर है’ आदि ।

‘जो इतिहास में नहीं है’ उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरें— ‘मेहनत माटी में मिलना’, ‘तीर की बाजी मारना’ आदि ।

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरें— ‘असुरिन का जानी पकावे धुसका और गुलगुरा हो’, ‘ऐसनो ई मन गंदा-शंदा रहेना, ई मुन के थुअल नी खाए के चाही’, ‘ओल को गलाना और कोल को समझाना कठिन है’, ‘मन बिल्लियों उछलने को कर रहा था’, ‘माथा पीटना’, ‘माँ पिछली रोटी खिलाती रही शायद’, ‘घिघियाना’, ‘मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के रूप बड़े-बड़े धब्बे हों’, ‘मन भीगे कंबल सा भारी होने लगता’, ‘कब खूँटा उखाड़ू और कब भाग निकलूँ’, ‘बिल्ली को दूध की रखवाली का भार’, ‘हू-ब-हू बिल्ली के गले में घंटीवाला मामला’, ‘कल का पैदा हुआ छोकरा भी आग ही मुतता था’, ‘अपनी ही मौत की ख़बर सुनी हो’ आदि ।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरे—'फूँक मारना', 'ज्ञानी होना', 'माता खराब करना', 'तलवे रगड़ना', 'मन उचट होना', 'शर्म के मारे आँखें नीचे होना', 'आग जलाते हुए देखना', 'मुँह से धुआँ उगालगा', 'गाँव का घसीटा कटरा', 'आँखों में अंगारे बरसना', 'मोहित हो जाना', 'आकाश का तारा बनना', 'कोई चारा न होना', 'दीन-हीन दशा होना', 'ज़मीन-आसमान का फ़र्क होना', 'पूर्णिमा का चाँद होना', 'टेढ़ी नज़रों से देखना', 'सरूर चढ़ना', 'कोहराम मचाना', 'पत्थर बन जाना', 'उलटे पाँव वाला भूत', 'बदन में झनझनाहट होना', 'भीतर का चोर', 'पाँव फूल जा', 'क्रोध का ज्वार', 'दाँत खट्टे करना' आदि। ''

'पारधी' उपन्यास में पात्रों के संवाद के माध्यम से लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'ज्याला कर नाही, त्याला डर नाही' (), 'चोराच्या उलट्या बोंबा' (सौ चुहे खाकर बिल्ली चली हज़ को), 'एक हाताने टाळी वाजत नाही' (एक हात से ताली नहीं बजती), 'मांजराला उंदीर घाबरतो' (जिसकी भैंस उसकी लाठी) आदि।

'कोळवाडा' उपन्यास में ग्रामीण भाषा में सीधे-सीधे न कहते हुए मुहावरों के माध्यम से कहते हैं। जैसे—'कोळयाला नही ग्यान आन् मुंगीला नही कान' (कोली नहीं ज्ञान और चिंटी को नहीं कान- यह मुहावरा अशिक्षित कोली समाज के लोगों के लिए प्रचलित है),'असतील शिते तर जमतील भूते' (अगर अपने दिन अच्छे हो तो सभी रिश्तेदार आस-पास मँडराने लगते हैं।), 'गरिबी आली तर लाजु नये आन् श्रीमंती आली तर माजु नये' (गरीबी में मेहनत करने से शर्माना नहीं चाहिए और जब श्रीमंती आती है तो उड़ना नहीं चाहिए)

'ब्र' उपन्यास में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग निवेदन के माध्यम हुआ है । जैसे—'वीस रूपयाची म्हैस तीस रूपयाचा दावा, तरी दावा सोडून गेली गावा' (बीस रूपये की भैंस तीस रूपये की रस्सी, फिर भी रस्सी से निकल गयी भैंस ।)

'काळी गाय बसत जाते न् तांबडी गाय चरत जाते' (काली गाय मतलब कोयला, तांबडी गाय का मतलब अंगार), 'पोटात नाही खायाले न् कुठलं इंलेक्शन द्यायाले' (पेट में नहीं खाना, कहाँ से चुनाव लड़ना), 'फुकटचं खानं न् मसणात जाणं' (फोकट का खाना, खुद की कफ़न बाँधना), 'चोरांच्याचं उलट्या बोंबा' (चोरी और सीना जोरी),'वाघ पेटं, पण वाघाची शेपूट नाय पेटं' (जंगल जल गया तो भी रास्ता नहीं जलता),'वळला तर सूत नाय तर भूत' (समझ गया तो ठीक नहीं तो भीख) ।

'झेलझपाट' उपन्यास में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है । जैसे—'माणसांना मारने आणि वाघांना तारणे' (मनुष्यों को मारना और जानवरों को जगाना), 'लहान तोंडी मोठा घास' (छोटी मुँह बड़ी बात), 'कुणात हिम्मत नहीं म्हणुन आपणाला किंमत नाही' (किसी में हिम्मत नहीं इसलिए हमें कीमत नहीं), 'मागं न पुळे... ज्याच्यासाठी कोण रळे' (जिसके आगे-पीछे कोई नहीं तो उसके लिए कोन रोयेगा), 'शिवीशिवाय ही जात (कोरकू) वळत नाही आणि दमदाटीशिवाय त्यांना काही कळत नाही' (गालियों के बगैर इस जात (कोरकू) को समझता नहीं और धमकी के बगैर उमझता नहीं), 'भाकडं जनावरं चा-याला महाग' (ठाँठ जानवर घास को महंगे), 'जान न पहचान.... मैं तेरा मेहमान', 'सटवाइले नाही नवरा अन् म्हसोबाले नाई

बायको' (सटनाई को नहीं पति और म्हसोबा को नहीं पत्नी), 'भाऊ भाऊ शेजारी अन् भेट नाही जल्मभरी' (भाई-भाई पड़ोसी और जीवनभर नहीं मिलोसी), 'अभागी गाई अन् करंट्या बाई' (अभागी गाय और करंट्या बाय (बद चरित्र महिला), 'कान असून बहिरे...डोळे असून फूटके आणि कष्ट करून फाटके' (कान होते हुए भी बहिरा, आँख होते हुए भी अंधा और मेहनत करके भी भिकारी)।

'तंट्या' उपन्यास में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'हातावर तुरी देने' (पेट पर लात मारना), 'अडली गाय आणि कुपाटीचे काटे खाय' (वक्त पर गधे को बाप बनाना), 'रिकामा भेजा सैतानाची वस्ती' (खाली दिमाग शैतान का घर), 'तोंड दाबून बुक्क्याचा मार' (मीठी मार मारना), 'घरोघरी मातीच्याच चुली' (घर-घर में मिट्टी का चुल्हा), 'धरावं तर चावतं आणि सोडावं तर पळतं' (पकड़ेंगे तो काटेगा और छोड़गे तो भागेगा), 'आपलेच दात आणि आपलेच ओठं' (अपने ही दाँत अपने ही होंठ), 'बुडत्याला काठीचा आधार' (डूबते को तिनके का सहारा)।

'टाहो' उपन्यास में लोकोक्तियों प्रयोग किया गया है। जैसे—'जवानीत पाय घसरणे' (जवानी के नशे में होश खो बैठना), 'पोटात गोळा येणे' (चिंतित होना), 'जीव कासाविस होणे' (डर के मारे तिलमिला जाना), 'आयुष्याला अर्थ नसणे' (जिंदगी निर्थक होना), 'मायेची भीख मागणे' (ममता की भीख माँगना), 'चेहरा आनंदाने फूलणे' (उत्साहित होना), 'अंथरूनाला चिटकणे' (बीमार होना)।

6.6. देशज भाषा के शब्दों का प्रयोग

हिंदी और मराठी उपन्यासों में देशज भाषा का प्रयोग बहुतायत हुआ है । अपने परिवेश, अंचल, परिस्थिति, जनजाति, संस्कृति, वातावरण, जीवन आदि से देशज भाषा का प्रयोग हुआ है । जैसे—

'गाथा भोगनपुरी' उपन्यास में उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड (भू-भाग) रखलुआ गाँव में रहनेवाले बंधुआ मजदूर तथा आदिवासियों का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास का ताना-बाना बुनते हुए लेखक ने देशज भाषा में बुंदेली बोली का प्रयोग किया है—'का बात ह् भाइ, कहे परेशान हो गये ?', 'माई बाप, दुहाई हो ।', 'अरे, अरे, हम कइस कर सकते हैं ये ।', 'तब यहाँ अउर कोई अदालत नहीं थीं हुजूर', 'क्यो होगा ई सब करके ?', 'देखो भइया, हमारी समझ में तो यह बात आ रही है कि रूपिया-बुपिया मिल जाने दो । अरे चार हज़ार रूपिया मिलेगा तो अपने पल्ले भी हज़ार दुई हज़ार पड़ ही जाएगा । तब कर्जा भी निकल जाएगा अउर ये भी बने रहेंगे । सिरकार की मर्जी भी पूरी हूई जायेगी ।', 'अरे सिरकार ने अब कर्जा-वर्जा सब मुआफ कर दिया है', 'कर्जा हमार दादा लिया दादूसिंह से । सिरकार कइसे मुआफ कर सकती है ।', 'साहब, ई किसान लोग हमको ढ़ाई बीघे जिमीन तो देते हैं, लेकिन ऊ में होता कुछ नहीं । जब खेती करते हैं, काम देते हैं । फिर फसल के बाद डंगर के माफिक छोड़ देते हैं ।', 'गज़ब हुई गवा ददुआ, गज़ब ।''अरे क्या हो गया ससुरे ?'

'जहाँ जंगल शुरू होता है' उपन्यास में बिहार के चंपारण जिले के 'थारू जनजाति' का चित्रण है । उपन्यास को गति देने के लिए देशज भाषा (खड़ी बोली तथा भोजपुरी) का प्रयोग

हुआ है । जैसे— 'हजूर, हमरा नाम पारबती है । जात से कहार हैं । इस गेस्ट हौस के चौकीदार हैं साहेब ! हमरा से जो सेवा बनेगा, उठा नई रखेंगे हजूर ।', 'ई बिसराम का जनाना है ।', 'ई त-अ डाकू मारने आए थे न्....?', 'डाकू भेंटाएगा तब तो ।', 'कौन चीज का बयपार ?'. 'तो जान लो, जिस तरीके से भी दू पैसा आए, उसी का बयपार', 'छिमा करो देबी । ई जनाना जात है । ई थोड़े मारा ।', 'एक पाप हो तो छिमा करे, पाप पे पाप किए जा रहा है ई ।','अरे देवी से कुछ छिप सकता है कभी ! तभी तो कहें, इतना किरोध काहे आया देवी को ।', 'आँखियाँ मूँदा हुआ था हुजूर, हाथ पकड़ा के ले जा रहे थे, गिर पड़े ।', 'हुजूर बाँध के रखते थे पेड़ से और आँख पे पट्टी ।', 'अइसे तो ठिकाता नहीं । ऊ तो धन्न भाग की बहू ने पता लगा लिया था पारबतिया से कि बनसप्ती देबी का करोध है, पांडेयजी तांतरिक झाजी को ले आइन, हियाँ हनुमानजी और विंधाचल भवानी का मनौती, जाप, पूजा...तब जाके... !'

'जहाँ बाँस फूलते हैं'उपन्यास में मिजोरम राज्य के लूशेई नामक आदिवासी समुदाय का जीवन चित्रण किया गया है । गैर मिजो(वाइ) से वार्तालाप करते हुए वे भोजपुरी, खड़ी बोली हिंदी तथा अपने समाज के लोगों से बात करते समय मिजो बोली का प्रयोग करते हैं । जैसे— 'तेरी पिंडलियाँ एकाएक इतनी मोटी क्यों होती जा रही है ?', 'ऐसे चल रही थी, जैसे गर्भनी हो । देखो कितना बड़ा पेट निकल आया है ।', 'थिया मामी मुले' (अभी वह बच्ची है ।), 'हुँह, मामी है ।', 'अ नुला लेक लेक मुले' (अब युवती होने ही वाली है ।), 'एङे-तिङे हेता ई लोकल म ?' (यहाँ क्यों आए ?), 'पू झा म ?'(अब क्या है ?), 'पू भुचेङा मु तुरिन ।' (भुचेङा से मिलने के लिए), 'अ ओमलो हेता' (वह यहाँ नहीं है), 'कपू अदेङ साइरो ओ' (श्रीमान, वह दूसरी बात करो

न), 'अ सुआल लुकतुक' (वह पक्का बदमाश है), 'नुपुई मान' (दहेज, दुल्हन की कीमत), 'कपू इ वेङदोन म ?' (पिताजी, आप आगे जा रहे है क्या ?), 'पुई ई दम म ?' (पुई तुम ठीक हो ?), 'क दमे, खोङे ई ओम ?' (मैं ठीक हूँ, तुम कहाँ हो ?), 'कन खोपुई तिमाई तुरिन इनसुह स्यामरो नुला', 'ऐ कपी, चेङखत मान नौपाडिन चिथ्लून पेरो ओ' (ऐ कपी, एक रूपए की टाफी बच्चों को दो)।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में देशज भाषा का प्रयोग प्रमुख रूप से दिखाई देता है। जैसे— 'नी मानु रे भुरेटिया, नी मानु.....', 'तो मैं भुट्टे सेकूं या गोविंद की बात सुनू ?', 'तेरा बाप भी तो सुलफी पीता था। तैने उसे क्यों नहीं रोका। मुझे आया है समझाने।', 'अरे डूंगर काका ! आज तो रीछड़ी ने खाया होता। भई बड़ी मुश्किल से भोलेनाथ ने जान बचायी।', 'गैबी करम ठोक ! जाने कहाँ से कबाड़ लाया', 'तो क्या सारे भुरेटिये उन जैसे ही होते हैं ?', 'तुम छोरियो, घर व जंगल के अलावा कुछ नहीं जानती !', 'कमली री, तू तो बहुत समझदार हो गयी', 'क्या बात है रे छोरों और यह कौन छोरी है तुम्हारे साथ ?', 'इस जरख से मुझे ब ऽ ऽ ऽ चा ऽ ऽ लो ऽ ऽ ऽ', 'मानगढ़ मारी धूणी है, भूरेटिया नी मानू रे...., नी मानू रे...', 'दल्ली ऽ ऽ ऽ ! मेंई बैर लेइ ली दो !!' आदि।

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में झारखंड के संथाल आदिवासियों की गाथा है। इस उपन्यास में संथाली के साथ-साथ भोजपुरी, खड़ी बोली हिंदी का भी प्रयोग हुआ है। जैसे— '...भर आँख देख लेगा तो दो गगरी हँड़िया का मद चढ़ जाएगा कपार पर', 'पलाशखाँड जाने

की रट छोड़ दे भाई ! लाली से चैती मेले में ही भेंट कर लेना ठीक रहेगा ।', 'आखिर का करेगा यहाँ रात भर ! न खान-खियान करेगा, न सुतने-पटाने का ठिकाना ।', 'अब का छाती फार के आपन करेजा दिखाएगा का', 'बोले तो... का पता कौन आवेगा कौन नईं... !', 'हाँ... कहता था ललमुँहों से नईं हारे हम' आदि ।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मध्यप्रदेश, बुंदेलखंड परिसर के मंडेरा खुर्द गाँव कबूतरा जनजाति का जीवन चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में ग्राम्य हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है । जैसे— 'लाज छोड़कर कहती हूँ मालक, उसकी जनानी तड़पती है', 'अगले साल बीस की हो जाएगी, अब तक तो दो बच्चा हो लेते । पर न गरभ, न गरभ की बूँद', 'माते, झाई-परछाई से पैदा नहीं होते बच्चा', 'री कदम, दिल से मत लगा, क्या मालूम कि वह मंसाराम नहीं मंसाराम की मजबूरी बोल रही हो', 'मंसा मालिक, कदम को थाने पर बुलाया है, जंगलियाँ की पहचान के वास्ते', 'जंगलिया की-सी मौत मरने के लिए बच्चे पैदा करो और पालो', 'रंडी, तभी से भुँज रही है, जब से पालना आया है', 'सालो बेचो दारू ! पिलाओ मद रंडियो', 'बेटा, अभी कुछ नहीं बिगड़ा, भैंसे खोलने का हुन्नर सीख । सगाई-संबंधवाले भी ऐसी कलाकारी सुनकर ही रूपते हैं' 'अरे, तू दिन-भर ही बाहर बैठा रहता है ! अल्मा के संग खेल लिया कर । ताश-कैरम, लूडो, साँप-सीढ़ी' आदि ।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में झारखंड के आदिवासी समुदाय का अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष और लगातार मिटते जाने की प्रक्रिया का संवेदनशील चित्रण है । इस उपन्यास में भोजपुरी, असुरी तथा संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

जैसे— 'आप लोग नय बुझिएगा हो ! ई सब पूजा-पाठ भगत-भगती की बात है, नय बुझाएगा', 'असुरिन का जानी पकावे धुसका और गुलगुला हो ! ऐसनो ई मन गन्दा-शन्दा रहेना, ई मन के छुअल नी खाए के चाही', 'अऊर ऐसन धुसका, कचड़ी, प्याजी बुनिया का सुवाद तो आज तक भेंटबे नहीं किया था', 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन देखहिं तैसी', 'अब ई बबवा को का हुआ ? ऐतना दया-माया क्यों ?', 'ई छौंड़िन सबको जानते नहीं हैं हम ? इनमें से कौनो ऐसन नही है जो हमरी जाँघ के नीचे से नहीं निकली हो', 'त्रिया चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' आदि । हिंदी के 'काला पादरी' उपन्यास में खड़ी बोली हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा का बहुतायत प्रयोग हुआ है । इसलिए इस उपन्यास में देशज भाषा का प्रयोग दिखाई नहीं देता ।

जिस तरह हिंदी उपन्यासों में प्रमुख रूप से देशज भाषा का प्रयोग हुआ है, उसी तरह मराठी उपन्यासों भी देशज भाषा प्रयोग दिखाई देता है । किंतु मराठी उपन्यासों में क्षेत्रिय भाषा, मध्य मराठी, ग्राम्य-बोली तथा आदिवासियों की बोली का प्रयोग हुआ है ।

'टाहो' उपन्यास में जंगल तथा पहाड़ों पर निवास करनेवाले डोंगरगाँव के आदिवासियों का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में ग्राम्य बोली, मध्य मराठी तथा साधारण हिंदी का प्रयोग हुआ है । जैसे— 'पहाड्या सांग-तुया पोरगी पसंत हाय ?' (पहाड्या बोल-तुझे लड़की पसंद है ?), 'बापु मी तुमच्या पलिकडं कसी जाणार हाय रं !' (बापु मैं तुम्हारे आगे कैसे जाऊँगी रे !), 'दुसरं काय भी मांगा, पण पोरगं मांगु नगा' (दूसरा कुछ भी माँगो, लेकिन लड़का मत माँगो), 'ये सद्या तुया कां बा ची जमीन लागली हाय' (ऐ सद्या तेरे बाप की ज़मीन लगती है क्या), 'तु

समाजाचं लेकरू हायी. तुया धमण्यात समाजाचं रक्त वाहतीया' (तू समाज का लड़का है । तेरे धमनियों में समाज की लहू बहती है), 'साली तू घर क्यो गई थी ? तू मेरी रखेल है । तू ऊँची जात की थोड़ी है । मैं तुझे शाही कँरू! रखैल औरत मेरे घर आकर रहना चाहती हो !' आदि ।

'झेलझपाट' उपन्यास में कोरकू, ग्राम्य-बोली तथा उर्दू-हिंदी का प्रयोग हुआ है । कोरकू समाज के लोग आपस में कोरकू बोली में ही बात करते हैं किंतु जब गैर-आदिवासियों से बात करना हो तो उर्दू-हिंदी भाषा का इस्तेमाल करते हैं । जैसे— 'आम शिडू नुयेन ?' (तू पीता है क्या ?), 'हा s हा s! इंज नुयेन शिडू आमा साथो !' (हाँ s शराब पीता हूँ s!), 'हा s s अरं s s जांगडी ! इंज आमा साथो शिडू नुनू बां !' (हा s जांगड्या s s तुम्हारे साथ लूँगाना s), 'आम झिलू जिजुम्बा क्यूबान ?' (मटन खाएगी क्या ?), 'आम इंजगेन ब्याव डाडा बाकी ज्यूज ?' (बोल शादी करेगी क्या ?), 'इयान s लांबजाना बान् s हो ना s' (मुझे घरजवई होने का नहीं है), 'वोs दुकान की शिडू बहोत चक्कर लाती रेs s', 'ये कौन है सुअर का बच्चा ?', 'इसको रास्ता दिखाना पड़ेगा, रातदिन शराब पीता है', 'ये पेपर में लिखा है मेलघाटमें लालपरीका बेपार तेजीसे चल रहा है ! नशा के लिए बहुत लोक इस्तेमाल कर रहे है ! इससे आदिवासियोंकी हालत बिघड रही है ! ये कुछ नयी खबर थोड़ी ही है', 'गांsगांडीत घाला म्हना नोटा... पन' (नोटा गांsगांड में डाल लो... लेकिन) आदि ।

'हाकुमी' उपन्यास में गढ़चिरोली जिला, भामरागड़ के कांदोली गाँव के माडिया गोंड आदिवासियों का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में माडिया गोंडी बोली का प्रयोग हुआ है ।

जैसे— 'पेन्ना कबड पेन्ने कीयना गावले' (भगवान के काम भगवान ही करना चाहिए), 'ओस इरऊर आसी बाबाकू रेयीतोर ?' (बाप के सामने क्या बोलेगी वह ?), 'ओंग कितीना ?' (मुझ पर गुस्सा है क्या ?), 'नाकू माजी अन् ।' (मेरी गलती थी), 'मोद्दीताह आतीन' (बहुत मोठा हो गया), 'बेसके वातीन' (कब आया तू), 'रूपीना संगे निम्मा ये मरमींग कियना मत्ता' (तू ही रूपी के साथ शादी करना था) आदि । इसी तरह 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में भी गढ़चिरोली के कुटेर तथा आस-पास के अन्य माडिया गोंड समाज का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में माड़िया गोंड बोली तथा हिंदी का प्रयोग प्रमुख रूप से दिखाई देता है । जैसे— 'ई आम्मा गाडदी' (तेरी माँ की गधे), 'कोत्ता-कोत्ता sss रूंड नूर' (पैसे-पैसे दो सौ रूपये), 'साहेब हतो नेगाल पेंड़ा तका' (साहब गया शेर के गांड में), 'पेका, पुसूना भुमी बद बाजू मता ?' (बेटा, पुसू की जमीन किस दिशा में है ?), 'जंगल काय तुझ्या बापाचे आहे का ? भाडखाऊ । साल्यावर पिओर करतो भडव्या झेल मध्ये टाकतो, साले मादरच्योद', 'जंगल काय तुझ्या बापाचा आहे का ? गरीब आहेस तर मरा साल्यानों', 'साली मिलने दो वो छोकरी मार मार कर फाडू देगा उसकी च्यूतड', 'साले यहा जंगलमें कहा पानी मिलता, भोसडीका', 'क्यों बे कहा मर गया वो मादरच्योद' आदि।

'पारधी' उपन्यास में महाराष्ट्र के पारधी जनजाति की जीवन गाथा को प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास में ग्राम्य मराठी बोली में पारधियों के देहबोली का लकब (Tuning)दिखाई देता है । जैसे— 'वकिला ! चल ! जल्दी ! माझ्या चित्र्याला पोलीस धरून नेतील !' (वकील! चल ! जल्दी ! मेरे चित्र्या को पोलीस पकड़कर ले जाएँगे), 'दार उघड तुला शिकार आणलिया'

(दरवाजा खोल तेरे लिए शिकार लाया हूँ), ‘अरे, एवढं बक्षीस तुला घेऊन आलो. तू आमचा हिरमोड करतोस’ (अरे, तेरे लिए इतना बख्शीस लेकर आया हूँ, तू हमरा ही दिल दुखा रहा है), ‘वकिला, आता चोरीचा अन् भीख मागायचा कंटाळा आला बघं’ (वकील, अब चोरी करने का और भीख माँगने का जान पे आ गया देख), ‘ऑफिसात तुझ्या बापाचा काय आहे रं साल्या ? साल्या इथं चोरी करायला तुला काय मिळणार ?’ (साले ऑफिस में तेरे बाप का कुछ है क्या ? यहाँ चोरी करने के लिए क्या मिलनेवाला है साले ?) आदि ।

‘कोळवाडा’ उपन्यास में ग्राम्य मराठी बोली का प्रयोग हुआ है । जैसे— ‘बोल वाळय काय काम काहाढलंस ?, तरीपन,... घरात पो-हायला काही नही... चूल पेटली नही आसचना ?’ (बोल वाळया क्या काम निकाला ? तो भी,... बच्चों को खाने के लिए कुछ नहीं... चूल्हा जला नहीं ऐसा ही ना ?),‘तुम्हाला खाता-हागता बरं येतय’ (भला तुम्हें खाने-हगने आता है), ‘आतेच्याय... माला वाचता आलं आस्तं तर म्या कहाला तुह्याकडं देल्हं आस्तं... फोडा फोडा. माझ्याच पोराचंहेना तो थोडाच माला कापू खानारहे ?’ (अरे इसकी माँ... मुझे पढ़ने आती तो मैं तुझे क्यों देता था... फाडो फाडो मेरे ही लड़के के हैं न वह थोड़े ही मुझे काट कर खाने वाला है ?), ‘ओ सालू का बाप बहोत धिंगाणा करता है, लोगोंको गाल्या देता है... तुम्ही चला बरं... उसको जरा वळवून आनो’, ‘क्यों मुसलमानका चहा पेऊन तू बाटता है क्या ?’, ‘बोकड्या काटने को म्हणतोय, तो फिर काटो ना...’ आदि ।

'ब्र' उपन्यास में महाराष्ट्र के ठाणे, रायगढ़, पुणे, नाशिक, नंदूरबार, धुले, नांदेड, परभणी, विदर्भ तथा पश्चिम महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों के आदिवासी स्त्रियों का राजकीय जीवन चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में किसी एक क्षेत्र, भाषा, बोली को महत्त्व दिया नहीं गया है अपितु सारे आदिवासी क्षेत्र, भाषा, बोलियों का महत्त्व दिया गया है । इस उपन्यास में कोरकू, भील, कोंकणा, महादेव कोली, वारली, कातकरी,गोंड, माड़िया गोंड, ठाकर, आंध आदिजमातियों के बोलियों का प्रयोग नहीं किया गया है। बल्कि ग्राम्य मराठी तथा मध्य मराठी का ही प्रयोग हुआ है। जैसे— 'मंगा आजच्या दिवशीच्या सभेत तुमचा प्रश्न घिता यायचां नाही' (मंगा, आज की सभा में तुम्हारा प्रश्न उठा नहीं सकते), 'जर बायांनीच आऊत हाकायचे तर नवरे कशाला करायचे' (अगर हल स्त्रियों को हाकना है तो पुरुष से ब्याहना ही क्यों), 'साली... हलकट... कुणाच्या जीवावर उड्या मारतीस इतक्या ?... माझीच पोटगी खाऊन जगतेय आणि... रांड साली...' (साली... हलकट... किस के दम पर इतना उचल रही है ? मेरे ही पोटगी (भरणपोषण) से जीती है और....रांड साली...), 'तू तठं कायला जेली एकली ?' (तू वहाँ अकेली क्यों गयी थी ?) आदि।

'तंट्या' उपन्यास में मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र के सतपुडा, पर्वतीय जंगल के भील आदिवासी समुदाय का इतिहास तथा जीवन का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में भीली भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है । अपितु भील्ली भाषा के शब्दों के बलभूते उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है । जैसे— 'काय ही जिनगानी हाय ? जनावरांवानी खेतात राबायचं, वखत नाय, कशाची सूद नाय. बैलासंगं माती वढायची. आन् ह्ये पोट... दीड ईतभर पोट म्हणून पाटलापूढं हाथ पासरायचे' (क्या जिंदगी है ? जानवरों जैसा खेत में काम करने का, किसी चीज़

की समय न होश। बैलों की तरह मिट्टी ढोने का। और यह पेट... डेढ़ (पंजा) पेट होने के कारण पटेल सामने हाथ फैलाने पड़ते है), 'भुखाचं पोरगं गचकलं, जी s मालक. नदीथडीला खेकडं धराया गेल्तं गवतात किरकुडं चावलं अन् तिथंच पडलं.' (भुखा ही बच्चा मर गया, जी s मालिक। खेकड़े पकड़ने नदी किनारे गया था, साँप काटने से वही पर गिर पड़ा।) आदि।

उपसंहार

हिंदी तथा मराठी उपन्यास विधा अपने उद्‌भव से लेकर एक शताब्दी पूर्ण कर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुकी है । इस कालावधि में हिंदी तथा मराठी उपन्यास इतनी प्रगति कर ली है जितनी यूरोपीय उपन्यास विगत चार सौ वर्ष में नहीं कर पाया । हिंदी तथा मराठी कथा साहित्य में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके अध्ययन के आधार पर शिल्प एवं आकार की दृष्टि से समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में युगांतकारी परिवर्तन दिखाई देता है । साहित्य को समाज का दर्पण संभवतः इसलिए कहा गया है कि उसमें समाज के सभी वर्गों और उसकी स्थितियों का वर्णन दिखाई देता है, किंतु साहित्य सिर्फ प्रतिबिंबित नहीं होता, उसमें केवल समाज की यथास्थिति नहीं होती अपितु साहित्यकार समाज के अलावा समग्र प्रकृति को भी प्रतिबिंबित करता है । उपन्यास में विघटित मूल्यों और मान्यताओं को ग्रहण किया जाता है । समकालीन जीवन मूल्यों को स्पष्टतः स्वीकारने की क्षमता तथा दृष्टिकोण की नवीनता इन उपन्यासों की विशेषता है ।

समकालीन हिंदी तथा मराठी उपन्यासकारों ने उपन्यास साहित्य के प्रवृत्तिगत परिवर्तनों को पार कर उपलब्ध के सोपान पर पहुँचाया । आधुनिक दृष्टि के अंतर्गत उपन्यासों की गतिविधियाँ, दिशाएँ, विशेषण, विवेचन, मूल संदेश तथा सर्वेक्षण निष्ठापूर्वक किया है । हिंदी एवं मराठी उपन्यासकारों ने भिन्न-भिन्न आदिवासियों के जीवन को चुनकर उपन्यास का निर्माण किया है । समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आदि स्थितियों की नवीन निष्पत्तियों के आलोक में मानव संबंध, जीवन मूल्य को समझने-सुलझाने के अपने प्रयत्न में समकालीन उपन्यासकार अपनी क्षमता के अनुपाठ को पूरा किया है ।

उपन्यास के क्षेत्र में एक नयी परंपरा के साथ एक यथार्थ परक रचना का धैर्य इन उपन्यासकारों में है । एक सार्थक सक्रियता की दृष्टि से बीसवीं सदी के अंतिम दशक तथा इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का महत्त्वपूर्ण स्थान है । हिंदी एवं मराठी उपन्यासों में संजीव ने 'जहाँ जंगल शुरू होता है', रणेंद्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता', बाबाराव मडावी ने 'टाहो', विलास मनोहर ने 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' आदि उपन्यास लिखकर समाज के दुख-दर्द का बयान दर्ज़ किया है । इस सदी के प्रतिष्ठा उत्पन्न करनेवाले प्रसिद्ध रचनाओं में हरिराम मीणा का 'धूण तपे तीर', गोपाळ गवारी का 'कोळवाडा', शंकरराव खरात का 'पारधी', श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' जैसे उपन्यास विषय वस्तु की दृष्टि से समाज को पथ प्रदर्शन ही नहीं, यथार्थ से गहरी संस्कृति के कारण अभिव्यक्ति की नवीनता, समाजिक यथार्थ के प्रति नई आस्था, परिवेश के प्रति अधिक जागरूकता, अनुभूति की उसकी तीव्रता से अंकित करना, मानवीय संबंधों के परिवर्तित संदर्भ को उजागर करना आदि ।

आदिवासी-जीवन पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि, आदिवासी वह समूह है, जिसकी एक विशिष्ट भाषा,संस्कृति, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था और परंपराएँ हैं । आदिवासी-समाज की विशेषताएँ देखते हुए यह ज्ञात होता है कि यह लोग सामूहिकता में जीते हैं । इनकी भाषा संस्कृति, रीति-रिवाज सब कुछ मुख्यधारा के समाज से भिन्न है । स्त्रियाँ और पुरूष मिलकर युद्धों में भाग लेते रहें है । इसका उदाहरण हम हिंदी के 'जहाँ जंगल शुरू होता है' और मराठी के 'टाहो' उपन्यासों में देख सकते हैं । आदिवासियों के संस्कृति पर तो अंग्रेजों के समय से हमले हो रहे हैं, लेकिन आज के इस भूमंडलीकरण के दौर में इनपर हमले और भी तेज कर दिए हैं ।

वर्तमान समय में इनकी स्थिति और भी बदतर होती चली जा रही है । आजादी के बाद सरकार की विकास नीतियों ने आदिवासियों को पूरी तरह से उजाड़कर रख दिया है । आदिवासियों की संस्कृति संतोष की संस्कृति है, जब कि मुख्यधारा समाज की संस्कृति भोग विलास की संस्कृति है । अपने इसी भोग विलास के कारण आदिवासी क्षेत्रों की खनिज संपदा का दोहन इस प्रकार किया जा रहा है कि सरकार तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ लाभ अर्जित कर रही हैं तथा आदिवासियों को आज भी अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ रहा है । आजादी के इतने वर्षों बाद भी उनकी स्थिति ज्यों की त्यों ही बनी हुई है । उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है । वर्तमान विश्व की पूँजीवादी सोच की वजह से वे बदहाली का जीवन जीने पर मजबूर हैं ।

प्रस्तुत शोध-कार्य में आदिवासी-जीवन से संबंधित उपन्यासों का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण के इस बढ़ते प्रभाव ने मानव जीवन को काफी प्रभावित किया है जिससे आदिवासी-समाज भी अछूता नहीं रहा है । उनका सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा पारिवारिक ढाँचा क्षतिग्रस्त हो रहा है । सरकार की विकास नीतियों के कारण आदिवासियों की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही हैं । उनके परंपरागत रीति-रिवाजों का लोप हो रहा है तथा उन्हें अपने मूल निवास स्थानों से निकाल कर बाहरी समाज के साथ तालमेल बिठाने में मुश्किल पैदा हो रही हैं । यह उनके जीवन शैली के ऐसे पक्ष है, जिनका सशक्त उदाहरण हमें समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में मिलता है । आदिवासी इस देश के मूलनिवासी हैं, लेकिन सरकार उनके सामाजिक-जीवन को बेहतर बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं कर रही है ।

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में आदिवासियों के जीवन से संबंधित ज्वलंत समस्याएँ आई हैं । इस पर विचार-विश्लेषण करते हुए हम कह सकते हैं कि सरकार अपने हित के लिए आदिवासियों के क्षेत्रों का जिस निर्ममता से दोहन कर रही है उसकी वजह से इनके क्षेत्रों में विस्थापन, बेरोजगारी, धर्मांतरण, पलायन, यौन उत्पीड़न, चोरी-डकैती आदि समस्याएँ उत्पन्न

हुई हैं । इन उपन्यासों में आदिवासियों की समस्याएँ अधिक ईमानदारी के साथ व्यक्त हुई हैं । पहले इनकी समस्याओं को इतनी समग्रता से नहीं उठाया गया था जितना की अब उठाया जा रहा है क्योंकि समय के साथ-साथ इनकी समस्याएँ भी बढ़ गई हैं । भूमंडलीकरण के इस युग में मूलनिवासियों की समस्याओं में बढ़ोत्तरी हुई है जिसे हम हिंदी एवं मराठी उपन्यासों में देख सकते हैं । आदिवासी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करते हुए भी दिखाई दे रहे हैं । आज आदिवासियों के समक्ष उन्मूलन तथा अनुकूलन का संकट मंडरा रहा है । कुछ उपन्यासों के शीर्षक ही उनकी समस्याओं को अभिव्यक्त करते हैं । जैसे 'ग्लोबल गाँव के देवता' एवं 'टाहो' उपन्यास में भूमंडलीकरण के इस युग में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सरकार के सहयोग से भारत में खनिज संपदा को लूटने के लिए कैसे अपने पैर जमा रही हैं उसकी ओर संकेत करता है । 'जहाँ जंगल शुरू होता है' और 'पारधी' उपन्यास में चोरी-डकैती की समस्या का चित्रण किया गया है । 'जो इतिहास में नहीं है', 'धूणी तपे तीर', 'तंट्या' उपन्यासों के शीर्षक आदिवासियों से संबंधित कई संघर्ष, आंदोलन तथा ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, जिसे आज तक किसी ने भी समग्रता से सामने लाने का प्रयास नहीं किया है ।

'काला पादरी', 'हाकुमी' तथा 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यासों में आदिवासियों के धर्म की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है । आदिवासियों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य के अवसर प्रदान कर बदले में उन्हें अपने 'आदि धरम' छोड़कर, धर्मांतरण के लिए बाध्य किया जा रहा है ये उपन्यास उसका जीवंत दस्तावेज हैं ।

समकालीन हिंदी और मराठी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन-संबंधित समान एवं विषम बिंदु परिलक्षित होते हैं जो निम्न हैं ।

- हिंदी और मराठी उपन्यास की निर्मिति का कालखंड समकालीन होने के वजह से उनकी समस्याएँ भी समान है । इन उपन्यासों में आदिवासियों के जीवन में दरिद्रता, भुखमरी,व्यसनाधिनता, धर्मांतरण तथा गरीबी आदि दिखाई देती है ।
- प्रत्येक आदिवासी की स्वतंत्र संस्कृति परिलक्षित होती है । उदा. असुर-संस्कृति, माडिया-गोंड-संस्कृति, कोरकू-संस्कृति, भील-संस्कृति, महादेवकोली-संस्कृति आदि ।
- विवेच्य उपन्यासों में पुलिस, गार्ड, रेंजर, ठेकेदार, साहूकार, जमींदार, तहसीलदार, प्रशासकीय अधिकारी, शासन, अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार का चित्रण किया गया है ।
- शिक्षा के क्षेत्र की वास्तविक दशा तथा दुर्दशा को विवेच्य उपन्यासों में केंद्रीय विषय के रूप में रेखांकित किया गया है । उदा. 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'टाहो', 'कोळवाडा', 'अल्मा कबूतरी', 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' ।
- वर्तमान समय के आदिवासियों में शिक्षा की जनजागृति तो हुई है किंतु उनकी सबसे बड़ी समस्या भाषा की रही है ।
- अंधश्रद्धा, अघोर-प्रथा, भूत-प्रेत, डायन-प्रथा, जादू-टोना, देवी-देवता का प्रलोभन आदि प्रथाओं का प्रभाव हिंदी एवं मराठी उपन्यासों में दिखाई देता है ।
- हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में घोटुल, रेलॉ को अत्याधिक महत्त्व दिया गया है । आदिवासी-समाज में लड़की को अपने मनपसंद जीवनसाथी चुनने का अधिकार दिया जाता है । विवाह से पहले ही लड़कियाँ यौन-संबंध (अपने ही कौम से) बना सकती है किंतु विवाह के पश्चात अन्य पुरूषों से यौन-संबंध समाज में मान्य नहीं है ।

- आदिवासियों की बहुत सारी समस्याओं का निराकरण जात-पंचायत में ही किया जाता है । किंतु कुछ निर्णय मानव हित के नहीं दिखाई देते हैं । (उदा. 'टाहो' उपन्यास की मैना, 'जहाँ बाँस फूलते हैं' की जोरमी, 'एका नक्षवाद्याचा जन्म' का जुरू ।)
- विवेच्य उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश को भी प्रधान विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया है । (उदा. 'काला पादरी', 'ब्र', 'गाथा भोगनपुरी', 'हाकुमी', 'टाहो', 'अल्मा कबूतरी', 'तंट्या', 'जो इतिहास में नहीं है' ।)
- प्रमुख रूप से आदिवासियों का जीवन प्रकृति पर ही आधारित है । उनकी आस्था भी इसी पर टिकी हुई है । वह जंगल, पेड़, पहाड़, सूर्य, चंद्र, नदी, नालों, जानवर आदि को अपना आराध्य मानते हैं ।
- हिंदी एवं मराठी उपन्यासों में आदिवासी-स्त्री अधिक सक्षम दिखाई देती है ।
- हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में आदिवासी शासन के विरोध में लड़ते हुई दिखाई देते हैं ।
- हिंदी एवं मराठी के कुछ उपन्यासों में बहुत ही कम पात्रों को लिया गया है । (उदा. 'काला पादरी', 'झेलझपाट', 'पारधी' ।)
- विवेच्य उपन्यासों में छोटे-छोटे संवाद, पल्लेदार (लंबे) संवाद, नाटकीय-संवाद, हास्यपरक-संवाद, भाव प्रधान-संवाद, सरल-संवाद, अश्लील-संवाद, आदि संवाद प्रकारों का प्रयोग किया गया है ।
- हिंदी और मराठी के समकालीन उपन्यासों ने अपनी औपन्यासिक-रचनाओं में वैचारिक पक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है ।
- विवेच्य उपन्यासों के अंतर्वस्तु अलग-अलग परिलक्षित होता है । प्रत्येक उपन्यासकार का सामाजिक जीवनानुभव होने के कारण अंतर्वस्तु भी अलग है ।

- हिंदी और मराठी उपन्यासों का रूप भी अलग-अलग नज़र आता है । क्योंकि सबकी अपनी-अपनी भाषा, लोकोक्ति, मुहावरे, बिंब, प्रतीक अलग-अलग हैं ।
- हिंदी और मराठी उपन्यासों में हिंदी-मराठी भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी तथा आदिवासी बोलियों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग दिखाई देता है ।
- विवेच्य उपन्यास के उपन्यासकारों ने भौगोलिक क्षेत्रानुरूप लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग किया है ।
    - **समकालीन हिंदी और मराठी आदिवासी उपन्यासों में साम्य की तरह कुछ वैषम्य भी नज़र आता है । दोनों भाषाओं के उपन्यासों में वैषम्य को हम निम्न रूप में देख सकते हैं ।**
- दोनों उपन्यासों में भाषा का वैषम्य दिखाई देता है । किंतु कुछ मराठी उपन्यासों में हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है ।
- हिंदी उपन्यासों में मराठी उपन्यासों की तुलना में शिक्षा को कम महत्त्व दिया गया है । मराठी के अधिकांश उपन्यासों में शिक्षा पर बल दिया गया है, और अधिकांश मराठी उपन्यासों के नायक शिक्षित हैं । साथ-साथ यह नायक अपने समाज को शिक्षित बनाने के लिए प्रयासरत दिखाई देते हैं ।
- विवेच्य उपन्यासों में चोरी, डकैती की समस्या है किंतु हिंदी के ‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ उपन्यास में थारूओं का दबदबा पुलिसवालों पर और मराठी के ‘पारधी’ उपन्यास में पुलिसवालों का पारधियों पर दबदबा दिखाई देता है ।
- आदिवासी हिंदी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों की राजनीति में सहभागिता न के बराबर हैं किंतु मराठी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों की राजनीतीक सहभागिता अधिक है । (ब्र)

➢ औपन्यासिक-कला की दृष्टि से हिंदी में अधिक प्रयोग मिलते हैं किंतु मराठी में इस प्रकार के प्रयोग कम दिखाई देते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जै सकता है कि आदिवासी-जीवन से संबंधित उपन्यासों के लेखकों ने आदिवासियों द्वारा देखे जानेवाले सपनों को तथा वह सरकार से क्या चाहते हैं। उनकी माँगे क्या हैं, उसको एक नये ढंग से प्रकट किया हैं । उन्होंने आदिवासी क्षेत्र की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का चित्रण जिस ढंग से किया हैं वह सराहनीय है। उनके जल, जंगल, जमीन तथा जानवर को वैश्विक समाज जिस तरह से ग्रस रहा है उसके चेहरे को यह उपन्यास उजागर करते हैं। जिस तरह से आज अंधाधुंध जंगल काटे जा रहे हैं तथा आदिवासियों की खनीज संपदा का दोहन किया जा रहा है, उसका नुकसान न केवल आदिवासियों को बल्कि हम सबको भुगतना पड़ सकता है। यही संकेत हमें हिंदी तथा मराठी आदिवासी उपन्यासों में दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

I.आधार ग्रंथ सूची

अ.क्र.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक	वर्ष
1.	अल्मा कबूतरी	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	2000
2.	एका नक्षलवाद्याचा जन्म	विलास मनोहर	श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे	1992
3.	काला पादरी	तेजिंदर	नेशनल पेपर बैक्स, दिल्ली	2002
4.	कोळवाडा	गोपाळ गवारी	मयुरवृत्त प्रकाशन, नाशिक	2004
5.	गाथा भोगनपुरी	किशोर कुमार सिन्हा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	1986
6.	ग्लोबल गाँव के देवता	रणेंद्र	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली	2009
7.	जहाँ बाँस फूलते हैं	श्रीप्रकाश मिश्र	पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद	1997
8.	जंगल जहाँ शुरू होता है	संजीव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	2000
9.	जो इतिहास में नहीं है	राकेश कुमार सिंह	भारतीय ज्ञानपीठ,	2005

			नई दिल्ली	
10.	झेलझपाट	मधुकर वाकोडे	देशमुख आणि कंपनी, पुणे	1988
11.	टाहो	बाबाराव मडावी	मिलिंद प्रकाशन, वर्धा	1998
12.	तंट्या	बाबा भांड	साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद	2001
13.	धूणी तपे तीर	हरिराम मीणा	साहित्य उपक्रम, दिल्ली	2008
14.	पारधी	शंकरराव खरात	मिनल प्रकाशन, कोल्हापुर	1997
15.	ब्र	कविता महाजन	राजहंस प्रकाशन, पुणे	2005
16.	हाकुमी	सुरेश द्वादशीवार	श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे	1989

II. सहायक ग्रंथ सूची

अ.क्र.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक	वर्ष
1.	काव्य के रूप	डॉ. गुलाबराय	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली	1950

2.	आदिवासी कौन	सं. रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 2008
3.	आदिवासी दुनिया	हरिराम मीणा	नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली	प्र.सं. 2013
4.	आधुनिक साहित्य	आ. नंददुलारे वाजपेयी	भारत भाण्डार, इलाहाबाद	चतुर्थ सं. 1965
5.	आदिवासी साहित्य स्वरूप व समिक्षा	डॉ. विनायक तुमराम	सौ.जयश्री उपाध्याय प्रकाशन	1994
6.	आदिवासी साहित्य, स्वरूप व समस्या	प्रा.सुनिल पखाले/डॉ.प्रमोद मुनघाटे	अरूण पारगावकर	प्र.आ.2007
7.	आदिवासी लोक	सं. डॉ. शैलजा देवगावकर	स्मरणिका, 39 वे वि. सा. सम्मेलन, गडचिरोली	1986
8.	आदिवासी विकासाची साम्यवादी संकल्पना	खोपकर कृष्णा	वनवासी कल्याण केंद्र, मुंबई	2000
9.	आदिवासी विकास से विस्थापन	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 2008
10.	आदिवासींचे सण-उत्सव	डॉ. सरोजनी बाबर	महाराष्ट्र लोकसाहित्यमाला पुष्प 24 वे, पुणे	1983

11.	आदिवासीः साहित्य यात्रा	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 2008
12.	आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान का विकास	केदारनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	2016
13.	आधुनिक हिंदी काव्य में रूप वर्णन	डॉ. शिरोमणी 'होरिल'	ग्रंथालय प्रकाशन, अलीगढ़	संस्करण 2004
14.	आलोचना के मान	शिवदान सिंह चौहान	स्वराज प्रकाशन, दिल्ली	1954
15.	एक साहित्यिक की डायरी	मुक्तिबोध	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	2011
16.	एक दुनिया समानांतर	राजेंद्र यादव	राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि, दिल्ली	1971
17.	कहानी दर्शन	श्री भालचंद्र गोस्वामी 'प्रखर'	साहित्य रत्न भांडार, आग्रा	1954
18.	कुछ विचार	मुंशी प्रेमचंद	डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली	2011

19.	जनजातीय भारत	डॉ. ए.आर.एन. श्रीवास्तव	मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल	2004
20.	जंगलचे राजे	कुसुम नारगोळकर, वसंत नारगोळकर	गारगोटी	प्र.आ. 1955
21.	तौलनिक साहित्याभ्यासः तत्त्वे आणि दिशा	सं. चंद्रशेखर जहागीरदार	सौरभ प्रकाशन, कोल्हापूर	प्र. आ. 1992
22.	नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	2015
23.	नई कविताः पूनर्मूल्यांकन	कु. उषाराणी	ग्रंथायन प्रकाशन, अलीगढ़	1980
24.	परंपरा, इतिहास-बोध और संस्कृति	श्यामा चरण दुबे	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	2008
25.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत	डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	नया सं. 1992
26.	प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप	डॉ. रवि रंजन	मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद	प्र.सं. 1995.
27.	प्रदक्षिणा, खंड पहिला	अनिरूद्ध अनंत कुलकर्णी	आ. पा.	1997
28.	भारत की जनजातियाँ	शिवतोष दास	किताब घर,	प्र.सं.

			दिल्ली	1983
29.	भारतीय लोकगीतः सांस्कृतिक अस्मिता	डॉ. सुरेश गौतम	कबीर प्रकाशन, शहादरा दिल्ली	1998
30.	भाषा और समाज	डॉ. रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	ग्यारहवाँ सं. 2017
31.	भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास	डॉ. पुष्पपाल सिंह	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	2012
32.	मराठी कादंबरीः स्त्रीयांचे योगदान	डॉ. प्रमिला भिरूड सौ. उषा मुलाटे	मातोश्री प्रकाशन, अहमदनगर	प्र.आ. 2003
33.	मराठी कादंबरीः समाजशास्त्रीय समीक्षा	डॉ. रवींद्र ठाकूर	दिलीपराज प्रकाशन, प्रा.लि. पुणे	प्र.आ. 2007
34.	मराठी कादंबरीतील प्रादेशिकता	भास्करराव शेळके	स्नेहवर्धन पब्लिशिंग हाऊस, पुणे	प्र.आ. 1997
35.	मराठी वाङ्मयातील नवीन प्रवाह	सं. शरणकुमार लिंबाळे	मधुराज पब्लिकेशन, पुणे	1993
36.	मराठी लोकगीत स्वरूप-विशेष	डॉ. शरद व्यवहारे	किर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद	सु.आ. 2012
37.	लोक साहित्याचे स्वरूप	डॉ. प्रभाकर मांडे	गोदावरी प्रकाशन, औरंगाबाद	प्र.आ. 2009
38.	मराठी स्त्री गीते	डॉ. शरद व्यवहारे	प्रतिमा प्रकाशन, पुणे	प्र.आ.

				1991
39.	महात्मा फूले समग्र वाङमय	श्री धनंजय कीर डॉ.स.गं. मालशे	महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडळ, मुंबई	प्र.आ. 1969
40.	मुक्तिबोध रचनावली, भाग- 5	सं. नैमिचंद जैन	राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली	प्र.सं. 1985.
41.	लोकसाहित्य और संस्कृति	डॉ. दिनेश्वर प्रसाद	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्र.सं.1973
42.	लोकसाहित्य संपदा	ना. रा. शेंडे	नागपूर	1964
43.	वर्ग विचारधारा एवं समाज	सं. एन. के. महला	रावत पब्लिकेशन, जवाहरनगर, जयपुर	प्र.सं. 1994
44.	समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष	डॉ. अर्जुन चव्हाण	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	2002
45.	समकालीन कहानी युग बोध का संदर्भ	पुष्पपाल सिंह	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1986
46.	समकालीन मराठी रंगभूमी	डॉ. राजेंद्र नाईकवाडे, डॉ. राजन जायस्वाल	विजय प्रकाशन, नागपूर	2010
47.	साहित्य-साधना	देशपांडे मा.का.	कान्टीनेंटल प्रकाशन, पुणे	प्र.आ. 1961
48.	स्वातंत्र्योंत्तर हिंदी कथा-साहित्य और ग्राम्य-जीवन	विवेकी राय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1974

49.	हिंदी आलोचना के बीज शब्द	बच्चन सिंह	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	आवृत्ति 2018.
50.	हिंदी उपन्यासः उपलब्धियाँ	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	1970
51.	हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास	डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. सुमलता	पंचशिल प्रकाशन, जयपुर	2001
52.	हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास	डॉ. पारूकान्त देसाई	चिंतन प्रकाशन, कानपुर	प्र. सं. 2002
53.	हिंदी साहित्य का इतिहास	आ. रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारणी सभा, काशी	1929
54.	हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्त्व	रविंद्र भ्रमर	भगिरथी साहित्य मंदिर	1965
55.	त्रिशंकु	अज्ञेय	सरस्वती प्रेस, बनारस	1945
56.	The Novel and the People	Ralph Fox	Lawrence &Wishart Ltd	1979.

57.	Parammes and Division	Ezra Pound	New York	1918
58.	Tribal India	NadeemHasnain	PalakaPrakashan, Delhi	Reprint 2002

<u>III. पत्रिकाएँ</u>

1. अरावली उद्घोष, सं. डॉ. जनकसिंह मीणा, अंक-76, सितं-2007.
2. कथादेश, सं. हरिनारायण, अंक-1, मार्च-2003
3. इस्पातिका, आदिवासी विशेषांक, सं. अविनाश कुमार सिंह, जन-जून, 2012.
4. दैनिक लोकमत, दि-14 जाने, 2001
5. दैनिक सकाळ, दि-30 सितं, 2001
6. दैनिक सकाळ-प्रतिमा पुरवणी-पुस्तक परिचय, दि.30 सितं,2001
7. परामर्श, (त्रैमासिक), सं. प्रदीप गोखले, नवंबर-जनवरी, 2005-06
8. वसंत, सं. बालशंकर देशपांडे, फेब्रू,1993
9. समकालीन जनमत, अप्रैल, 2014
10. साहित्य संदेश,प्रतीक और बिंब का मनोविश्लेषण, जुलाई-अगस्त, 1967
11. हम सबला, सं. जुही जैन, जागोरी की द्विमासिक पत्रिका, सितं-अक्तू, 2008, मालवीय नगर, दिल्ली.

IV. कोश

1. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं. नवलजी, न. आ. 2012.
2. बृहत हिंदी कोश, कलिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, चतुर्थ सं. 1973.
3. मानक हिंदी शब्दकोश, रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1929.
4. समाजशास्त्र विश्वकोश, हरिकृष्ण रावत, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, 2009.
5. हिंदी साहित्य कोश, खंड-1 धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, पुनर्मुद्रण-2007.

V. वेब

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/बिंब.
2. www.youtube.com

मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडल संचलित,

देवगिरी महाविद्यालय, औरंगाबाद

हिंदी विभाग तथा

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

द्वि दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

१८ और १९ फरवरी, २०१२

प्रमाणपत्र

डॉ./श्री./श्रीमती तोंडाकुर लक्ष्मण पोतन्नर, केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैद्राबाद.

ने दि. १८ और १९ फरवरी, २०१२ को 'इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य : स्थिति एवं संभावनाएँ' विषय पर आयोजित द्वि दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष / विषय प्रवर्तक / आलेख वाचक / प्रतिभागी के रूप में सक्रिय सहभाग लिया, एतदर्थ यह प्रमाणपत्र दिया जाता है ।

आलेख शीर्षक : इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में आदिवासियों की स्थिति एवं संभावनाएं

डॉ. रंजना चावडा
संयोजक

डॉ. प्रदीप जबदे
प्राचार्य

NAAC Re-accredited 'A' Grade

ISO-9001:2008, आदर्श परीक्षा केंद्र, उत्कृष्ट शैक्षणिक संस्था पुरस्कार - २००१

Scanned by CamScanner

KANNUR UNIVERSITY

Department Of Hindi

Dr. P.K.Rajan Memorial Campus, Nileshwaram, Kasaragod (Dist) Kerala - 671314

ONE DAY NATIONAL SEMINAR

ON

IKKEESVEEM SADI KA HINDI SAHITHYA VIVIDH AAYAM

This is to certify that Mr./~~Mrs/Dr./Prof~~ ......Tandakuk.........Laxman..........Patanna.................

has participated in the one day National Seminar on "Ikkeesveem Sadi Ka Hindi Sahithya Vividh Aayam" organized by Department of Hindi, Kannur University on 29-08-2014 at Dr. P.K.Rajan Memorial Campus, Nileshwaram, Kasaragod Dt, Kerala. He/~~She~~ has presented a paper entitled....Hindi....Upanyas :..........

.Bhumandalikaran....Banam Adivasi sankat......*and contributed to the Success of the Seminar.*

Dr. K.Sangeetha
Co-ordinator (Seminar)
Dept. of Hindi, Kannur University

Dr. A.M.Sreedharan
Campus Director, Kannur University
Dr.P.K.Rajan Memorial Campus, Nileshwaram

DEPARTMENT OF HINDI
Nileswaram Campus
KANNUR UNIVERSITY

Prof.(Dr.) T.Sasidharan
Course Director, Department of Hindi
Kannur University

Scanned by CamScanner

REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

'हिंदी' तथा 'मराठी' उपन्यासों में आदिवासियों की समस्याएँ

सहा. अधि. तोंडाकुर एल. पी
हिंदी विभाग , सरस्वती महाविद्यालय, केज , जि. बीड.

भारत वर्ष बहुभाषी देश है । मराठी, गुजराती, कन्नड, मलयालम, तमिल, तेलुगु, उडिया, बांग्ला, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, सिंधी, हिंदी तथा उर्दू भारत वर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएँ हैं । ऐतिहासिक रूप में ये सभी भाषाएँ प्रधानतः संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा अपभ्रंष भाषाओं से जुड़ी हुई हैं। भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् भारत की आधुनिक भाषाओं का सम्मान बढ़ा है और उनके विकास की ओर ध्यान दिया गया है । आज प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों में विकसित हो रही हैं। उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया गया है। शिक्षा तो अपनी-अपनी भाषाओं में प्राप्त कर रहे हैं किंतु आदिवासियों की कोई एक भाषा नहीं है उनकी अपनी भाषा में शिक्षा नहीं मिल पा रही है । यहाँ एक महत्त्वपूर्ण काम तुलनात्मक साहित्य का दिखाई देता है। एक भाषा के उपन्यास को दूसरी भाषा के उपन्यास से तुलना करने से उनका संबंध गहरा हो रहा है। एक दूसरे की स्थिति को पहचान पा रहे हैं। इसी संदर्भ में दृष्टव्य है— 'हिंदी तथा मराठी आदिवासी उपन्यास' ।

पिछले कुछ दशकों से हिंदी और मराठी में आदिवासी उपन्यास लिखें जा रहे हैं पर बहुत ही कम । इन उपन्यासों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी। आदिवासी समाज का जीवन भीतर से जितना खुली है, बाहरी लोगों को वह बंद समाज ही लगता है। उनके सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अनुभव किये बिना उनका चित्रण करना कठिन है। हिंदी और मराठी में आदिवासी-जीवन के संदर्भ में कुछ गिने-चुने महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखें गए । जैसे— अल्मा कबूतरी, काला पादरी, जो इतिहास में नहीं है, धूणी तपे तीर, ग्लोबल गाँव के देवता, काला पहाड़, जंगल जहाँ शुरू होता है, गाथा भोगनपुरी तथा जहाँ बाँस फूलते हैं (हिंदी) । एकलव्य, एका नक्षलवाद्याचा जन्म, एनकाऊन्टर, जांभूळपाडा, मन्वंतर, वावटळ, कोळवाडा, भूक, हाकुमी, ब्र, पारधी, टाहो तथा तंट्या (मराठी)।

आदिवासियों के जीवन का कोई सार्वभौमिक स्वरूप बताया नहीं जा सकता । इन आदिवासियों में कुछ प्रमुख समानताओं के बावजूद प्रत्येक आदिवासी के अपने-अपने नियम हैं। अपनी-अपनी संस्कृति है, अर्थव्यवस्था तथा धार्मिक मान्यताएँ हैं। आदिवासी अपने पूर्वजों की परंपरा को अपनाते हुए चले आ रहे हैं। प्रमुख भारतीय जनजातियाँ इस प्रकार मिलती हैं— 1. संथाल- इनका मुख्य निवास बिहार का संथाल परगना है। ये पश्चिम बंगाल और अन्य क्षेत्रों में भी पाई जाती हैं। 2. भील- भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है। इनका प्रमुख केंद्र मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान है। 3. खस- उत्तर प्रदेश की महत्त्वपूर्ण जनजाति है। ये देहरादून जिले के जौनसर बाबर क्षेत्र में निवास करते हैं। 4. मन्नेरवारलू- महाराष्ट्र के नांदेड तथा अन्य जिलों में पायी जाती है। 5. थारू- उत्तर प्रदेश की प्रमुख जनजाति है। यह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में फैले हुए हैं। 6. नागा- नागा क्षेत्र में रहते हैं। 7. हो- जनजाति बिहारी व ओड़िसा में रहती है। आदिवासियों की अनेक जातियां कबीलाई जीवन शैली में अरणमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता के कारण आर्थिक अभाव में कंगाल बनी है। यह अज्ञानी, अनपढ़ और अंधश्रद्धालु होने के कारण इनका समाज में चारों ओर से शोषण होता है। इस संदर्भ में विनायक तुमराम कहते हैं— "वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति के गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन तथा अनुभव का शब्द रूप हैं।"[1]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की अनेक समस्याएँ हैं। जैसे— सामाजिक समस्या—भूक, दुःख, दारिद्र की समस्या, अंधविश्वास, प्राकृतिक आपदा, जल-जंगल-ज़मीन और जानवर की समस्या, व्यसनाधिनता, बेरोजगारी, निर्धनता, स्त्री-अत्याचार, प्रशासकीय समस्या— पुलिस, रेंजर, पटवारी, अधिकारी, गार्ड, तथा सेठ, साहूकारों, ठेकेदार, जमीनदार, भूमंडलीकरण की समस्या, अन्य गैर-आदिवासियों द्वारा शोषण आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है।

सभी हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सामाजिक समस्या में भूक का प्रादुर्भाव दिखाई देता है। भूक का मूल कारण आदिवासियों की दुःख और दरिद्रता ही है। हिंदी के अल्मा कबूतरी उपन्यास में कदमबाई, जंगलिया, राणा, अल्मा का दुःख परिलक्षित होता है। समाज उन्हें किस तरह अपमानित करता है और राणा को बालपण से ही उच्च समाज का शिकार बनना पड़ता है। राणा को नाजायज औलाद के

रूप में समाज ने जो वेदनाएँ पहुचायी हैं और जब वह स्कूल में जाता है तो मास्टर उसे नल का पानी तक पीने नहीं देता । कहता है—"तू नल को नहीं छुएगा । नल के आसपास भी देख लिया तो... याद रखना, यहाँ सिपाही आते हैं, पकड़वा दूँगा ।"[2]

इसी तरह की समस्या मराठी के पारधी उपन्यास में दिखाई देती है । चित्र्या की बीवी खारी जब बर्तन माँजने तथा पीने का पानी भरने के लिए सामाजिक नल पर जाती है तब एक उच्चवर्ग की स्त्री उसके बर्तन नाली में फेंककर उसे लाथों से भूनती है और कहने लगती कि— "ऐ भीकारीन, चोरी के बर्तन, यहाँ माँजने लायी है क्या ? तू नल को नहीं छू सकती ।"[3]

भूकमरी का चित्रण हिंदी के 'काली पादरी' उपन्यास में आया है । बिरई लकड़ा की मृत्यु के पश्चात हाहाकार मच जाता है । राज्य में पैलेस विरोधी सरकार है तो आपको पूछेगी नहीं, पर पैलेस का कोई आदमी आपको अस्पताल पहुँचाएगा । और अख़बार वाले, टी.वी. वाले, रेडियो वाले राजनीतिक फ़ायदा उठाने पहुँच जाते हैं । अपनी राजनीतिक रोटीयाँ सेंकने के लिए धर्म की नक़ाब ओढ़कर मानवता का पाठ पढ़ाया जाता है । जैसे— "सुनो, बिरई लकड़ा का परिवार अगर कन्वर्ट होता तो इस तरह भूख से नहीं मरता ।"[4]

मराठी के बहुतांश उपन्यासों में भूक की समस्या दृष्टिगोचर हुई है । प्रमुख रूप से 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' में भूक समस्या का विस्तृत विवेचन हुआ है । इस उपन्यास में सरकार के दमनकारी नीतियों से जंगल पर कब्जा करना, आदिवासियों को जंगल से बेदखल करना तथा जंगल कानून के तहत शिकारी पर पाबंदी लाने के वजह से ही भूक इनकी मुख्य समस्या बनी हुई है । भूक का चित्रण 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में इस तरह से किया— "सकाळी एक द्रोण आंबील तो प्यायला होता. त्यावर दिवस काढावा लागणार होता. घरात काहीच नव्हते थोडीशी आंबील होती ती मुलांसाठी ठेवली होती. (वो सुबह एक द्रोण (पत्ते की कटोरी) आंबील (गेंहू और ज्वार के आटे में ईमली तथा दही मिलाकर उसे पकाया जाता है उसके बाद जो पेय तैयार होता है उसे अंबिल कहते हैं ।) पीया था । उसी पर उसे दिन निकालना था । घर में कुछ भी नहीं था थोडीसी आंबील थी तो वह बच्चों के लिए रखी थी ।)"[5]

भूक का चित्रण 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में दिखाई देता है— "लोग सरेआम भूखों मर रहे हैं । पर हमारी सरकार के लिए यह ख़बर भी टाप-सिक्रेट है ।"[6] इसलिए 'हाकुमी' उपन्यास के उपन्यासकार ने भूक की व्याख्या एक लाईन में करते हुए कहा है कि— "भूक हे इथलं सार्वत्रिक वास्तव आहे. (भूक यहाँ का सार्वजनिक वास्तव है ।)"[7]

अंधश्रद्धा की समस्या आदिवासी समाज में कूट-कूटकर भरी हुई है । आदिवासी समाज अज्ञानतावश अंधश्रद्धा अपना लेते हैं । हिंदी के 'ग्लोबल गाँव के देवता' तथा मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' तथा 'हाकुमी' उपन्यास में खेत में फसल बहुत अच्छी आने के लिए मनुष्यों की बलि दी जाती है । जैसे— "दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के ख़ून में सानकर बिचड़ा डालने से फ़सल बहुत अच्छी होती है । इसलिए इस सीजन में मुड़ीकटवा लोग घूमते हैं ।"[8] "शेतात धानाचे भरघोस पीक येण्यासाठी देवीला लहान मुलाचा बळी देण्याची प्रथा त्यांच्या जमातीत आजही होती काहीवेळा पैशासाठी बापच आपली मुले मोठ्या शेतक-यांना देत असत. धानकापनीच्या वेळी मुले पळविणा-या टोळ्या फिरत असत (खेत में भरघोस फसल आने के लिए देवी को छोटे बच्चों की बलि देने की प्रथा आज भी स्थित है । कईं बार पैसों के लिए अपने बच्चों को बड़े किसानों को बेच देते हैं । धान कटाई के सीजन में बच्चें भगानेवाले टोळी पनपने लगती है ।)"[9] "जंगलालगतच्या जबरनच्या शेतात नेऊन त्या पोराचा पेरमानं बळी घेतला होता त्याच रक्त पिकाच्या आशेनं त्या शेतात शिंपडलं होतं. त्या रक्तात भिजवून घेतलेले लोखंडाचे खिळे गावो गावच्या कास्तकरांना विकले होते. असले खिळे शेतात पुरले तर पिक वाढतात असा लोकांचा समझ होता. (पेरमा ने जंगल में जबरन के खेते में लड़के को ले जाकर उसकी बलि दी थी । फसल अच्छी आने के लिए उसका खून खेत में सनाया (शिंपडने) था । उस खून में भिगोये हुए लोहे के कीले गाँव के कातकरों के बेचा था । वह कीले खेत में गाड़ने से फसल अच्छी आती है ऐसी लोगों की धारणा थी ।)"[10] "हजूर, बनस्पती देवी हैं, भटका रही हैं । डाकुओं की देवी हैं । कभी कोई रूप धर लेती हैं, कभी कोई । और ऊ दिन भी ऊ लड़की लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी । आँखों पर परदा न डाल देती हैं मैया !"[11] इस तरह से आदिवासी लोग अंधश्रद्धा में फंसे हुए हैं । लगभग सभी उपन्यासों उनकी अंधश्रद्धा का जिक्र किया गया है ।

व्यसनाधीनता आदिवासियों के लिए एक अभिशाप है । भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय है उनमें व्यसनाधीनता की समस्या व्याप्त है । इस व्यसनाधीनता को मिटाने के लिए 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गोविंद गुरू पाँच-सात किशोरों को लेकर समझाता है । पढ़ने लिखने के अधिक जोर देता है । किंतु वहाँ के लोग कहते है कि, राज के आदमी हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं और जागीरदार हमसे बिना मेहनताना बेगार कराते हैं । इसकी चिंता को जताते हुए वे कहते हैं— "हमारे आदमी दारू पीकर शरीर व माथा खराब करते हैं । अपनी औरतों व बच्चों को आये दिन तंग करते रहते हैं । यह बुरी आदत है । इनका विरोध हमें करना चाहिए ना ?"[12] इसी तरह व्यसनाधीनता की समस्या मराठी के 'ब्र' उपन्यास में दिखाई देती है । किंतु इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री सैनाबाई व्यवसनाधीनता के कारण दूबारा शादी करने से इन्कार करते हुए कहती है— "आता दुसरेपणीचा म्हणजे डोकरा नाहीतर दारूड्याच मिळणार त्याला

दारूला पैसे द्या आणि वर त्याचा मार खा कशाला पाहिजे ? (अब दूसरी शादी करने का मतलब है एक तो बुढ्डा नहीं तो शराबी ही मिलेगा। उसे शराब के लिए पैसे दो और ऊपर से उसका मार खाओ। काहे चाहिए ?)"[13]

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सबसे बड़ी कोई समस्या हैं तो वह है स्त्री–अत्याचार। एक ओर तो स्त्री को देवी, माता, धरती, जननी के रूप में दिखाया गया है और दूसरी ओर इन्हीं देवी, माता पर अन्याय, अत्याचार, बलात्कार के किस्से देखने, सुनने को मिलते हैं। इसी अन्याय, अत्याचार तथा बलात्कार का चित्रण करते हुए रजनी तिलक अपनी कविता 'औरत-औरत में अंतर है' में कहती है—

"शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटो पर।
छेड़ी जाती हैं दोनों ही बेशक
एक कार में, सिनेमा हॉल व सड़को पर
दूसरी खेतों, मुहल्लों में, खदानों में "[14]

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में उच्च वर्ण के लोग आदिवासी लड़कियों से अपनी वासना की भूक मिटाते हैं। एक ओर उन लड़कियों की शादी होने नहीं देते। जब मुश्किल से शादी हो भी गयी तो दो-चार साल में ही तलाक हो जाता है या फिर विधवा बन जाती है। जैसे— "घाँसी टोले में परित्यक्ता और विधवा बेटियों की बाढ़-सी आ गयी है। कसाइयों के हाथ में पड़ी गाय-सी ये बेटियाँ बार-बार पेट गिराने से असमय ही बूढ़ा जाती हैं। ये नवयुवती-वृद्धाएँ दुख-विषाद से स्याह चेहरा-देह ले जहाँ गुज़रती हैं, एक उदारी-सी छा जाती है।"[15] इसी तरह का अन्याय, अत्याचार मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में मिलता है। माडिया गोंड आदिवासी के सामने जान बूझकर कोई समस्या खड़ा कर दी जाती थी और उस समस्या को निपटाने के लिए आदिवासी स्त्रियों तथा बेटियों को पुलिस तथा रेंजर का बिस्तर गरम करते हुए रात गुजारनी पड़ती थी। जैसे— "…. नकरी रात्री कोठे गेली असावे ? जमादाराखाली झोपण्यासाठी तर नाही ? (नकरी रात में कहाँ गई होगी ? जमादार के नीचे सोने के लिए तो नहीं ?)"[16]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में खूमा कामी के बदन को देखने के बाद अपने आप को रोख नहीं पाता और उसके बदम पर कीचड़ पोतने लगता है। कामी उससे बचने की कोशिश करती है, चिल्लाती है लेकिन— "खूमा ने कीचड़ लगाते-लगाते उसे निर्वस्त्र कर दिया। मादरजात नंगी कामी फिसलकर उसके हाथ से बाहर आई और चिल्लाती भागने लगी। पर कितना भागती ? बाँसों की झुरमुट तक आते-आते खूमा ने उसे दबोच लिया।"[17] इसी तरह मराठी के 'कोळवाडा' उपन्यास में शिरप्या फशी को फंसाता है और अपना सिर ऊँचा करके गाँव में घूमते रहता है। लेकिन फशी जिंदगी से उठ जाती है। और इस समाज की एक धारणा है कि शादी से पहले किसी लड़के साथ जुगलबंदी कर ले तो वह समाज चरित्रहीन ठहराता है। जैसे— "फशीची मात्र कायम ची इज्जत गेली. तिला कोणी करीना (लग्न होईना) कारण काय तर म्हणं तीनं लफडं केलं व्हतं. (फशी की हमेशा के लिए इज्जत चली गयी थी। उससे शादी करने के लिए कोई तैयार नहीं है। क्योंकि वह लफड़ा की थी।)"[18]

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में एक बड़ी समस्या यह भी रही है कि सेठ, साहूकार, जमींदारों ने आदिवासियों की लूट, जमीन से बेदखली, उनके स्त्रियों पर अत्याचार, बलात्कार तथा रखैल के रूप में उनको रखा है। इसी तरह की समस्या 'गाथा भोगनपूरी' उपन्यास में दिखाई देती है। दादूसिंह के यहाँ जंगलियाँ की तीन पीढ़ियाँ मजदूरी करने में जाती है। जंगलिया, उसका बाप तथा उसके दादा ने दादूसिंह के यहाँ बीस रूपये कर्जा चुकाते आ रहे थे। "दादूसिंह ने इन सभी 'जंगलियों' को छुटपन से गुलामी करते देखा था। उसकी नज़र में ये लोग इन्सान नहीं थे। गुलामी करने पैदा हुए थे और गुलामी करने के ही लायक थे।"[19] इसी तरह की समस्या मराठी के 'तंट्या' उपन्यास में दिखाई देती है। साहूकार एवं जमींदार के पास अपनी जमींन छुड़ाने के लिए तंट्या, तंट्या का बाप-भाऊसिंग तथा तंट्या का दादा इन साहूकारों के पास गुलामी करते रहे है। "पोखरला भाऊसिंगचा बाप राहायचा. सावकाराकडं त्याचा वावरं गहाण पडलं होतं. ते सोडविता-सोडविता त्याचा बापाचा आयुष्य गेलं. सावकारानं मारलेल्या फटका-यानं भाऊसिंगचा बाप पाणी-पाणी करत मेला। (पोखर में भाऊसिंग का बाप रहता था। साहूकार के पास उसकी जमीन गिरवी थी। वह छुड़ाते-छुड़ाते उसकी जिंदगी चली गयी थी। साहूकार के फटकारों से भाऊसिंग का बाप पानी-पानी कहते हुए मर गया।)"[20]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में पुलिस, दरोगा, गार्ड, रेंजर, पटवारी, अंग्रेज तथा अधिकारियों ने आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार किया है। इस संदर्भ में बी. एम. शर्मा लिखते हैं— "कल्याणकारी राज्य में पुलिस की भूमिका एक समाज सेवी संगठन की होती है। उसे कानून तथा व्यवस्था बनाएँ रखने तथा अपराधों की रोकथाम करने वाली बुनियादी भूमिका निभानी होती है।"[21]

लेकिन वर्तमान स्थिति में पुलिस व्यवहार तथा भ्रष्टाचार से आम आदमी का उन पर से विश्वास उठ गया है। विवेच्य उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में पुलिस बिसराम के घर तलाशी लेने आती है। बिसराम ने कोई अपराध नहीं किया है, उसकी गलती डाकू काली का भाई होना है। पुलिस की दहशत तथा उनके व्यवहार का पता इस कथन से लगता है— "कहाँ छुपा रखा है, उस मादरचोद कलिया को ?... चोप साला। अगवार-पिछवाड़ सर्च करो। न मिले तो एक-एक घर छान मारो कहाँ जाएगा साला।"[22] इसी तरह मराठी उपन्यास 'झेलझपाट' में मन्यारवाला कासम सेठ पुलिस की सहायता से केरू को फँसाने का जाल बिछता है। उस पर लालपरी (नशे की गोली) बेचने के झूठा इल्जाम लगाता है। "स्साला कंद ले रहा था ! लालपरी बेचता था सुव्वर का बच्चा ! चल पोलीस चौकी में !"[23]

उक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि, आदिवासियों को सेठ, साहूकार, जमींदार, पुलिस, तहसिलदार, दरोगा, गार्ड, रेंजर तथा अन्य गैर-आदिवासी, आदिवासियों को फंसाते हैं इस तरह के प्रसंग हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में कई जगहों पर आए है।

संदर्भ

[1] म. फूले वाङ्मय, पृ.सं. 416.

[2] अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 82.

[3] पारधी, पृ.सं. 124-125.

[4] काला पादरी, पृ.सं. 26.

[5] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 18.

[6] जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 30.

[7] हाकुमी, पृ.सं. 102.

[8] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 12.

[9] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 06.

[10] हाकुमी, पृ.सं. 84.

[11] जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 21.

[12] धूणी तपे तीर, पृ.सं. 25.

[13] ब्र, पृ.सं. 116.

[14] हम सबला, पृ.सं. 07.

[15] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 50.

[16] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 60.

[17] जहाँ बाँस फूलते है, पृ.सं. 89-90.

[18] कोळवाडा, पृ-.सं. 147.

[19] गाथा भोगनपूरी, पृ.सं. 09.

[20] तंट्या, पृ.सं. 24.

[21] वर्ग विचारधारा एवं समाज,पृ.सं. 243.

[22] जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 123.

[23] झेलझपाट, पृ.सं. 64.

सहा. अधि. तोंडाकुर एल. पी

हिंदी विभाग , सरस्वती महाविद्यालय, केज , जि. बीड.

RNI No. MAHAUL03008/13/1/2012-TC

POWER OF KNOWLEDGE

An International Multilingual Quarterly Refereed Research Journal

Editor

Dr. Sadashiv H. Sarkate

● Mailing Address ●

Dr. Sadashiv H. Sarkate

Executive Editor POWER OF KNOWLEDGE

Head of Dept. Marathi

Art's & Science College, Shivajinagar, Gadhi, Tq. Georai Dist. Beed-431143 (M.S.)

Cell. No. 9420029115 / 7875827115

Email : powerofknowledge3@gmail.com,

Shsarkate@gmail.com

Price : Rs. 300/-

Annual Subscription: Rs. 1000/-

Scanned by CamScanner

२७	ग्रंथालयाचे नेतृत्व	डॉ.जी.जी.हिडगे	८४
२८	प्राणायाम चे फायदे	प्रा. डॉ. विलास गुंड - पाटील	८७
२९	भारतातील २०२० मधील आरोग्मय जीवनातील उपचारात्मक साधन संपत्ती	लता अ. चव्हाण	८९
३०	जल व्यवस्थापनाचा कृषी क्षेत्रावरील परिणाम	प्रा.जाधव व्ही .डी.	९२
३१	LIFE SAVER GREEN GOLD TRIDAX PROCUMBENS (LINN.) A REVIEW	Smita Basole and Sunita Bhosle	९५
३२	म.जोतिबा फुले आणि स्त्री-मुक्ती	प्रा.चव्हाण आर.ए.	९९
३३	गांधीवादी कवि : भवानीप्रसाद मिश्र	संतोष नागरे	१०२
३४	संत साहित्यातील सामाजिक समतेचा वैश्विक उद्‌घोष	डॉ. स्मिता देशमुख (प्राचार्य)	१०४
३५	हिंदी दलित आत्मकथाओं की परम्परा और 'मुर्दहिया'	डॉ. चंदू खंदारे	१०७
३६	कीर्तन : काल आणि आज	प्रा.रमेश बा.रिंगणे	१०९
३७	अण्णाभाऊ साठे :क्रांतीकारी साहित्यिक	प्रा.आहिरे भास्कर मुरलीधर	११२
३८	दलित कविता आणि विद्रोह	प्रा. रेखा नारायणराव वाघ	११५
३९	मंजुल भगत के उपन्यासों में नारी जीवन	माथेसुळ जयश्री अर्जुन	११७
४०	हिंदी उपन्यास और लोकगीत	सहा.अधि.तोंडाकुर एल.पी.	१२०

Scanned by CamScanner

हिंदी उपन्यास और लोकगीत

सहा. अधि. तोंडाकुर एल.पी.
महिला कला महाविद्यालय, बीड

किसी भी देश के सांस्कृतिक महत्व का अध्ययन एवं अनुसंधान उस देश के लोक—गीतों के विवेचन और विश्लेषण द्वारा ही संभव हो पाता है। लोक — संस्कृति के ज्ञान का प्रमुख साधन लोक — गीत होते हैं। लुप्त होती भारतीय अस्मिता को आदिम समाज और प्राकृतिक उपादनों से उसके आपसी संबंध खोजा जा सकता है। आदिवासी लोक—गीत इस देश की संस्कृति के वाहक है। डॉ. रवींद्र भ्रमर ने अपनी पुस्तक 'हिंदी' भक्ति साहित्य में लोकतत्त्व में लिखा है—''लोक—गीत, लोक—मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख—दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोक—कथा की भाँति ये भी लोक—कंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोक—मानव की विविध चिंताधाराओं के कोण माने गये है''१

लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समुची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियों नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाली लोगों की अपेक्षा सरल एवं अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। डॉ. कुंज बिहारी दास ने लोक गीतों की परिभाषा बतलाते हुए—''लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर, कम या अधिक रुप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।'' डॉ. कृष्णदेव उपध्याय के अनुसार 'लोक'— ''आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं अपसंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं। जिनका आचार—विचार एवं जीवन परंपरायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।''२

गाँव या देहातों में गाये जानेवाली जनसाधारण के वे गीत जो परंपरागत रुप से किसी जनसमाज में प्रचलित रहते हैं, उन्हे लोक—गीत कहा जाता है। ये मौखिक होते हैं और इनमें सामयिक सुख—दुख की अनुभूतियों को प्रकट किया जाता है। ये गीत श्रोताओं पर मनोरंजक प्रभाव छोडते हैं। इन लोक—गीतों में मानव ह्रदय तंत्री के तारों को झकझोर देने की असीम क्षमता होती है। लोक—गीतों में मानव ह्रदय तंत्री के तारों को झकझोर देने की असीम क्षमता होती है। लोक—गीत, लोक—जीवन की संगीतात्मक अभिव्यक्ति तथा सुख—दुख की अनुभूति का सरलतम प्रकाशन है। गीतों के साथ सोना, गीतों साथ जगना, गीतों में रीझना—रीझाना, रुठना—मनाना, रिसना—हँसना तथा व्रत—अनुष्ठान करना लोक—जीवन का स्वभाव है। जन्म तथा विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर इन गीतों का महत्त्व किसी पुरोहित या पंडित के मंत्रोच्चार से कम नहीं होता। इन गीतों में मनुष्य के प्रति प्रेम और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, सहानुभूति और सौंदर्य चेतना बसी है। इस गीतों में भावों का ऐसा वेग होता है, जिससे समस्त अभाव दूर हो जाते हैं। लोक—मानस की विविध चिंता—धाराओं के कारण—''लोक—गीतों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें प्रकृति, पृथ्वी एवं मानव—मन की अनंत कल्पनाओं का ब्रम्हांड समाया हुआ है। मानव का शैशव लोरियों में झूलता व सोता है तो यौवन प्रेमोन्माद में प्रदत्त गीतों में विश्राम

Scanned by CamScanner

करता है। लोक—गीत लोक लीक के खींचनहार और प्रेमी हृदयों को प्रेम जल से सिंचनहार हैं।''३

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित विभिन्न आदिवासी समाजों में प्रचलित लोक—गीतों की अभिव्यक्ति क्षेत्रिय भाषा में हुई है। विभिन्न पर्वो—उत्सवों एवं घटना व अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों की भाषा भले ही अलग—अलग हो किंतु सभी गीतों में अनुभूति एक सी होती है। गया पांडेय ने 'भारतीय जनजातीय संस्कृति' नामक पुस्तक में जनजातीय समाज में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले ३८ लोकगीतों का नामोल्लेख किया है। लोकगीतों को लोक—नृत्य—वाद्य एवं संगीत से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि अधिकतर लोकगीतों के गायन के समय लोक—वाद्य एवं लोकनृत्य साथ—साथ बजाये और नाचे जाते हैं। इस तरह आदिवासियों के गीत—संगीत और नृत्य परस्पर एक—दूसरे से जुड़े होते है।

'ग्लोबल गॉव के देवता' में 'असूर' जनजती के लोग अपने बह—बेटियों को डॉटना हो तो भी लोक—गीतों का प्रयोग करते हैं। निम्न गीत नौजवान लड़कों के मुँह से अक्सर सुनाई पड़ता कि लकड़ी और बॉस बेचने गयी असुरिन, तुमने खदान के मेठ के साथ नज़रें क्यों मिलायी? तुमने खदान के मुंशी के साथ लगाव क्यों बढ़ाया? पैसे (कचिया) के लोभ में तुम कुल का नाम डूबा रही हो। रुपये के लोभ में जाति का नाम डुबा रही है—

''काठी बेचे गेले असुरिन,
बॉस बेचे गेले गे,
मेठ संगे नजर मिलयले,
मुंशी संग लसा लगयले गे,
कचिया लोभे कुला डूबाले,
रुपया लोभे जात डूबाले गे।।''४

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में आदिवासी कितने भोले हैं कि टूटे तारे की जगह मरे हुए आदमी की आत्मा पहुँचकर चमकने लगती है। वह इस गीत के माध्यम से दृष्टव्य है—

''राणापुर की कांचली माय भरग्यो रे बिछूडा
हां, बालम जी मरी जाऊंगी
कोठी मायड़ा गंवड़ा कुण पीसे बालमजी
हां, बालम जी मरी जाऊंगी''५

गीत, संगीत एवं नृत्य एक दूसरे के पूरक होते हैं। इसीलिए, ढोल, मानर, बांसूरी, अलगोजा, झाल, मिट्टी के बरतन, जानवर के सिंग इत्यादि आदिवासी लोक वाद्य विभिन्न पर्व एवं उत्सवों पर किये जानेवाले एकल, समूह एवं युग्म नृत्य लोक—गीतों का सान्निध्य पाकर वातावरण और मन को और अधिक अल्हादि एवं सरस बना देते हैं। जैसे—पुन्नी सिंह ने अपने उपन्यास में 'सहराना' में प्रस्तुत किया है—

''बोल गयो पपीहा, ओ हो बोल गयो!
बोल गयो पपीहा, आहा बोल गयो!
बोल राधा, बोल, तैंने जे का किया?
बोल गयो पपीहा, ओहो बोल गयो!
आहा—ओहो, आहा—आहो......''६

'जो इतिहास में नहीं है' में राकेश कुमार सिंह ने भी लोक—गीत प्रस्तुत की है। आदिवासियों की इस लोक—गीत के माध्यम से वे यह कहना चाह रहे है कि—संतान हेतु स्त्री, बसने हेतु भूमि, हल—गाय—भैंस—धन और संपत्ति हेतु है यह मारकाट। यह लड़ाई। पहले जैसा जंगल पाने हेतु, हक की वापसी हेतु विद्रोह करेंगे हम।

''मेरा निया नुरुनिया, टिण्डानिया मिटानिया
हाय रे हाय, मापक गपच दो
नूरिच नांगड़, गई काड़ा नाचेल लागित
पाचेल लागेत सेदाय लेका बेताबेतत्
जाम रुयोड़ लागित

Scanned by CamScanner

तउबे दो–बोन हूल गेया हो''७
आदिवासी लोक–गीतों में
जन–जीवन, धर्म और दर्शन, भक्ति और
नीति, कला और संस्कृति का जीवंत
प्रभावशाली कलात्मक वैभव दृष्टिगोचर होता
है जो किसी काव्यशास्त्रीय व्याख्या की अपेक्षा
नहीं करता। लोक–गीतों का रचनाकार किसी
एक वर्ग या संप्रदाय विशेष का नहीं है। युगों
की उपेक्षा और अशिक्षा की विडंबनाओं के
बीच भी लोक–गीतों के रक्षक–संरक्षक,
कर्ता–भर्ता, रससृष्टा–रस आस्वादक सब
आदिवासी ही हैं। आदिवासी लोक–गीतों में
उनकी और भारत की सही और समग्र
सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित है। डॉ. नंदलाल
कल्ला ने लिखा है–''संपूर्ण लोक समाज ही
सिरजनहार है। इन गीतों की दुनिया ही लोक
है। छंद, अलंकार, रस, शब्द–शक्तियाँ या
गुण–दोष तो उन सिध्दियों के समान हैं जो
'भक्ति' रुपी राजरानी का हाथ जोड़कर
अनुगमन करती हैं। लोक आस्था की
जगमगाती इन मणियों की आभा का कौन
मूल्यांकन कर सकता है?''८

अतंत: यह कहा जा सकता है कि, लोकगीत तथा लोकसाहित्य में समूची लोक चेतना जीवित है। सामाजिक समरसता और सौहार्द की भावना के कारण ही आज के वर्तमान परिदृश्य में यह अविरल गति से प्रवाहित है। लोक साहित्य उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य, इसलिए उसमें जन–जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सब कुछ समाहित है। लोक साहित्य किसी भी अंचल का हो, किसी भी प्रदेश या क्षेत्र विशेष का हो उसकी अंतर्धारा सर्वत्र समान रुप से ही प्रवाहित होती है। विशेषत: समकालीन हिंदी के आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत, लोक साहित्य प्रमुख रुप से दिखाई देती है।

संदर्भ :

१) हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, पृ. सं. ६
२) लोकसाहित्य की भूमिका, पृ.सं. १३
३) भारतीय लोकगीत: सांस्कृतिक अस्मिता, पृ.सं. १८८
४) ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. ३८
५) धूणी तपे तीर, पृ.सं. १४७
६) सहराना, पृ.सं.१७
७) जो इतिहास में नहीं है, पृ.सं. १२३
८) भारतीय लोकगीत: सांस्कृतिक अस्मिता, पृ.सं.२०८

Scanned by CamScanner